अंतरिक्ष
एवं
नक्षत्र विज्ञान

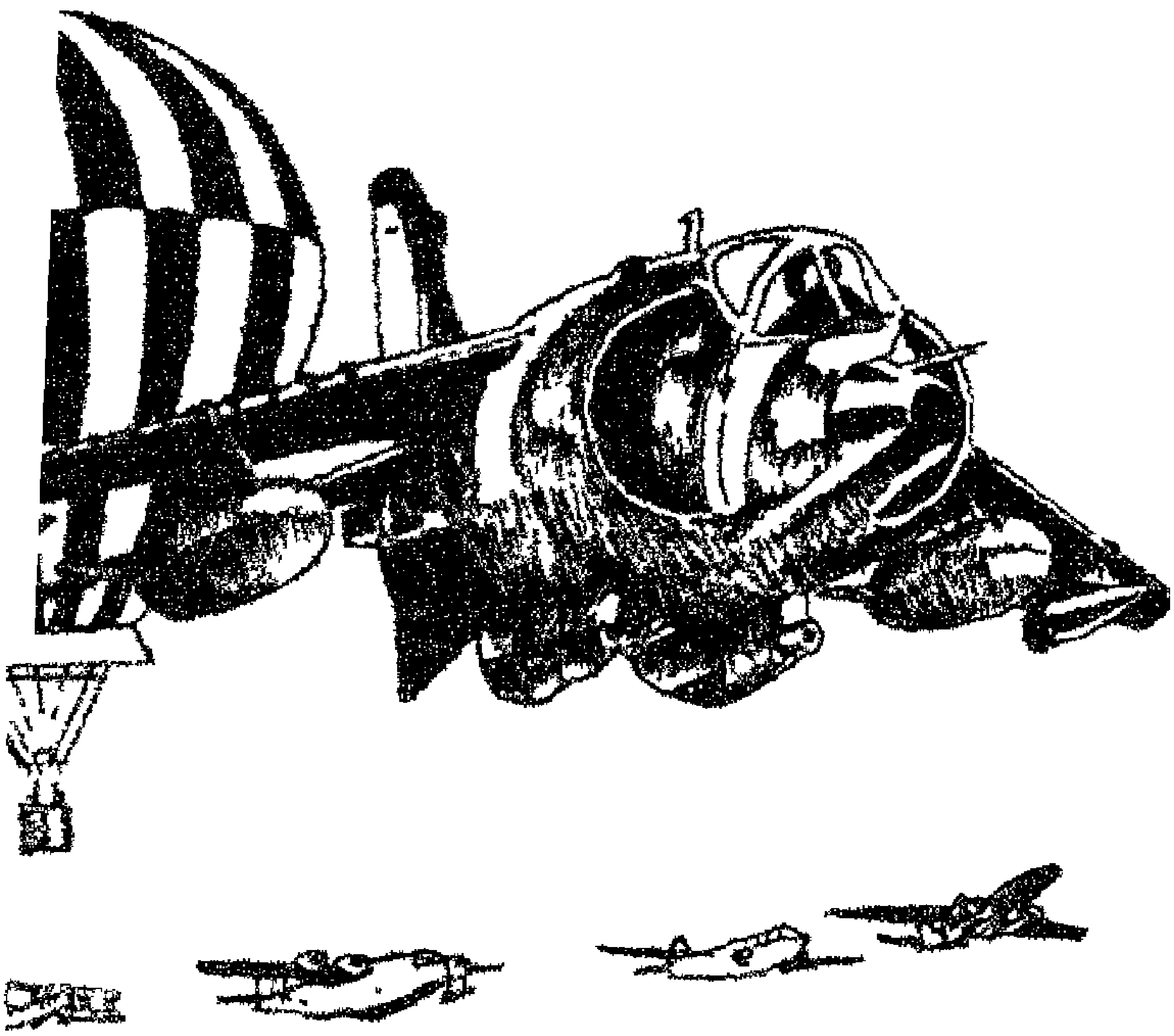

Roy
... ...ation,
Libr...
Calcutta.

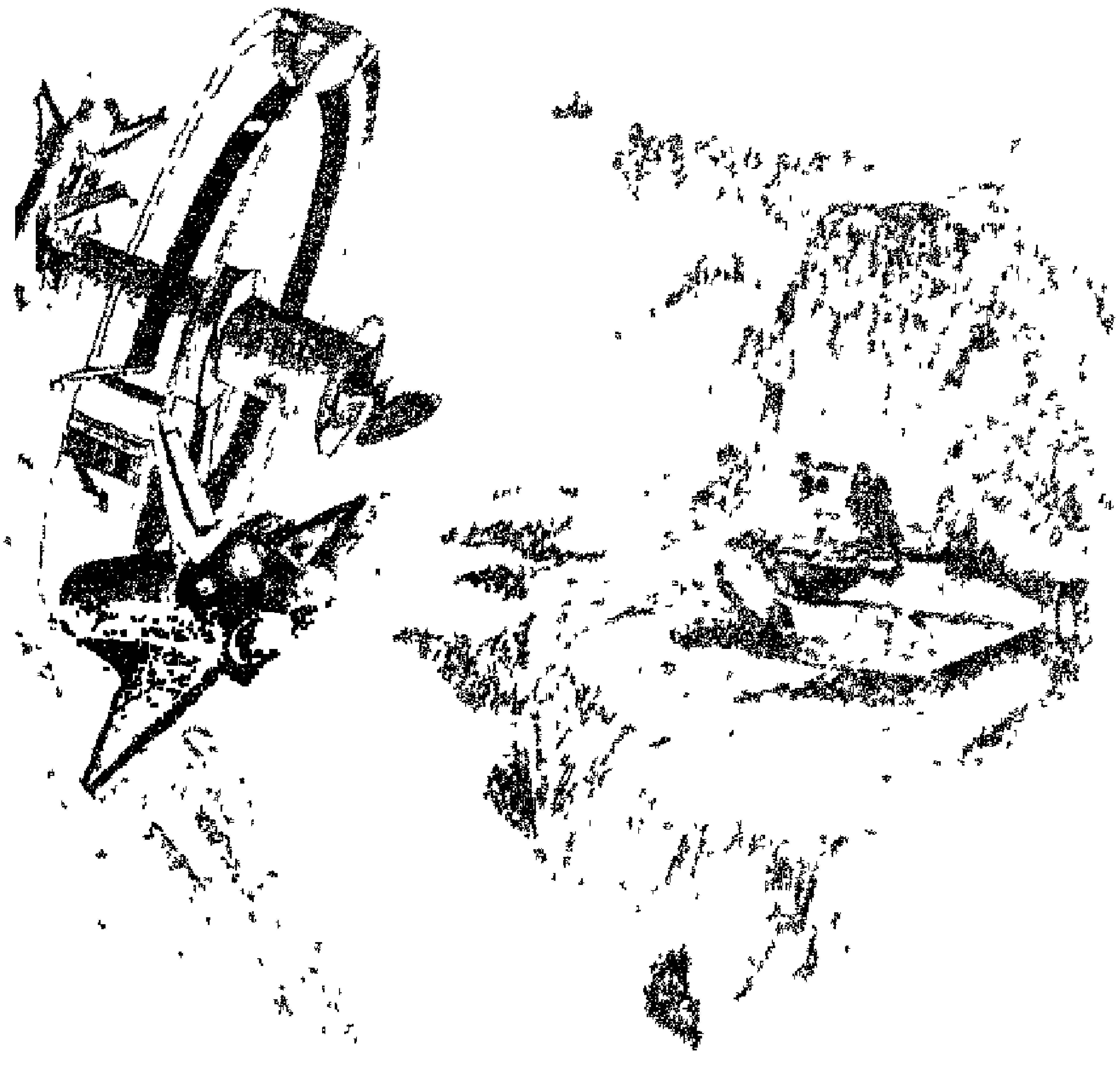

भारतीय विज्ञान अकादमी द्वारा पुरस्कृत

अंतरिक्ष एवं नक्षत्र विज्ञान

डॉ. जसबीर सिंह

जगतराम एण्ड कम्पनी
ए-334, नई सब्जी मण्डी (बेसमेंट)
आजादपुर, दिल्ली-110033
के द्वारा प्रथम बार प्रकाशित

संस्करण : प्रथम 2002
© डॉ. जसबीर सिंह
आवरण : संजीव प्रसाद परमहंस
चित्रांकन : श्याम जगोता

बी के ऑफसेट दिल्ली-110032

मूल्य : 250.00

विषय-सूची

1. अनादि काल — 9
आदि-काल—बेबीलोनवासियों, हिंदुओं, मिश्रियों तथा यूनानियों की सितारों संबंधी कल्पना—पुरोहितवर्ग—'समय' का बोध

2. नक्षत्र-विज्ञान — 15
नक्षत्र-विज्ञान का उदय—यूनानी वैज्ञानिकों की खोज—भारतीय ज्योतिर्विदों के अन्वेषण—आधुनिक काल का आरंभ—दूरदर्शक-यंत्र—न्यूटन के सिद्धांत—नीहारिकाएं

3. उड़ने की कला — 22
प्राचीन काल में मनुष्य के उड़ने की संभावनाओं पर आलोचनात्मक दृष्टि—उड़न-यंत्र के निर्माण की ओर—गुब्बारों का युग—पंखों वाले वायुयान—जेट यान—रॉकेट—अंतरिक्ष-यात्रा की गणितीय संभावनाएं—जर्मन वी-2 रॉकेट—विज्ञान-कथा लेखकों का योगदान

4. अंतरिक्ष-विज्ञान — 32
गुरुत्वाकर्षण—अनन्त विस्तार—नीहारिकाएं, सौरमंडल ग्रह तथा उपग्रह—वातावरण तथा अंतरिक्ष—तीव्र गति वाली हवाएं—व्याप्त 'पदार्थ'—तौल या गुरुत्वाकर्षण—संधि-प्रकाश-क्षेत्र—पृथ्वी के आकर्षण क्षेत्र से बाहर—अंतरिक्ष उड़ान की समस्याएं—अंतरिक्ष-यान छोड़ने की ओर

5. अंतरिक्ष-युग — 45
अमरीकी तथा रूसी प्रयास—सोवियत साज-सज्जा—स्पुत्निक-1— 'लाइका' तथा स्पुत्निक-2—स्पुत्निक-3—गुरुत्वाकर्षण की लक्षण रेखा से पार ल्यूनिक-1—चांद का अदृश्य चेहरा—स्पुत्निक शृंखला—अमरीकी अभियान—एक्सप्लोरर तथा वैनगार्ड आदि उपग्रह—समानव उड़ान के यत्न

6 आकाश और आदमी — 57

अंतरिक्ष-यात्री—और अधिक अंतरिक्ष यात्री तथा वैज्ञानिक उपलब्धियां—अंतरिक्ष में सम्मिलन अंतरिक्ष से पृथ्वी का कक्षा में परीक्षण

प्रज्वलित पूंछों वाले चंद्र-पक्षी

चंद्र-भूमि का चंद्र-यानों द्वारा सर्वेक्षण—चंद्र-यानों द्वारा प्राप्त जानकारी

अपोलो—आठवां आश्चर्य

विशालतम एवं जटिलतम वैज्ञानिक तथा तकनीकी चुनौती—बीस हजार उद्योग-धंधों का योगदान—प्राविधिकता का कीर्ति-स्तम्भ शनि-5—अपोलो अभियान की रूप-रेखा—बीस लाख कल पुर्जे और ..—मकड़ा या चंद्र-कक्ष—केप कैनेडी अंतरिक्ष अड्डा तथा ह्यूस्टन नियंत्रण केंद्र—यम-यातना जैसे परीक्षण

कीमत—अंतरिक्ष अभियान की

मानव-बलि !—एक बड़ी नयी छलांग—और शृंखला—गागरिन की मृत्यु

सोमदेव की घाटी

चंद्र-कक्षा की ओर मानव—अपोलो-8 छोड़ने की तैयारी—एक तनाव, एक टैंशन—लाखों पाउण्ड के अकल्पनीय आघात—चांद की सीमा चौकी—चंद्र कक्षा प्रवेश—चंद्र-भूमि का रूप—फिर पृथ्वी की ओर—आशंकाएं—सफल सतरण—उपलब्धि

मंजिल—मयंक

'सोयुज़' अर्थात् सम्मिलन—अपोलो-9 की महत्वपूर्ण यात्रा—अपोलो-10 तथा चंद्र-यान का परीक्षण—वे भयंकर क्षण—सकुशल वापसी

केप कैनेडी से उठता अपोलो-11

अपोलो-11 छोड़ने के समय के दृश्य—चंद्र-यात्रियों के जीवन-रेखा-चित्र—चार हजार सवाददाता—यान छूटने में केवल दो मिनट—काउण्ट डाउन—कान फाड़ने वाला धमाका—प्रस्थान

चंद्रमा पर ईगल

आबाध गति से चंद्रमा की ओर अपोलो-11—ईगल चंद्र-तल की ओर—घटते फासले—चंद्रमा की धरती पर

वे ऐतिहासिक क्षण

चंद्र-तल पर मानव का पहला कदम—चंद्र-विजय—चंद्रमा पर कुछ यंत्रों की स्थापना

15. परिणति एक आधुनिक अश्वमेध की 165

चंद्र-विजय पर विभिन्न प्रतिक्रियाएं—उल्लास—चंद्र-तल से ईगल की विदा-वेला—कोलम्बिया मे पुन. मिलन—घर की ओर—महान् उपलब्धि पर चंद्र-यात्रियों के विचार—भाव-भीनी अगवानी—महानतम निर्णायक बिन्दु पर खड़ी मानवता—समापन नहीं—आरंभ।

16. चंद्रमा—प्राचीन, नवीन तथा नवीनतम 174

संस्कृत साहित्य में चंद्रमा—भारतीय ज्योतिर्विदों की वैज्ञानिक दृष्टि—ज्योतिष और चंद्रमा—पश्चिम का दृष्टिकोण तथा अनुसंधान—चंद्र-तल पर विवर, पर्वत-मालाएं तथा 'सागर'—चंद्रमा संबंधी विभिन्न वैज्ञानिक सिद्धांत तथा मत—चंद्र-यात्रियों द्वारा लाए चंद्र-तल के नमूने—नमूनों पर परीक्षणों के परिणाम

17. बढ़ते कदम 193

शीत-टांका-गिरी—अपोलो-12 की उड़ान के उद्देश्य—चंद्र-तल पर भू-भौतिक प्रयोगशाला—उपलब्धियां

8. दिक्—काल (तीन) आयामों से आगे 205

(Beyond The Dimensions Of Time And Space)

1. अनादि काल

मानव जीवन का समूचा इतिहास उसकी अपनी सुरक्षा, सजीवता तथा प्रगति के प्रयत्नों का इतिहास है। इसका सबसे उचित कारण यही समझ में आता है कि मनुष्य ने आरंभ से ही अपने आप को विरोधी वातावरण में पाया है। कल्पना की जा सकती है कि विकास के सिलसिले में से जब आदि मानव ने बाहर की ओर झांका होगा तो उसे पहला अनुभव भय का हुआ होगा। परिवेश की कठोरता तथा अपनी असहायता ने उसे अपनी सीमाओं की ओर दृष्टि डालने पर विवश किया होगा और अपनी जान बचाने के लिए पृथ्वी के इस प्राणी ने निश्चय ही आकाश की ओर देखा होगा।

हम आज जिस पृथ्वी पर विराजमान हैं, अपने सौरमंडल के अन्य ग्रहों-उपग्रहों की फुटकर जानकारी के बाद यह महसूस करते हैं कि अगर कहीं स्वर्ग है तो यहीं पर ही है (तथा कहीं ऊपर स्वर्ग के अस्तित्व की बात सुख-भोग की कामना का ताना-बाना मात्र है)। यह पृथ्वी प्रकृति की नहीं बल्कि पुरुष अर्थात् स्त्री-पुरुष की बनाई हुई है (सांख्य दर्शन के अनुसार सृष्टि 'प्रकृति-पुरुष' की बनाई हुई है)। उसके अनन्त तथा अनवरत श्रम का परिणाम है—उसके रक्त, आंसू, स्वेद और सांस की जीती-जागती गाथा है। अपोलो-८ के अंतरिक्ष यात्री फ्रैंक बोर्मन के ये शब्द कि 'पृथ्वी तो अपने ढंग की अनूठी चीज़ है,' मानव-निर्मित पृथ्वी के विषय में ही कहे गए लगते हैं।

इसके विपरीत, प्रकृति की पृथ्वी वह थी जिस पर आदिम आदमी ने आंख खोली थी। उस आदमी के चारों ओर आग की लपटें थीं और उसे आग जलाने की जानकारी नहीं थी, चारों तरफ इतिहास-पूर्व के असंख्य खूंखार जीव-जंतु थे और उसको पत्थर तक की शक्ति का ज्ञान नहीं था; पूरी पृथ्वी अंधकार से आवृत थी और उसके पास रोशनी का कोई साधन नहीं था। केवल दिन में सूरज और रात में चांद (तथा सितारे) उसकी जिजीविषा के आधार थे। ऐसी भयंकर स्थिति में मनुष्य का आकाश की ओर उन्मुख होना स्वाभाविक था।

आकाश उस नगण्य प्राणी के लिए बहुत ही बड़ा था और इसीलिए अत्यंत भयंकर तथा शक्तिशाली। अतः पहले मनुष्य ने आकाश जैसी ही विशाल तथा व्यापक एक दैविक सत्ता की कल्पना की। इसके बाद अपनी पंगु कामनाओं की चरम उपलब्धि

के रूप में उसने देवी-देवताओं की कल्पना की। मनुष्य [illegible] उसे शुरू से ही शक्ति की तलाश थी। उस तलाश में [illegible] उसे उसने देवता मान लिया और उसकी पूजा-अर्चना शुरू [illegible] इंद्र, वरुण, वायु आदि पर देवत्व का आरोप किया. [illegible] भी उसने देवता स्वीकार किया। फिर [illegible] को आकाश के तमाम प्रकाश-पुंज [illegible] संख्या बढ़ती ही गई। बल्कि [illegible] आकाशवासी देवताओं के अलंकार [illegible]।

यह उस जमाने की बात है [illegible] सितारों के पीछे कोई प्राकृतिक नियम भी है। [illegible] देवताओं की स्तुति का अनुपम कोष [illegible]। और तो और, बाद में नक्षत्र-विज्ञान की [illegible] तक आकाश को देवताओं का निवास-स्थान मानने से [illegible] कि 'सितारों के मध्य शून्य के इतने बड़े-बड़े [illegible] ने इतना सारा स्थान व्यर्थ क्यों नष्ट किया है ?'

सितारों को समझने की दिशा में मानवीय [illegible]। इस भटकाव में हजारों वर्षों का योगदान है, जिसकी [illegible] के प्रयत्नों में ढूंढ़ी जा सकती है। बेबीलोन-वासियों ने [illegible] थी, वह आज की दृष्टि से बड़ा अद्भुत है। उनकी मान्यता थी कि [illegible] को सागर की मेखला ने घेरा हुआ है तथा उस पर [illegible] हुआ है। उस प्याले ने पूरी [illegible] को ढका हुआ है। [illegible] शायर खैयामी ने भी आकाश को 'उल्टा प्याला' ही कहा है [illegible] गोल जिसे हम कहते हैं आकाश।' ('And that inverted bowl [illegible]

हिंदुओं ने जो सृष्टि की प्रारंभिक कल्पना की थी, [illegible] की कल्पना के निकट ही है। मनु महाराज [illegible] :

सोऽभिध्याय शरीरात् स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ।
तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशु समप्रभम् ।
तस्मिन् जज्ञे स्वयम् ब्रह्मा सर्वलोक पितामह ।।

(अर्थात् प्रजा-सृष्टि की कामना से स्वयं [illegible] की सृष्टि की और उसमें बीज डाल दिया। उस बीज से [illegible] एक अण्डा निकला। उस अण्डे में भगवान ने स्वयं [illegible] के रूप में जन्म ग्रहण किया।

इसी विचार को आगे बढ़ाते हुए कहा गया है कि इस ब्रह्माण्ड में [illegible]

खंड में म्यगादिनाक और अधो खण्ड में पृथ्व्यादि [illegible]

बेबीलन-वासियों, हिंदुओं, मिश्रियों तथा यूनानियों की सितारों संबंधी कल्पना

सूरक भूमि की महत्व मिलने के विषय में भी हिंदुओं और [illegible] में विचार-साम्य है। इस बारे में हमारा पुराण-साहित्य [illegible] है, जो कि हिरण्याक्ष नामक दैत्य द्वारा पाताल में ले जाई गई पृथ्वी [illegible] पर उठाकर ऊपर लाना है। बेबीलन वालों का भी [illegible] साधनों से समुद्री पानी के बाहर निकली। [illegible] उभरे, आकाश में उठे तथा वहीं जम गए।'

आकाश के विषय में मिश्र के निवासियों का भिन्न ही [illegible] को गाय मानते थे जिसके खुर, उनके ख्याल से, पृथ्वी पर टिके [illegible]

प्राचीन मिश्र की सभ्यता का उदय बेबीलन की समृद्ध [illegible] ही होना स्वीकार किया जाता है। सूर्य का प्रथम पंचांग मिश्रियों ने ही [illegible], जिसमें एक वर्ष के 365 दिन निर्धारित किए गए थे लेकिन [illegible] धारणा अपेक्षाकृत कमजोर थी। भारत की भांति मिश्र का [illegible] से भरा पड़ा था। मिश्रियों ने तो समूचे 'आकाश को ही [illegible], जिसका नाम नूत् था।'

उस ज़माने का शायद कुछ तकाज़ा ही ऐसा था कि यूनानी भी [illegible] से मुक्त नहीं थे। मिश्र और भारत की तरह उनका सृष्टि संबंधी [illegible] ही था। उन्होंने पृथ्वी के अतिरिक्त आकाश को भी एक गोला [illegible] केवल इतना था कि पृथ्वी ठोस गोला था और आकाश [illegible] के खोखले गोले ने पृथ्वी के ठोस गोले को पूर्ण रूप से [illegible] तथा उसकी अंदरूनी सतह पर रत्नों के समान सितारे जड़े [illegible]।

यूनानियों का विचार था कि आकाश का इतना बड़ा [illegible] रह सकता, इसलिए उन्होंने एक खंभे की कल्पना की जिसके [illegible] से, आकाश अपने स्थान पर ठहरा हुआ था। यह खंभा भी पृथ्वी [illegible] रखा गया था।

आकाश के विषय में यूनानियों का यह भी विचार था कि [illegible] गोला अपने स्तंभ अथवा धुरी पर घूमता है तथा तदनुसार [illegible] होते हैं। ईसा पूर्व चौथी शती के यूनानी वैज्ञानिक यूडोक्सस [illegible] कि नक्षत्र-गण घूमते हुए गोलों पर सवार हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि लगभग सभी प्राचीन सभ्यताओं में [illegible] एक अति विशाल तथा पारदर्शक गोला माना जिससे सितारे आबद्ध थे। परंतु सितारे

की दैविक सत्ता एव सामर्थ्य म किसी का सदेह नहीं था अत. उनकी प्रसन्नता मानव के लिए बड़ी महत्त्वपूर्ण थी। प्रश्न यह था कि उन्हे प्रसन्न किया कैसे जाए। आकाश के उज्ज्वल देवताओ को प्रसन्न करने के लिए प्रशस्ति-स्तुति आदि से अधिक कारगर क्रिया और कौन-सी हो सकती थी। इसलिए ऐसी मान्यता है कि प्राचीन काल मे देवताओ को प्रसन्न करने के लिए मनुष्य ने तत्कालीन समाज मे अपने एक भाग को सामूहिक काम-धंधो से मुक्त कर दिया तथा इस प्रकार 'पुरोहितवर्ग' का उदय हुआ था। परंपरा यह श्रेय बेबीलन को ही देती है। बेबीलनवासियों का सितारो के विषय मे तो यह विश्वास था कि वे स्थिर है तथा अपने स्थान पर अटल है किन्तु सात ग्रहो को वे अस्थिर मानते थे। सूर्य, सोम, मगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि—ये सात ग्रह सितारो के बीच विचरण करते थे। उनकी दृष्टि में ये सातो ही देवता थे तथा उनके विचार से, इन सात देवताओं की गति से संसार तथा समाज के विषय में उनके इरादों की जानकारी प्राप्त की जा सकती थी।

पुरोहित-वर्ग

कहा जाता है कि बेबीलन के ये पुरोहित मंदिरों की छतों पर चढ़कर न केवल देवताओं की स्तुति किया करते थे, बल्कि इन सातों ग्रहों की गति का भी अध्ययन करते थे, ताकि यदि उनकी समझ से इन देवताओं में से कोई दैविक आपत्ति को आहूत करने का विचार कर रहा हो तो वे लोग तत्कालीन राजा को उस अनुमानित आपत्ति के विरुद्ध खबरदार कर सकें।

इस क्रिया में उनकी दृष्टि व्यापक आकाश पर जमनी स्वाभाविक थी। आकाश के अनवरत अध्ययन से उन्होंने कुछ तारा-समूहों को भी खोज निकाला तथा विशेष रूप से उस राशि-चक्र का अन्वेषण कर लिया, जिससे ये सभी ग्रह-पिंड गुजरते थे। उन तारा-समूहों में बेबीलनवासियों ने जीव-जंतुओं की आकृतियां देखीं और उन्हें पत्थरों पर खोद लिया। उनकी नकल मे बाद में मिस्रियों और यूनानियों ने भी ऐसा ही किया। भारत के लोगों ने भी सितारों के समूहों में पशुओं, विशेषकर जलचरों के दर्शन किए। इस प्रकार ग्रहों के मार्ग को जिन बारह समान भागों में विभाजित किया गया, उन राशियों में से आधे से अधिक जीव-जंतुओं द्वारा ही दर्शाई गईं।

विश्वास किया जाता है कि प्रमुख तारा-समूहों को बेबीलन-वासियों ने ईसा के जन्म से लगभग 3,000 वर्ष पूर्व ही पहचान लिया था।

सितारों पर नभ-चरों (पक्षियों) का आरोप भी इसी बीच किया गया समझा जाता है। उन दिनो सितारों को उड़ते हुए सुनहरे पक्षी समझा गया। कुछ लोगों को सम्भवतः ऐसा भी भ्रम हुआ कि सितारे आकाश के प्राणी हैं जो कि स्वर्ग की सरिता में नौका-विहार कर रहे हैं।

उस युग में मनुष्य द्वारा सितारों में पशु-पक्षियों के दर्शन करना बड़ा स्वाभाविक प्रतीत होता है, क्योंकि

घिरा हुआ था अतः उन्हीं से भली-भांति परिचित था। इसलिए जहा उसने तारा-समूहो में अपने जाने-पहचाने जीव-जंतु अपनी भावना के अनुसार देखे, वहां उन तारा-समूहो को स्मरण रखने के लिए उसने उन पर जीव-जतु विशेष का आरोपण भी किया। हिंदुओं ने तो भूमि के आधार के रूप मे भी जतु-जगत को ही प्रमुखता दी और यह माना कि भूमि (शेष) नाग के फन पर टिकी हुई है। भारतीय जनमानस ने पृथ्वी को बैल के सींग पर आधारित होना स्वीकार किया।

परतु जतु-जगत से आक्रांत रहने के साथ-साथ बेबीलन-वासियों ने क्रमशः यह ज्ञात किया कि सूर्य और सोम (तथा शायद शेष पाच ग्रह भी) उनके लिए अत्यंत उपयोगी हैं। ये उसे खेती, आखेट, यात्रा तथा समय-निर्धारण मे सहायता देते हैं।

'समय' का बोध

सूर्य मनुष्य को गर्मी और प्रकाश देता है तो चाद शीतलता और रोशनी। क्रमश. सूर्य से दिन और चांद से मास का आभास स्थिर होता गया और पूर्णिमा से पूर्णिमा तक के काल को 'महीना' मानकर मनुष्य को बड़ी सुविधा हुई। बल्कि 'समय' नामक आयाम का अनुभव तथा उसके महत्त्व का ज्ञान मनुष्य को सूर्य और चद्र से ही हुआ।

इस प्रकार पुरोहितों के कार्य-क्षेत्र का भी विस्तार होने लगा। अभी तक वे स्तुति करते थे तथा नक्षत्रों के तेवर पढने का प्रयत्न करते थे। अब उन्हें 'समय' के क्षेत्र में भी दखल देने का सुअवसर मिला और वे, अपने विचार से, 'शुभ' एव 'अशुभ' समय का प्रतिरोपण मानव-मन में करने लगे। अब वे उत्सवों के समय निश्चित करने लगे तथा एक प्रकार से साधारण मनुष्य पुरोहितो पर आश्रित होता गया।

समय की गति के साथ पुरोहित-वर्ग ने अपने विदित क्षेत्र को पुष्ट किया। तथा देवताओ को प्रसन्न करने की दिशा में एक नवीन साधन की घोषणा की। यह साधन था बलिदान। मानव-जीवन मे बलिदान को प्रश्रय देकर पुरोहितों ने अपने शासन का विस्तार किया क्योंकि बलिदान के लिए समय निश्चित करना भी उन्हीं का कार्य था। और यही वह मोड़ था जिसने हमें ज्योतिष के मार्ग पर आगे बढ़ाया।

यदि मनुष्य सितारों के प्रति अपनी सरल जिज्ञासा के आधार पर आगे बढता तो खगोल का ज्ञान उसे कहीं अधिक पहले प्राप्त हो जाता। पर आदमी तो अंधकार मे पैदा हुआ था, अंधेरी भूमि पर जन्मा था। इसीलिए उसे अपने भविष्य की—उज्ज्वल भविष्य की सबसे अधिक चिंता थी और उज्ज्वलता भूमि से लाखों-करोड़ों मील दूर थी। उज्ज्वलता केवल आकाश मे थी जिसका क्षणिक अनुभव उसे धूप और चांदनी के रूप में होता था। अत' यदि वह अपने अंधकार भरे भविष्य को उज्ज्वल बनाने की लालसा में उज्ज्वल आकाश का मुखापेक्षी बन गया तथा यह स्वीकार कर बैठा कि उसके अपने भविष्य और ——— के पुंज सितारों के मध्य कोई सूक्ष्म संबध

शुद्ध ज्योतिर्विज्ञान को ज्योतिष का कलेवर प्रदान करने वाले पुरोहितों ने यहां भी उस भोले-भाले मनुष्य को हस्तगत करने की क्रिया की। कुछ अनुमान, कुछ अध्ययन तथा कुछ संयोग के बल पर उन्होंने यह स्थापित करने की चेष्टा की कि पृथ्वी पर घटने वाली घटनाओं से सितारों का निश्चित एवं अदृश्य संबंध है। इस प्रकार पुरोहितों ने यह दावा किया कि भविष्यवाणी की जा सकती है और ग्रहों की गति तथा स्थिति का हिसाब जोड़-जाड़कर वे लोग भविष्य-वक्ता भी बन बैठे।

इस प्रकार जो अन्वेषण वैदिक-बुद्धि से आरंभ हुआ था, वह भाग्य-बुद्धि पर आकर ठहर गया। नक्षत्रों के पीछे कार्य करने वाले वे भौतिक नियम जो अपने रहस्य क्रमशः खोलने की मनोस्थिति में आने लगे थे, नियतिवाद के चक्रव्यूह में घिर गए और ज्योतिर्विद्या के स्थान पर ज्योतिष विद्या का बोलबाला होने लगा।

2. नक्षत्र-विज्ञान

नक्षत्र-विज्ञान ज्योतिष का आकस्मिक प्रतिफलन है। जैसा कि अब सामान्य ज्ञान है, अनेक कारणों से मनुष्य को नक्षत्रों का अध्ययन करना पड़ा, जिसकी परिणति ज्योतिष-शास्त्र में हुई। इस अध्ययन के अंतर्गत ही उसे क्रमशः प्राकृतिक नियमों का आभास मिला। हालांकि अव्यवस्था में व्यवस्था के दर्शन बड़ी धीमी गति से हुए क्योंकि मनुष्य के समक्ष सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न तो उसके अपने अस्तित्व का था। फिर भी उसकी दृष्टि एक-एक करके अनेक तथ्यों पर पड़ी।

उसे यह पता लग गया कि सूर्य नियमित रूप से उदय और अस्त होता है। दिन के बाद रात और रात के बाद दिन की आवृत्ति होती है तथा इस प्रक्रिया में जो परिवर्तन होते हैं, वे नियमित हैं। इसी प्रकार चांद क्रम से घटता-बढ़ता है। ऋतुओं का आवागमन व्यवस्थित रीति से होता है। पेड़-पौधे, पशु-पक्षी तथा स्त्री-पुरुष उत्पन्न होते, बढ़ते और समाप्त हो जाते हैं। इन भौतिक तथ्यों पर दृष्टि पड़ने से उसे यह स्पष्ट होने लगा कि उसके संसार में जो अव्यवस्था है, वह किसी व्यवस्था का बाहरी स्वरूप है। संभवतः इस ज्ञान का उदय ही विज्ञान का—नक्षत्र-विज्ञान का उदय है। क्योंकि विज्ञान भी आखिर उन भौतिक नियमों का विशेष ज्ञान ही है, जिनके शासन में सृष्टि का क्रमिक विकास हो रहा है।

प्रथम खगोल-शास्त्री होने का श्रेय चाहे किसी भी तत्त्वदर्शी का अधिकार हो परंतु ऐसा समझा जाता है कि 'विज्ञान' से जिस विशेष ज्ञान का बोध होता है, उसका श्रेय साधारणतः यूनान के निवासियों को है। यों ऋग्वेद के दूरदर्शी ऋषि ने यूनानियों से पहले ही यह घोषणा कर दी थी कि चंद्रमा के पास अपना प्रकाश नहीं है—उसने सूर्य का प्रकाश प्राप्त किया है :

इंद्रा सोमा महि तद्वो महित्वं युवं महानि प्रथमानि चक्रथुः।
युवं सूर्यं विविदथुर्युवं स्वर्विश्वा तमोस्यहतं निदश्च।।

अर्थात् हे इंद्र-सोम, आपकी शक्ति महान् है। आपने प्रथम महत् कार्य किए। आपने सूर्य को प्राप्त किया—प्रकाश को प्राप्त किया। आपने अशेष अंधकार और निंदा को समाप्त किया

यूनानी वैज्ञानिकों की खोज

यूनानियों के पास भारत की ही भांति देवी-देवताओं की पुराण-कथाओं का अक्षय भंडार है किंतु ईसा से छः शताब्दी पूर्व यूनान गणितज्ञ पाइथागोरस ने प्रकृति को स्वतंत्र रूप से समझने का संकेत दिया था, सूरज की गति के विषय में उसका एक सादा-सा सुझाव था : सूरज एक वर्ष में संपूर्ण आकाश का चक्र पूरा कर लेता है। पाइथागोरस ने चांद की गति का भी यही स्पष्टीकरण दिया था।

ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में पश्चिम के महर्षि अरस्तू का आविर्भाव हुआ। अरस्तू ने पृथ्वी को स्थिर माना परंतु चंद्रमा के विषय में उसका विचार था कि चांद का निर्माण ज्वलनशील तत्त्व से हुआ है। अरस्तू ने यह भी स्पष्ट कर दिया था कि चांद की अपनी ज्योति नहीं है—उसमें सूर्य की ज्योति प्रतिफलित होती है।

जैनोफेन नामक विद्वान् ने चांद को सघन बादल का एक टुकड़ा माना था।

पाइथागोरस ने पृथ्वी और चांद—दोनों को गोल माना था। ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में एक अन्य यूनानी विद्वान् अरिस्टार्कस ने यह तथ्य प्रकट किया कि पृथ्वी एक वर्ष में सूर्य की परिक्रमा करती है तथा एक दिन में अपनी धुरी पर भी चक्कर लगाती है। उसी शताब्दी में इरेटास्थिनीज नामक ज्योतिर्विद ने पृथ्वी की सही परिधि ज्ञात की।

पृथ्वी का रहस्यमय उपग्रह चंद्रमा कौतूहल और अंधविश्वास दोनों ही का जनक रहा है। हिंदुओं का सोम देवता तथा बेबीलनवासियों का सिन् देवता जिसने अततः 'डायना' का भी भेष भरा, ईसा की उत्पत्ति से पूर्व ही एक यूनानी वैज्ञानिक के हत्थे चढ़ गया था। सुकरात के एक विश्वासपात्र विद्वान् ने, जिसका नाम अनैक्सागोरस था, यह घोषणा कर दी थी कि चंद्रमा उन्हीं तत्त्वों का बना हुआ है जिनकी हमारी पृथ्वी है। अनैक्सागोरस की इस धृष्टता को तत्कालीन धार्मिक समाज कहां स्वीकार कर सकता था—उसको धर्म ने मौत के घाट उतार दिया।

ऐसा संकेत पहले भी दिया जा चुका है कि बेबीलन की गणित परंपरा को शत-प्रतिशत स्वीकारने वाले हिंदू भी वैज्ञानिक दृष्टि का विकास कर रहे थे तथा नक्षत्रों का वास्तविक स्वरूप जानने की दिशा में हिंदू ज्योतिर्विदों ने प्रयत्न आरंभ कर दिए थे। इस तथ्य के स्पष्ट प्रमाण हैं कि ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में हमारे यहां भी खगोल का अन्वेषण आरंभ हो गया था। हिंदुओं ने इस विषय में कुछ 'सिद्धांत' स्थिर किए थे जो किसी सीमा तक पश्चिम के साथ हुए आदान-प्रदान का परिणाम थे। ऐसा दावा किया गया है कि भारत की ज्योतिष विद्या और ज्योतिर्विद्या मुख्य रूप से यूनान की देन है, किंतु समुचित खोज-खबर के आधार पर यह दावा सौ प्रतिशत सही नहीं सिद्ध होता। हां, ऐसा अवश्य लगता है कि लेन-देन हुआ है तथा इस लेन-देन से दोनों ही देशों ने लाभ उठाया है।

भारतीय ज्योतिर्विदों के अन्वेषण

आज से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व भारतीय ज्योतिर्विद् वराहमिहिर ने लिखा था—

नित्य मधः स्वम्येन्दोर्भाभिर्भानोः सितं भवत्यर्द्धं।
स्वच्छाययान्य दसितं कुम्भस्येवातपस्थस्य।।

वृहत्संहिता—4/1

(अर्थात् सूर्य के नीचे स्थित चंद्रमा का आधा भाग सूर्य की प्रभा से सदा शुक्लवर्ण रहता है और चंद्रमा की अपनी ही छाया से, धूप में रखे हुए घड़े के समान, दूसरा आधा भाग कृष्णवर्ण है।)

वराहमिहिर के बाद आर्यभट्ट ने 'ग्रहण' का स्पष्टीकरण किया तथा वह स्थान निश्चित किया जहां सूर्य भूमध्य रेखा से अधिक-से-अधिक दूर पहुंचता है और उस समय का निर्धारण किया जब रात और दिन की समयावधि समान होती है। आर्यभट्ट ने पृथ्वी को गोल माना था तथा अपनी धुरी पर उसकी दैनिक परिक्रमा का उल्लेख किया था। आर्यभट्ट का कथन था, 'ग्रहों के गोले स्थिर हैं। पृथ्वी की गति ही उनके उदय-अस्त का कारण है।'

आर्यभट्ट के शिष्य ब्रह्मगुप्त ने ज्योतिर्विद्या के ज्ञान को और ही व्यवस्थित किया।

वराहमिहिर तथा आर्यभट्ट की यह परंपरा लल्ल, श्रीपत आदि से होती हुई बारहवीं शताब्दी में भास्कराचार्य तक पहुंची। लल्ल तथा भास्कर दोनों ने ही पृथ्वी के चपटी होने की पौराणिक मान्यता को चुनौती दी तो 'सूर्य सिद्धांत' में पृथ्वी के अपनी ही धुरी पर खड़ी होने की बात कही गई :

मध्ये समन्तादण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति।
विभ्राण परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम्।।

(अर्थात् ब्रह्मांड के मध्य में यह भूगोल आकाश में ब्रह्म की परमधारणात्मिका शक्ति से ठहरा हुआ है।)

इधर आचार्य लल्ल ने अपने 'लल्ल सिद्धांत' में यह प्रश्न किया—यदि पृथ्वी का रूप सम यानि चपटा है तो ताड़ वृक्ष सरीखे बहुत ऊंचे वृक्ष दूर वाले मनुष्यों को क्यों नहीं दिखाई पड़ते ?—

समता यदि विद्यते भुवस्तरवस्ताल निभा बहुच्छ्रयाः ।
कथमेव न दृष्टिगोचरं नुरहो यान्ति सुदूर संस्थिताः।।

पृथ्वी का रूप चपटा नहीं, बल्कि गोल है, यह तथ्य बारहवीं शताब्दी में भास्कराचार्य ने अपने 'सिद्धांत-शिरोमणि' में पुनः स्पष्ट किया—

सर्वतः पर्वताराम ग्राम चैत्य चयैश्चितः।
कदम्बकुसुमग्रंथिः केसर प्रसरैरिव।।

(अर्थात् चारों ओर से वन, ग्राम, पर्वत और मंदिरों के समूह से घिरा हुआ यह भूगोल केसरों से घिरे हुए कदम्ब का फूल की ग्रंथि-सा लगता है।

कहना न होगा कि कदम्ब का फूल गोल होता है।

आज पृथ्वी के (तथा अन्य ग्रहों-उपग्रहों के) गुरुत्वाकर्षण की बात सामान्य ज्ञान की वस्तु है। किंतु यह तथ्य इने-गिने लोगों को ही ज्ञात है कि सत्रहवीं शताब्दी में उत्पन्न होने वाले अंग्रेज वैज्ञानिक न्यूटन से लगभग 500 वर्ष पूर्व प्रसिद्ध हिंदू ज्योतिर्विद भास्कराचार्य ने गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत प्रतिपादित कर दिया था। उन्होंने लिखा था—

'आकृष्टि शक्तिश्च मही तपायत् स्वस्थं गुरु स्वाभिमुखं स्वशक्त्या।'

(अर्थात् पृथ्वी में आकर्षण-शक्ति है : इसीलिए आकाश में स्थित भारी पदार्थ पृथ्वी अपनी इसी शक्ति से अपनी ओर खींच लेती है।) पृथ्वी घूमती है—यह बात आर्यभट्ट के उपरांत दूसरे खगोल शास्त्री श्रीपत ने भी कॉपर्निकस से बहुत पहले स्थापित कर दी थी। उसने लिखा है :—

'नौस्थो विलोमगमनादचलं यथा न चामन्यते चलति नैवमिलाभ्रमेण।
लंकासमापर गति प्रचलद्भचक्रमाभाति सुस्थिरम पीति वदन्ति केचित्॥'

(अर्थात् कुछ लोग कहते हैं कि जैसे नौका पर चढ़ा हुआ मनुष्य अचल वस्तु (वृक्षादि) को विपरीत दिशा की ओर जाते हुए मानता है, वैसे ही पृथ्वी के घूमने से स्थिर के घूमने से स्थिर नक्षत्र चक्र भी लंका देश में पश्चिम की ओर जाता-सा जान पड़ता है।)

इस प्रकार योरप के वैज्ञानिक योगदान से पूर्व हिंदू ज्योतिर्विदों ने वैदिक परिकल्पना के बराबर से नक्षत्र-विज्ञान का मार्ग निकाल लिया था। उन्होंने चंद्रमा का व्यास, चंद्र-ग्रहण और सूर्य-ग्रहण, मुख्य ग्रहों की स्थिति और गति—ये सभी बातें ठीक-ठीक मालूम कर ली थीं। परंतु हिंदू खगोल शास्त्र भास्कर पर आकर ठहर गया और योरप का आकाश-विज्ञान सोलहवीं शती में उभार में आया।

सन् 1572 में डेनिश वैज्ञानिक टाइको ने एक चमकीले सितारे को बीच अंतरिक्ष में फटते हुए देखा था। इस संबंध में उसने एक पुस्तक भी लिखी जिसमें यह विचार व्यक्त किया कि सितारों का भी आदि, मध्य और अंत होता है। टाइको की इस क्रांतिकारी खोज ने अरस्तू की इस धारणा को निर्मूल सिद्ध कर दिया कि सितारे अचल हैं।

यदि सत्य का सहारा लिया जाए तो यह मानना पड़ेगा कि टाइको ब्राहे आधुनिक काल का सर्वप्रथम खगोल शास्त्री था। वायुमंडलीय किरण-वक्रता के प्रभावों के निमित्त ज्योतिपिण्डों की पूर्व-स्थापित स्थितियों में टाइको द्वारा संशोधन किए गए। टाइको के पास दूर-दर्शक-यंत्र (telescope) नहीं था फिर भी ग्रहों तथा नक्षत्रों के स्थानों की जो नाप-तोल उसने की, उसमें न्यूनता नाम की वस्तु नगण्य ही कही जाएगी। टाइको का विचार था कि सूर्य स्थिर पृथ्वी के गिर्द घूम रहा है तथा अन्य सभी ग्रह सूर्य के चारों ओर घूम रहे हैं।

आधुनिक काल का आरंभ

आज अंतरिक्ष-क्षेत्र में अमरीका और रूस का एक-छत्र आधिपत्य है। इन दोनों महाराष्ट्रों का अस्तित्व स्थापित होने से पहले से योरप के कुछ वैज्ञानिक अंतरिक्ष की दिशा में महत्त्वपूर्ण मौलिक कार्य कर रहे थे। उनमें कॉपर्निकस का नाम अग्रणी है। 'विज्ञान मनुष्य की उस इच्छा की अभिव्यक्ति को कहते हैं जिसके अंतर्गत वह अपने प्राकृतिक परिवेश का अन्वेषण करता तथा उसे समझने की चेष्टा करता है।' यदि विज्ञान की इस परिभाषा को उचित मान लिया जाए तो कॉपर्निकस सच्चे अर्थों में उन प्रारंभिक वैज्ञानिकों में गिना जाएगा जिन्होंने 'विज्ञान' को सार्थक किया।

पंद्रहवीं शताब्दी में उत्पन्न इस वैज्ञानिक का तत्कालीन धर्म का शिकार हो जाना स्वाभाविक था। ईसा के पश्चात् दूसरी शताब्दी में टॉल्मी नामक खगोलशास्त्री ने जो मान्यताएं स्थापित की थी, उनका बहुत-सा जंजाल कॉपर्निकस ने छिन्न-भिन्न कर दिया। उसने सबसे पहले तो यह निश्चित स्थापना की कि पृथ्वी घूम रही है। फिर उसने सूर्य को सृष्टि के मध्य में माना तथा यह निर्धारित किया कि अपने उपग्रह चांद सहित पृथ्वी भी, अन्य ग्रहों की भांति, सूर्य की परिक्रमा कर रही है। उसका कथन था कि अपनी धुरी पर पृथ्वी पश्चिम से पूर्व की ओर घूम रही है।

परंतु कॉपर्निकस की एक सीमा थी। उसके पास दूर-दर्शक-यंत्र नहीं था। इस कमी को गेलिलियो ने पूरा किया। यों तो चांद ही एकमात्र ऐसा उपग्रह है जिसे दूरदर्शक-यंत्र के आविष्कार से पूर्व भी देखा जा सकता था तथा देखा जाता था पर दूरदर्शक-यंत्र में से चांद को देखने वाला पहला प्राणी संभवतः गेलिलियो ही था। वास्तव में गेलिलियो ने न तो दूरदर्शक-यंत्र का आविष्कार ही किया था और न वह प्रथम व्यक्ति ही था जिसने उक्त यंत्र के द्वारा चांद को पहले-पहल देखा था। दूरदर्शक यंत्र आविष्कार एक आकस्मिक घटना है जो 1208 में हालैंड में घटी थी। एक दिन की बात है कि हालैंड निवासी हैन्स लिपरशे नामक ऐनकें बनाने वाले ने अपने दोनों हाथों में एक-एक ऐनक का लैन्स पकड़ा हुआ था। संयोगवश उसने उन लैन्सों के मध्य से निकटवर्ती गिरजे की मीनार को देखने का प्रयत्न किया। लिपरशे के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उसने देखा कि गिरजे के ऊपर लगा वायु-पक्षी (weather cock) अधिक निकट दिखाई पड़ रहा है। उसने दोनों लैन्स उसी दूरी पर एक नली में फिट कर लिये और इस प्रकार विश्व का प्रथम दूरदर्शक-यंत्र बना। इसके अतिरिक्त यह भी सत्य है कि जिस समय गेलिलियो के पास यह यंत्र था, उस समय अन्य कई वैज्ञानिक भी इसका प्रयोग कर रहे थे। कहा जाता है कि फेब्रिसियस, मेरियस तथा शीनर नामक वैज्ञानिकों के हाथों में भी उसी दौरान दूरदर्शक-यंत्र थे।

दूरदर्शक-यंत्र

दूरदर्शक-यंत्र में से चांद के दर्शन करके गेलिलियो ने कहा था, 'चांद समतल हीनता

का भंडार प्रतीत होता है।' और साथ ही इस सत्य को उजागर करने वाला भी वह लगभग पहला ही व्यक्ति था जिसने घोषणा की थी--'मैंने यह भलीभांति जान लिया है कि चांद पृथ्वी जैसा ही गोलाकार पिंड है।'

पृथ्वी के चांद के अतिरिक्त गैलिलियो ने उक्त यंत्र की सहायता से चार चांद और देखे थे—वे चारों बृहस्पति के चांद थे (बृहस्पति के ज्ञात उपग्रहों की संख्या बारह है।)

परंतु नक्षत्र-विज्ञान की दिशा मे आगे बढ़ने-बढ़ाने का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य किया न्यूटन ने। उसने न केवल इस भारतीय सिद्धांत की पुष्टि की कि पृथ्वी में गुरुत्वाकर्षण शक्ति है, बल्कि यहां तक लिखा, 'मेरा विचार है कि (पृथ्वी की) गुरुत्वाकर्षण शक्ति चाद के गोले तक फैली हुई है।'

न्यूटन के सिद्धांत

न्यूटन ने सृष्टि मे व्याप्त गति को स्पष्ट किया तथा बताया कि संपूर्ण सृष्टि की गति एक ही शक्ति द्वारा अनुशासित है।

वह व्यक्ति, न्यूटन ही था जिसने सबसे पहले उस शक्ति की गणना की जिसके द्वारा किसी वस्तु को अंतरिक्ष में भेजा जा सकता था।

नक्षत्र-विज्ञान के क्षेत्र में अगला बड़ा नाम जर्मन विज्ञानवेत्ता केप्लर का है। यह केप्लर की ही मान्यता थी कि ग्रहों का मार्ग वृत्ताकार न होकर अण्डवृत्ताकार है। वह स्थापना भी इसी खगोलज्ञ की थी कि प्रत्येक ग्रह इस प्रकार घूमता है कि उसको सूर्य से संबद्ध करने वाली रेखा समान समय में समान क्षेत्र को पार करेगी।

केप्लर ने सूर्य से ग्रहों की दूरी निकालने का भी नियम बनाया था। उसका कथन था कि यदि सूर्य से एक ग्रह की दूरी ज्ञात हो (जैसे कि पृथ्वी की ज्ञात है) तो अन्य ग्रहों की दूरियां मालूम की जा सकती हैं। उसकी स्थापना थी कि 'किन्हीं दो ग्रहों की परिक्रमाओं के काल के वर्ग उसी अनुपात में होते हैं, जिस अनुपात में सूर्य से उनकी औसत दूरी के घन होते हैं।'

केप्लर के बाद तो आकाश का अध्ययन करने वालों की एक अनन्त कतार है, जिसकी लंबाई दिनों-दिन बढ़ती ही जाती है। आज मनुष्य की आंख चांद, सूरज तथा ग्रहों तक ही सीमित नहीं है। रेडियो-टेलिस्कोप ने उसकी आंख की शक्ति हजारों गुना बढ़ा दी है। अब उसे केवल अपना सौर-मंडल ही नजर नहीं आता बल्कि आकाश-गंगा के अन्य अनेक सौरमंडल भी नजर आते हैं।

नीहारिकाएं

आज का नक्षत्र-वैज्ञानिक दस करोड़ ज्ञात नीहारिकाओं के समूह में घूम रहा है तथा 'नेति-नेति' ब्रह्मांड को नापने की चेष्टा में लगा हुआ है। उसके लिए चांद बहुत मामूली चीज रह गया है। बहुत पीछे छूट गया है।

किन्तु नक्षत्र-विज्ञान का एक सिरा आज भी चांद में ही बंधा हुआ है—उसी चांद से, जिसको देवता मानकर ऋग्वेद काल के आर्य उसकी स्तुतिप्रशस्ति करते रहे तथा जिसको भूमि मानकर खगोल शास्त्री उसके नक्शे बनाते रहे। हालांकि नक्शे बनाने का कार्य सत्रहवीं शताब्दी के आरंभ में ही शुरू हो गया था, फिर भी मुख्य नक्शा-नवीसों में बीअर, मेड्लर तथा श्मिट के नाम आते हैं। ये तीनों उन्नीसवीं सदी के नक्शा-नवीस हैं।

और इन्हीं सब प्रयत्नों का परिणाम है आज का दिन जबकि उन लोगों के घरों में भी चांद के प्रामाणिक चित्र मौजूद हैं जो चांद को आज भी देवता ही समझ कर पूज रहे हैं।

3. उड़ने की कला

गुरुत्वाकर्षण ने प्राणी के पांव पृथ्वी से बांधे हुए हैं—संभवतः इसीलिए मनुष्य मन से सदा आकाश-चारी रहा है। यह मानवीय स्वभाव है कि जो उपलब्ध नहीं, वही श्रेष्ठ है।

मनुष्य आरंभ से ही पृथ्वी पर रहा—उस पृथ्वी पर जिसके विषय में बीसवीं सदी के लिओनार्दो फ्रेड हायल ने दिल्ली में कहा था, 'धरती चंद्रमा से [illegible], बहुत दूर से खींचे गए पृथ्वी के चित्र से मिलती है। कैसी सुंदर है पृथ्वी अपनी दूर से—एक झिलमिल-झिलमिल करता नीला गोला। सफेद बादलों के निरंतर परिवर्तनशील आकार-प्रकारों से ढकी-मुंदी। देखिए, उस चित्र को और आपको लगेगा कि इस नीलमणि पर रहने वाले हम लोग अत्यंत भाग्यशाली हैं।'

किंतु मनुष्य ने स्वर्ग की कल्पना ऊपर की, आकाश में, जहां वह पहुंच नहीं सकता था। उसने क्रमशः अपने मन में यह बात बैठा ली कि वरदान और अभिशाप ऊपर से आते हैं, भविष्यवाणियां भी ऊपर से होती हैं तथा स्वर्ग और क्षीर-सागर ऊपर है।

मनुष्य के लिए आकाश सबसे बड़ा आकर्षण रहा है। उसकी इच्छा की ऊंची उड़ान यह रही है कि वह आकाश में पहुंचे किंतु उसे अपनी सीमाओं का पता था। उसे मालूम था कि ऊपर जाने के लिए उड़ने की कला आनी चाहिए और प्रकृति ने मनुष्य के साथ एक बड़ा तीखा मज़ाक किया था—उसने मनुष्य की इच्छा को पंख दिए थे, कल्पना को पंख दिए थे, विचार को पंख दिए थे, किन्तु शरीर में पंख नहीं लगाए थे ताकि मनुष्य भीतर और बाहर दोनों स्थानों पर घुटे।

भीतरी घुटन ने उसे इस कल्पना पर टिकाया कि मरने के बाद मनुष्य की आत्मा ऊपर की ओर जाती है क्योंकि शरीर की स्थूलता त्यागने के बाद वह सूक्ष्म रूप हो जाती है। अतः जीवित न सही, मरकर ही सही, मनुष्य ने बंदीगृह से बाहर निकलने की बात सोची।

मनुष्य ने आरंभ से ही विचारधारा को जन्म दिया, जिसे 'धर्म' कहते हैं। वास्तव में धर्म उन उपयोगी नियमों का समूह है जिनके पालन से मनुष्य सुरक्षित, स्वस्थ तथा सफल हो सके। मानव-जीवन के इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए, आदि काल

में ही कुछ अलौकिक शक्तियों की कल्पना की जाना स्वाभाविक था। लेकिन क्योंकि मनुष्य के मन में उड़ने की वृत्ति सर्वोपरि थी इसीलिए प्राचीन धर्मों में वर्णित देवी देवताओं को उड़ने वाले प्राणियों की शक्ल दी गई। यूनानी मिस्री तथा भारतीय धर्म ग्रंथों में ऐसे देवी देवताओं का उल्लेख मिलता है जिनके पंख नहीं थे किंतु वे उड़ सकते थे। यूनानी पुराण-कथा में इकारस तथा रामायण में संपाती-हनुमान आदि उड़ने वाले प्राणी चित्रित किए गए है।

प्राचीन भारतीय साहित्य तो उड़ने की बातों से भरा पड़ा है। अथर्ववेद से लेकर पुराणों, महाकाव्यों एवम् नाटकों तक में उड़ने का उल्लेख है। इस कला के लिए यान, रथ, व्यक्ति सभी को प्रयुक्त किया गया है। मृत प्राणियों के लिए 'देव-यान' और 'पितर-यान' का उल्लेख है जिसके अनुसार देवयान पर सवार होने वाली मृतात्मा सूर्यलोक में पहुंचती है और पितर-यान पर आरूढ होने वाली मृतात्मा चंद्रलोक में पहुचती है। रथों के उड़ने की बात 'रामायण' महाकाव्य एवं 'शकुंतला' नाटक में है। रामायण में पुष्पक विमान का भी वर्णन है। इसके अतिरिक्त महाभारत में प्रक्षेपणास्त्रों का वर्णन तथा पुराणों में अन्य लोकों में आवागमन का उल्लेख है। विरोधी दलों द्वारा आकाश में पहुचकर युद्ध करने की बातें भी हमारे यहा प्रचलित है। लक्ष्मण को शक्ति लगने के उपरांत हनुमान संजीवनी बूटी का पहाड़ उठाकर आकाश मार्ग से आते हुए वर्णित किए गए हैं। तथा सुरों और असुरों—दोनों उड़ानों की हमारे यहा भरमार है। ऐसी अवस्था में यह विश्वास होना स्वाभाविक ही है कि भारत में उड़ने की कला बहुत प्राचीन काल से प्रचलित रही है तथा उसका ह्रास महाभारत नामक महायुद्ध के बाद हुआ।

इस विषय में निश्चित निर्णय करने के मार्ग में कुछ कठिनाइयां हैं। वास्तव में भारतीय ग्रंथों की लेखन-तिथि आज भी विवाद का विषय बनी हुई है। साथ ही उक्त ग्रंथों के स्वरूप यथावत् नहीं रह पाए हैं। उनमें स्थान-स्थान पर प्रक्षिप्त अंश है। फिर उड़ने की कला पर जब आज के संदर्भ मे दृष्टिपात किया जाता है तो कार्य इतना सरल लगता भी नहीं।

उड़ान साधरणतया तीन प्रकार की हो सकती है : (1) शारीरिक उड़ान, (2) मानसिक उड़ान और (3) आध्यात्मिक उड़ान। भारतीय जनमत आज भी बात पर जिद करता है कि भारत में तीनों ही प्रकार की उड़ानें अपनी पराकाष्ठा पर रही है। इस बारे में मानसिक उड़ान के विषय में तो विवाद हो ही नही सकता क्योंकि मन किसी भी सीमा को स्वीकार नहीं करता। परा-मनोविज्ञान के नवीनतम अन्वेषण का निष्कर्ष यह है कि मन उन स्थलों, वस्तुओं तथा सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्वों तक भी पहुंचने में समर्थ है, जहां उसके पहुंचने की कोई आशा नहीं की जा सकती। मन की गति से तीव्रतर गति की कल्पना अभी नहीं की जा सकी है।

और आध्यात्मिक क्षेत्र में तो भारत का लोहा आज भी संपूर्ण संसार स्वीकार करता है। वास्तव में शरीर और मन से ऊपर आत्मा की स्थापना का श्रेय भारत

को ही है इसमे कोई सन्देह नही है कि भारत ने पश्चिम से बहुत पहले इस सूक्ष्म जगत मे प्रवेश किया है और भारतीय मनीषिया की पैठ बहुत गहरी मानी गई है अध्यात्म का जो विकास भारतीय ऋषि मुनिया के सदप्रयत्नो का परिणाम है वह आज भी किसी भी सभ्य से सभ्य जाति अथवा राष्ट्र की स्पर्धा का विषय हो सकता है। अतः भारत की आध्यात्मिक उडान के विषय में भी दो मत प्रकट करना खतरे से खाली नही है।

अब प्रश्न केवल पार्थिव उड़ान का रह जाता है। हमारे ग्रंथों के विचार से तो यह प्रकरण भी पूर्ण समझना चाहिए किंतु आधुनिक अंतरिक्ष-उड़ानो ने जो प्रश्न उजागर किए हैं उनके प्रकाश में भारत की पार्थिव उड़ानो पर विचार किया जा सकता है।

यहा यह मानकर चलना आवश्यक है कि उडने की कला सरल नही है बल्कि बहुत कठिन है। पक्षियो को उड़ते देखकर इसकी सरलता का कुछ भ्रम भले ही हो जाए, किंतु उडने की कला के साथ अनेक महत्त्वपूर्ण प्रश्न जुड़े हुए हैं तथा इतनी भारी जोखिमे हैं कि उनसे सफलता-पूर्वक साक्षात्कार किए बिना उड़ान सर्वथा असभव है। अब भारतीय ग्रथो में जहा-जहां उडने का उल्लेख है, वहा, उड़ने की कठिनाइयो की ओर कोई सकेत नही है। उन वर्णनों को पढ़कर तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि उड़ना मज़ाक हो। इसलिए उनमे अधिकाश वर्णन तो काव्योचित ही प्रतीत होते है, जिनमें अतिशयोक्ति का निर्बन्ध उपयोग किया गया है।

अलबत्ता चद स्थानों पर यान-निर्माण की प्रक्रिया के दर्शन होते है। लका-विजय के उपरांत जिस समय राम पुष्पक विमान में बैठकर अयोध्या लौटते है तो उस समय का वर्णन उस विहंगम-दृश्य को बडी सजीवता और सजीदगी से प्रस्तुत करता है तथा यह मान लेने को मन करता है कि स्व-अनुभव के बिना ऐसा वर्णन सभव नही है। फिर कल्पना के लिए भी तो कोई-न-कोई आधार चाहिए। सो इस विषय मे सबसे कारगर आधार तो चिड़ियों का उडना ही है। फिर भी पृथ्वी पर उड़ान भरने वाले यान किसी समय हमारे देश में रहे हों तो बहुत अधिक आश्चर्य की बात नही है। किंतु उन वाहनों की सीमाएं व्यापक मानने मे कठिनाई होगी।

कई लोग इस विषय मे योग की दुहाई देते है। भारत की आत्मिक शक्ति का दावा दोहराते है। योग द्वारा भी आध्यात्मिक एवम् मानसिक उड़ानों की ही गुजाइश है। पार्थिव परमाणुओं के विघटन एवम् गन्तव्य पर पहुंचकर स्वेच्छा से पुनः संगठन की बातें केवल बातें ही मालूम पडती हैं। वास्तव में आत्मिक शक्ति का प्रयोग आध्यात्मिक उडान में ही उपयोगी हो सकता है। शारीरिक उड़ान में तो भौतिक समस्याओं से ही जूझना होगा। और हमारे देश ने तो भौतिकता को आरंभ से ही नकारा है और अध्यात्म की दुंदुभि बजाई है। ऐसी अवस्था में यह कैसे मान लिया जाए कि भारत भौतिक उड़ानों में आगे था ? अतः अधिक तर्कसंगत तो यही प्रतीत होता है कि हमारी उड़ानें आध्यात्मिक ही थी।

उड़न-यंत्र के निर्माण की ओर

तथ्य यह है कि मनुष्य खग-विहगों को स्वच्छंदता से उड़ता देखता था और स्वयं भी उसी प्रकार उड़ने के लिए लालायित होता था। जब उसका शरीर नहीं उड़ पाता था तो ख्याल सुरताब वह अपने मन को उड़ाता था और वह अनुभव करके प्रसन्न होना चाहता था कि वह उड़ने में सफल हो गया है। क्योंकि यह सच्चाई मनुष्य को मालूम हो गई थी कि चिड़ियों की भांति उड़ना, देखने में जितना सरल लगता है, करने में उतना ही कठिन है। इस प्रकार इस प्रयत्न में हजारों वर्ष गुजर गए किंतु उड़ने वाले यंत्र की कुंजी हाथ नहीं आई।

इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य पंद्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ जबकि अद्वितीय प्रतिभा-संपन्न इतालवी महापुरुष लिओनार्दो ने पक्षी जैसी एक उड़ान-मशीन के नमूने और नक्शे तैयार किए। उड़ने की दिशा में लिओनार्दो के प्रयत्न को एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव कह सकते हैं।

सत्रहवीं शताब्दी में एक और महत्त्वपूर्ण मंजिल प्राप्त की गई। जॉन विल्किन्स नामक वैज्ञानिक ने इस तथ्य को हृदयंगम कर लिया कि कई पक्षी बिना पंख हिलाए भी उड़ सकते हैं। इस ओर विल्किन्स ने कुछ कार्य भी किया परंतु इस उपयोगी संकेत को तत्कालीन वैज्ञानिक-समाज ने नजर अंदाज किया। इसका दुष्परिणाम यह निकला कि मनुष्य के यह ज्ञान का सूत्र उस समय उसके हाथ से निकल गया।

लगता ऐसा है कि उन दिनों मनुष्य को पंख लगाकर उड़ने की ही धुन सवार थी। यह तो कहना कठिन है कि कृत्रिम पंख लगाकर कितने लोगों ने उड़ने का प्रयत्न किया किंतु अठारहवीं शताब्दी में ओटो लिलिएंथल का नाम काफी लोकप्रिय हुआ। वास्तव में इस व्यक्ति ने उड़ने के लिए बड़े विशाल पंखों का निर्माण किया और उन्हें लगाकर उड़ने की कोशिश की। लेकिन उसे सफलता नहीं मिली। बल्कि उस वैज्ञानिक को तो यही जानकर जबरदस्त अफसोस हुआ कि उन विशाल पंखों को उड़ाने अथवा हिलाने योग्य शक्ति तो वह जुटा ही नहीं सकता।

1782 ई. में मांटगॉल्फियर नामक दो बंधुओं ने यह मालूम कर लिया कि यदि किसी हल्के से कागजी थैले में कुछ गर्म हवा भर दी जाए तो वह थैला अथवा गुब्बारा हवा में उड़ सकता है। इस प्रकार गर्म वायु वाले गुब्बारे उड़ने के युग का सूत्रपात हुआ।

गुब्बारों का युग

मांटगॉल्फियर बंधुओं ने विभिन्न आकार के गुब्बारे उड़ाकर दिखाए किंतु गुब्बारे में बैठकर पहली पहल यात्रा की रोजियर और आर्लैण्ड्स ने। यह उड़ान 21 नवंबर, 1783 के दिन की गई जिसमें 6 मील का सफर लगभग 25 मिनट में तय किया गया।

हाइड्रोजन नामक अत्यंत हल्की गैस का पता उन्हीं दिनों लगा था। दिसंबर, 1783 में गर्म वायु के स्थान पर पहली बार हाइड्रोजन गैस का प्रयोग किया गया।

हाइड्रोजन भरे गुब्बार मे सर्वप्रथम चार्ल्स और राबर्ट ने वायु यात्रा की

इसके बाद की एक शताब्दी का इतिहास विभिन्न प्रकार के गुब्बारा की उडानो से भरा पडा है गुब्बारो की उडान मे सवाधिक उल्लेखनीय उडान सोलोमन एंड्री तथा उसके दो साथियो की थी जिन्होने 11 जुलाइ 1897 को उत्तरी ध्रुव पार करने लिए उड़ान भरी थी तथा मार्ग मे ही मृत्यु को प्राप्त हो गए थे।

यों तो वायु से हल्के यानों का प्रयोग किसी कदर दूसरे विश्व युद्ध तक हुआ किंतु जो मूल्यवान सूत्र विल्किन्स के बाद गवा दिया गया था, उसे एक जर्मन आविष्कर्ता ऑटो लिलिएंथल ने अपनाया तथा वायु से अधिक भारी ग्लाइडर नामक यत्र का निर्माण किया। परतु सही अर्थो मे हवा से भारी उड़ान-यत्र राइट बंधुओ का 'किटीहॉक' था, जिसने 1903 मे पहली उड़ान भरी थी। उस यंत्र की रफ्तार 20 मील प्रति घटा थी।

पंखों वाले वायुयान

आज यह कम आश्चर्य की बात नहीं लगती है कि अमरीका निवासी राइट बंधुओं के इस अनुपम आविष्कार में उनके अपने देश की सरकार तथा जनता ने पाच वर्षों तक तनिक भी दिलचस्पी नहीं ली थी। यह ठीक है कि राइट बधुओं की उपलब्धि जेट यान अथवा रॉकेट यान के मुकाबले में नगण्य थी किंतु अपने समय की तो यह बहुत ही निराली सिद्धि थी।

राइट बंधुओं के उडन-यंत्र में एक समय दो व्यक्ति बैठ सकते थे किन्तु एक व्यक्ति वाले उडन-यंत्र के एक अन्य फ्रासीसी निर्माता लुई ब्लेरियत ने 1909 मे 37 मिनट में 31 मील का फासला तय करके इंग्लिश चैनल पार की थी। उस समय की दृष्टि से यह उपलब्धि बहुत ही महत्त्वपूर्ण थी। इसके 10 वर्ष बाद 1919 मे अटलांटिक महासागर को भी वायुमार्ग से पार कर लिया गया।

जेट-यान

पंखों वाले वायुयानों के स्थान पर जेट के दर्शन दूसरे महायुद्ध के अंतिम दिनो मे हुए जो 1,000 किलोमीटर के आस-पास की दूरी एक घटे में तय कर सकते थे। और फिर सामरिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण अतिस्वन (supersonic) विमान की बारी आई जो लगभग 225 किलोमीटर की ऊंचाई तक उड़कर अंतरिक्ष के हाशिए का स्पर्श कर सकता है। किंतु यह तो उड़ने की कहानी की भूमिका है। असली कथा तो अतरिक्ष की उड़ान है जिसकी आवृत्ति रॉकेट की जबानी ही हो सकती है।

प्रश्न उठता है कि रॉकेट क्या चीज है ? रॉकेट, वास्तव में प्रतिक्रिया पर आधारित एक साधन है। रॉकेट की धारणा न्यूटन के तीसरे गति-नियम पर आधारित है—'क्रिया के साथ सदा ही समान तथा विपरीत प्रतिक्रिया होती है।'

ईंधन के जलने से अधिक दवाब वाली गैसें उत्पन्न होती हैं। ये गैसें रॉकेट

के पृष्ठ भाग में स्थित सूराख से बाहर निकलती है जिसके परिणामस्वरूप संवेग तथा विपरीत प्रतिक्रिया के आवेग से रॉकेट को आगे बढ़ने के लिए आवश्यक नोदन प्राप्त होता है।

रॉकेट

रॉकेट का जन्म साधारणतया तेरहवीं शताब्दी के आरंभ में माना जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि बारूद के आविष्कार के बाद रॉकेट का निर्माण चीनियों ने ही किया था तथा 1232 में उन्हीं की सहायता से मंगोल आक्रमणकारियों को चीन की भूमि से खदेड़ा था।

चीन से रॉकेट ने भारत में पदार्पण किया तथा आखिरकार यूरोप की धरती के दर्शन किए। किंतु राइफल के निर्माण के बाद रॉकेट उपेक्षा का पात्र बन गया क्योंकि रॉकेट का निशाना राइफल के निशाने से कमजोर था। लेकिन अठारहवीं शताब्दी में रॉकेट फिर सामरिक महत्त्व का शस्त्र बना। 1780 ई. में हैदर अली ने और 1792 ई. में टीपू सुल्तान ने अंग्रेजी सेनाओं के विरुद्ध रॉकेट का प्रयोग बड़े प्रभावशाली ढंग से किया था। ये रॉकेट पांच सेर से भी अधिक तौल के थे तथा आधे मील तक करारी मार करते थे।

इंग्लैंड में रॉकेट के विचार को कर्नल कौन्ग्रेव ने आगे बढ़ाया। कौन्ग्रेव रॉकेट नेपोलियन के विरुद्ध लड़े गए युद्धों में बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ। फ्रांसीसी नगर बालोन के पतन से लेकर वॉटरलू में नेपोलियन की पराजय तक रॉकेट ने अंग्रेजी सेनाओं का साथ दिया। कोन्ग्रेव रॉकेट लगभग 15 सेर का था तथा दो मील की दूरी तक मार करता था। इस रॉकेट की मार 1814 ई. में अमरीकियों को भी सहनी पड़ी थी। फिर भी कौन्ग्रेव-रॉकेट को आज के विचार से बहुत सफल प्रयास नहीं कह सकते।

रॉकेट का प्रयोग मात्र युद्ध में ही नहीं हुआ—समुद्री जीवन में जीवनदायक के रूप में भी हुआ। फ्रांसीसी वैज्ञानिक फ्रेज़ियर के रॉकेट का विकास कर्नल बॉक्सर द्वारा जीवन बचाने वाले दो चरणों वाले रॉकेट के रूप में किया गया। बॉक्सर-रॉकेट का प्रयोग तो इंग्लैंड में उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में भी काफ़ी समय तक होता रहा।

रॉकेट-विकास की दिशा में महत्त्वपूर्ण पग सोवियत भूमि पर उठाया गया। रूस में 1881 में निकोलाई किबाल्चिच् नामक आविष्कर्ता ने एक ऐसे यान का नमूना बनाया जो प्रक्षेपक-शक्ति से चल सकता था। किबाल्चिच् ने अपने यान का डिजाइन तब बनाया था जब वह बंदीगृह में था। किबाल्चिच् को मृत्यु दंड मिलने के कारण उसका कार्य तो वहीं रह गया परंतु रूस में ही दूसरा वैज्ञानिक कॉन्सतान्तिन सियलकोवस्की अंतरिक्ष-उड़ान का जनक माना गया।

सियलकोवस्की ने 1903 में अंतरिक्ष-यान का एक नमूना तैयार किया था। उसका मत था कि अंतरिक्ष-यान में केवल रॉकेट ही एकमात्र सही वाहन सिद्ध हो सकता है।

था तो नामूली अध्यापक लेकिन उसने रॉकेट के चुनाव के अतिरिक्त उसको चलाने के लिए मोटर के निमाण सबधी सूत्र भी निकाले तथा प्रकाशित भी कराए 1914 मे इसी रूसी अध्यापक ने चद छोटे छोटे रॉकेट चलाए भी जो कि 500 फीट की ऊचाइ तक गए।

अतरिक्ष-यात्रा की गणितीय संभावनाएं

सियलकोवस्की के पीछे ही पीछे फ्रान्स के राबर्ट पेल्ट्री ने भी एक यात्री-यान बनाने तथा अतरिक्ष-यात्रा की गणितीय सम्भावनाओं के विषय मे जानकारी प्राप्त करने की कोशिश की।

रॉकेट के क्षेत्र मे अमरीका भी पीछे नहीं रहा। वहा के वैज्ञानिक रॉबर्ट गोडार्ड ने रॉकेट में प्रयुक्त करने के लिए नए ईधन की तलाश शुरू की। इस तलाश और उसके नतीजे ने तो रॉकेट-अनुसधान की दिशा ही बदल दी। गोडार्ड को यह पता चल गया कि यदि रॉकेट को 'वातावरण' से बाहर भेजना है तो उसके लिए निश्चय ही अधिक शक्ति की आवश्यकता होगी और वैसी शक्ति तरल ऑक्सीजन (liquid oxygen) जैसे तरल ईधन से ही प्राप्त की जा सकती है।

सन् 1919 मे गोडार्ड ने इस विषय मे एक पुस्तिका प्रकाशित की, जिसकी प्रति बाद में रूमानिया के प्रोफेसर हर्मन ओबर्थ ने भी मागी।

अमरीका के भौतिक शास्त्री रॉबर्ट को आधुनिक रॉकेट का जनक कहा जाता है। इसका करण शायद यह है कि 17 मार्च 1926 को जो रॉकेट गोडार्ड ने चलाया था उसमें तरल ईधन का प्रयोग किया गया था (कहना न होगा कि अपोलो यान का वाहक शनि-5 नामक रॉकेट तरल ईंधन से ही चलता है)। यह रॉकेट लगभग 150 फ़ीट ऊपर गया था। वास्तव में, गोडार्ड पृथ्वी के बाहरी वायुमंडल मे कुछ शोध-यंत्र भेजना चाहता था। इसी प्रयत्न में उसका हाथ सही वस्तु पर पड़ा था—वह वस्तु थी रॉकेट।

1920 के ही आस-पास कुछ जर्मन वैज्ञानिकों ने अंतरिक्ष-वाहन के रूप में रॉकेट के विकास का प्रयास किया। उनका नेता हर्मन ओबर्थ था जिसने 1923 में 'ग्रहीय अंतरिक्ष मे रॉकेट' नामक एक पुस्तक भी प्रकाशित की थी। लेकिन यदि सच कहा जाए तो अतरिक्ष-उडान की नींव - पक्की पुख्ता नींव 1942 मे रखी गई जब 3 अक्टूबर को वाकई एक विशाल रॉकेट जर्मनी में सफलतापूर्वक छोड़ा गया। यह रॉकेट 46 फीट लंबा था तथा इसका वज़न 14 टन था। एक प्रकार से यह एक परीक्षण-प्रयास था। यह रॉकेट उस विशाल वी-2 रॉकेट का अगुआ था जिसका प्रयोग 1944 में इंग्लैंड के विरुद्ध किया गया था तथा जो ध्वनि की गति से भी तेज़ चलता था। वी-2 रॉकेट एक टन भार को 200 मील की दूरी तक ले जा सकता था। वी-2 रॉकेट के निर्माताओ में मुख्य नाम बर्नर व्हान ब्रॉन का लिया जाता है, जिसको उस शनि-5 (Saturn-5) रॉकेट के निर्माण का श्रेय प्राप्त है, जिसके द्वारा प्रथम मानव चंद्रमा पर उतारा गया।

जर्मन वी-2 रॉकेट

वास्तव में हिटलर ने वी-2 रॉकेट अपने शत्रुओं पर बम फेंकने के लिए बनवाया था। इसलिए यदि यह कहा जाए कि चंद्र-विजय के रचनात्मक अभियान में विनाशकारी बम का भी हाथ है तो कोई अत्युक्ति न होगी।

1945 में अमरीका द्वारा 'कार्पोरल' रॉकेट छोड़ा गया। वैसे जर्मनी को हराने की क्रिया में अमरीका के हाथ कुछ बने-बनाए वी-2 रॉकेट भी आए थे। उनका उपयोग वायुमंडल के अन्वेषण में किया गया। इनके अतिरिक्त अमरीका द्वारा 'ऐरोबी' और 'वाइकिंग' रॉकेट भी छोड़े गए जो कि बाहरी वायुमंडल में कार्य करने के लिए अधिक उपयुक्त थे।

लगता है, इस बार रॉकेट की उपेक्षा का अवसर नहीं था क्योंकि इसके बाद तो रॉकेट-निर्माण का ऐसा क्रम चला कि शक्तिशाली शनि-5 भी अंतिम शिखर नहीं प्रतीत होता—चंद्र-विजय के साथ रॉकेट के और अधिक विकास का द्वार प्रशस्त हो गया लगता है।

इस उक्ति में कोई गड़बड़ नहीं है कि रॉकेट के अभाव में आकाश-चारण का सपना मात्र सपना ही रह जाता। फिर भी उड़ने की कला को चंद्रविजय का संपूर्ण श्रेय दे देना उचित नहीं होगा। इस दिशा में उन लोगों का योगदान भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है जिन्होंने एक भी यान या रॉकेट नहीं बनाया, किसी यंत्र मे उड़ान नही भरी तथा न ही दूर-दर्शक की आंख से आकाश का चप्पा-चप्पा छाना। वे लोग अपने अध्ययन कक्षों मे बंद रहे तथा मनुष्य के स्वाभाविक स्वप्न को कागज के पृष्ठों पर उतारते रहे। दुनिया की दृष्टि से उनके यह प्रयत्न कथा-कहानियां थे जोकि सर्वथा कल्पनाप्रसूत थे किंतु व्यावहारिक वैज्ञानिकों के लिए ये 'कथाएं' बड़े काम की सिद्ध हुई। इसमें बहुत अधिक आश्चर्य की बात नहीं है कि अपोलो-8 की उड़ान उस काल्पनिक उड़ान के अत्यंत निकट रही जिसका वर्णन सौ वर्ष पूर्व फ्रांसीसी विज्ञान-कथा लेखक जूल्स वर्न ने किया था।

विज्ञान-कथा-लेखकों का योगदान

संस्कृत के काव्य एवम् नाट्य-ग्रंथों में विभिन्न लोकों की यात्राओं की चर्चाएं बराबर मिलती हैं। भारतीय पुराण भी ऐसे संदर्भों से भरपूर हैं। किंतु तत्कालीन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए यह समझने में कोई कठिनाई नहीं होती कि उक्त पुस्तकों मे 'लोक' का प्रयोग 'अवलोकनीय' के ही अर्थ में हुआ है। हां, उक्त प्रसंगों से पृथ्वी के परे जाने की आदमी की अदम्य अभिलाषा अवश्य प्रकट होती है।

अनेक स्थलों पर उड़ते रथों, उड़न खटोलों, जादुई गलीचों तथा उड़ते घोड़ों के वर्णन मिलते हैं (मनुष्यों के उड़ने का भी उल्लेख है)। ये सारे प्रसंग भी मनुष्य की पक्षीवत् उड़ने की इच्छा को ही व्यक्त करते हैं फिर चांद से संबंधित

हो जिसमे चद्रमा का गुणगान न किया गया हो

सन् 160 ई के आस पास ल्यूशियन नामक यूनानी ने एक पुस्तक लिखी जिसम चद्रमा पर पहुचने का वर्णन था इस पुस्तक के अनुसार एक जहाज ने हरकुलिम के स्तभों से बाहर जाने की कोशिश की तथा उसके मल्लाह चाद पर पहुच गए इस पुस्तक मे एक व्यक्ति द्वारा पख लगाकर चाद तक उड़ने का उल्लेख है।

सत्रहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध ज्योतिर्विद केप्लर ने भी 'सोमनियम' नाम की एक विज्ञान-कथा लिखी थी, जिसका प्रकाश उसकी मृत्यु के बाद हुआ। 'सोमनियम' में केप्लर ने चांद के लिए उसी 'सोम' शब्द को प्रयोग किया है, जिसका प्रारंभिक प्रयोग ऋग्वेद मे मिलता है। इस पुस्तक में चंद्र-यात्रा का काल्पनिक वर्णन है। केप्लर का विश्वास था कि चंद्रमा पर भयंकर शीत और भयकर गर्मी पडती है। उसके अनुसार चाद पर विशाल पर्वत थे तथा संभवतः वहां पर इतिहास-पूर्व के रेंगने वाले विशालकाय जतु निवास करते थे। 'सोमनियम' में अंतरिक्ष की वायुहीनता और भारहीनता का भी वर्णन है।

1638 मे फ्रांसिस गॉडविन की 'चंद्रमा पर मनुष्य' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। उक्त उपन्यास का नायक गोन्ज़ाल्स साधारण तख्त पर बैठ गया तथा पच्चीस बडे-बड़े हसों ने उसे अपने ऊपर उठाकर चांद तक पहुचाया। चांद पर गोन्ज़ाल्स को जो आदमीनुमा प्राणी मिले वे 28 फीट ऊंचे थे। गॉडविन ने भारहीनता का वर्णन तो किया है किंतु वायुहीनता का ज्ञान उसे नही था। इसलिए उसके चंद्र-यात्री को सास लेने में कोई कठिनाई नही हुई।

फ्रांस के व्यंग्य लेखक साईरानो द बर्जेरैक् ने भी चद्र यात्रा का काल्पनिक वर्णन किया था जिसमें ज्वलनशील पटाखे द्वारा एक रथ को चांद पर भेजा गया। रॉकेट के प्रयोग का चंद्रयात्रा में उल्लेख यहां पहली बार हुआ।

बीसवीं सदी के आरंभ में एक आंग्ल लेखक एच. जी. वेल्स ने अपनी पुस्तक 'चांद पर पहले प्राणी' प्रकाशित कराई थी।

ये विज्ञान-कथाएं 'वैज्ञानिक ज्ञान, कामनापूर्ण विचार तथा मुक्त-अनुमान' के मिले-जुले प्रयास थे। इन प्रयासों मे फ्रासीसी लेखक जुल्स वर्न की पुस्तक 'पृथ्वी से चंद्रमा की ओर' असलियत के बहुत करीब बन पड़ी है। यद्यपि यह पुस्तक 1865 मे लिखी गई थी, एक शताब्दी बाद होने वाले अपोलो-8 की उड़ान के इतने करीब प्रतीत होती है कि कई बार तो यह संदेह होता है कि सभवतः अमरीकी विज्ञान का आदर्श जुल्स वर्न की यह काल्पनिक पुस्तक ही थी।

जुल्स वर्न लिखता है कि 'फ्लोरिडा में एक बड़ी तोप से मानव-सहित अंतरिक्ष-यान छोडा गया। इस यान ने 25,000 मील प्रति घटा की गति से पृथ्वी की कक्षा को पार किया। उक्त यान का संचालन रॉकेटो से किया गया तथा उसने चद्रमा की परिक्रमा की।

'पृथ्वी के वायुमंडल से गुजरता हुआ यान अत्यधिक उष्णता के कारण लाल सुर्ख हो गया तथा लौटकर प्रशांत महासागर मे उतरा।' जुल्स वर्न ने यह भी स्पष्ट

किया कि पृथ्वी से चद्रमा की दूरी 2,38,833 मील है।

उक्त उपन्यास मे अतरिक्ष-यान के निर्माण का ब्योरा भी उपलब्ध है—'यान का निर्माण लोहे की ढलाई द्वारा गोलाकार शक्ल मे किया गया तथा उसकी भीतरी दीवारो पर अल्मोनियम का अस्तर चढ़ाया गया। यान की ऊंचाई 12 फीट, आधार का क्षेत्रफल 54 वर्ग फीट तथा भार 12,230 पौण्ड था।'

जुल्स वर्न ने चद्रमा के धरातल का भी वर्णन किया है। उसके अनुसार 'चाद का तल चट्टानी है तथा उसमे गहरे गड्ढे हैं। चद्रमा पर जीवन नहीं है।'

इस उपन्यास की रचना के उपरांत 1890 मे तो हर्मन गैन्सविंट ने अतरिक्ष-यात्रा के संबध में भाषण भी देने आरभ कर दिए थे।

चद्रमा की काल्पनिक उड़ानों का युग उन्नीसवीं शताब्दी की समाप्ति के साथ ही समाप्त हो गया। रूस के अध्यापक सियलकोवस्की ने रॉकेट की गति से संबंधित नियमो की खोज इसी दौरान की तथा अंतरिक्ष उड़ानों के सबध मे अनेक लेख प्रकाशित किए। यह विश्वास उसी गणितज्ञ का है कि एक दिन ऐसा आएगा जब मनुष्य सौरमंडल के अन्य ग्रहो-उपग्रहो तक पहुंचेगा।

अमरीका के रॉबर्ट गोडार्ड ने 1919 में ऋतु-विज्ञान रॉकेटों का गणितीय विश्लेषण 'A Method of Reaching Extreme Altitudes' नामक पुस्तिका में प्रकाशित किया। गोडार्ड ने यह स्पष्ट किया कि ज्वलनशील बारूद का प्रयोग करके चांद तक पहुचा जा सकता है।

रोमानिया के प्रोफेसर हर्मन ओबर्थ ने 1922 में एक पुस्तक 'The Rocket to Interplanetary Space' प्रकाशित की। ओबर्थ की यह पुस्तक ही जर्मन वैज्ञानिको के लिए बाइबल बन गई।

इसी विषय से सबंधित एक अन्य महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'The Attainment of Heavenly Bodies' वाल्टर होहमैन ने 1925 मे लिखी। बस फिर क्या था ? इसके बाद तो अंतरिक्ष उड़ान संबधी ग्रथों, पुस्तिकाओं तथा लेखों की बाढ़-सी आ गई। इस बाढ़ में दो रचनाएं अधिक महत्त्वपूर्ण होने के कारण उल्लेखनीय हैं—पहली है 'Across the Frontier' जो कि वर्नर व्हॉन ब्रॉन, डॉ ह्विपल तथा विली ले नामक तीन लेखकों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि मनुष्य वायुमंडल को पार करके अतरिक्ष में अगले पंद्रह वर्षो में किस प्रकार कृत्रिम उपग्रह-स्टेशन कायम कर सकता है।

1952 ई. में इन्हीं तीनों वैज्ञानिको ने एक अन्य पुस्तक प्रकाशित की—'Conquest of the Moon' । इस पुस्तक में अंतरिक्ष-स्थित स्टेशनों से चंद्रमा तक की यात्रा का संपूर्ण विवरण प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि उड़ने की कला को संभव बनाने में केवल वायुयानों एवम् रॉकेटों का ही हाथ नहीं है बल्कि विज्ञान कथा-साहित्य का भी उऋण न हो सकने वाला योगदान है।

3655

4. अंतरिक्ष-विज्ञान

मनुष्य के मन में उडने की बात आरभ से ही रही तथा उसने सदा यह चाहा कि पक्षियों की भाति आकाश मे उडे। लेकिन इच्छा मात्र से ही कोई कार्य पूरा नही हो जाता। इच्छा तो केवल इस तथ्य की द्योतक है कि हम किसी विवशता से आबद्ध है किंतु फल प्राप्ति के लिए हमें दो बिंदुओ पर अपने मन को टिकाना पडता है (1) परिवेश और (2) प्रयत्न। अन्य शब्दों मे, हमें सबसे पहले यह देखना पडता हे कि हमारे प्रयत्न को किन परिस्थितियों में हाथ-पांव मारने हैं तथा उनसे जूझने और अत मे उन पर विजय पाने के लिए हमे कौन-कौन-से साधन जुटाने होंगे।

उड़ने की इच्छा को प्रबल करने के मूल में मानव की यही विवशता सर्वप्रमुख थी कि वह पक्षियों की तरह उड़ नहीं सकता था। क्यों नहीं उड़ मकता था ? यह उसका अज्ञान था। आज की भाति उसे ज्ञात नही था कि प्रकृति ने उसे इस पृथ्वी पर कैद किया हुआ है—उसके पांवों मे गुरुत्वाकर्षण की जंजीर है और सर पर वायुमंडल का भार। चक्की के इन दो पाटो के बीच वह एक असहाय दाने की तरह है तथा चाह कर भी उससे बाहर निकल नहीं सकता। उड़ने की इच्छा ही के मूल मे था मनुष्य का थोड़ा-बहुत ज्ञान, जो उसने चमकते हुए ज्योति-पिंडों के विषय मे अर्जित किया था। उसे यह मालूम नहीं था कि उसकी अपनी पृथ्वी—चांद से अस्सी गुना अधिक चमक वाली है तथा आकाश मे दिखाई पड़ने वाले सभी ग्रहो-उपग्रहों से अधिक आकर्षक एवं सुखदायक है। उसे तो उन चमकते हुए पिंडों तक पहुंचने की लगन थी क्योकि अपनी 'अधियारी' पृथ्वी के बंदीगृह से वह तंग आ चुका था।

उड़ने के विषय मे अपनी सीमाओ को वह समझता नहीं था। उसे तो यही ख्याल था कि यदि वह पक्षियों की भांति पख जुटा ले तो बड़ी आसानी से उड सकता है। कहना न होगा कि पहले वायुयान और बाद में प्रक्षेपक का निर्माण और विकास उसके पंख जुटाने का ही प्रयत्नफल है। और ये पंख उसे विज्ञान के द्वारा उपलब्ध हुए हैं। 'विज्ञान मानव के प्राकृतिक परिवेश-अन्वेषण और उसे समझने की मानवीय अभिलाषा की अभिव्यक्ति है।' विज्ञान की एक शाखा है अतरिक्ष-विज्ञान। 'अंतरिक्ष-विज्ञान अतरिक्ष के उन नवीन क्षेत्रों में उक्त अन्वेषण का विस्तार है जो साउडिग रॉकेटो, कृत्रिम उपग्रहो तथा बाह्यांतरिक्ष के अन्वेषण-साधनों के विकास के फलस्वरूप

मनुष्य के प्रवेश योग्य हो गए हैं।' विज्ञान की इस शाखा-विशेष की उत्पत्ति से पूर्व तो मनुष्य पार्थिव रूप से (और एक सीमा तक मानसिक दृष्टि से भी) अपनी ही पृथ्वी तक सीमित था। उसके अन्वेषण के प्रयत्न उसकी अपनी पृथ्वी तथा उसके वायुमडल (लगभग 25 मील की ऊचाई) तक ही सीमित थे। अधिक-से-अधिक उसके प्रयत्न उस विद्युत-चुंबकीयता तथा विकिरण-विशेष से सम्बद्ध हो सकते थे जो पृथ्वी के वायुमंडल को भेदकर हम तक पहुंच सके।

अब क्या यह कम आश्चर्य की बात है कि भारतीय ज्ञान ने 'सूक्ष्म' को इस सीमा तक तो समझा कि आध्यात्मिक क्षेत्र में क्रांतिकारी कार्य कर डाले किंतु उस सूक्ष्म शृंखला का आभास उसे नहीं मिला जो प्रतिपल उसके पाव मे पडी रहती थी। और न उस सूक्ष्म दबाव अथवा भार की ओर ही उसकी सूक्ष्म-भेदिनी दृष्टि गई जो एक शरीर पर लगभग 16 टन बनता है अथवा एक वर्ग इंच त्वचा पर 14.7 पाउड बैठता है। वास्तव में गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत का उल्लेख हमारे यहा ईसा से पूर्व नही प्राप्त होता।

गुरुत्वाकर्षण का खिंचाव हमे साधारणतया मालूम नहीं पडता, हालांकि हमारे जीवन पर इसका जबरदस्त प्रभाव है, विशेप रूप से तो इसका प्रभाव तब प्रतीत होता है जब हम उड़ना चाहते है। जो खिचाव हमें पृथ्वी से जकड़े हुए है, वही गुरुत्वाकर्षण कहलाता है। इसी खिंचाव के अंतर्गत वे सभी चीजें पृथ्वी पर लौट आती है, जिन्हे हम पृथ्वी से बाहर फेंकने का प्रयत्न करते है। अब प्रश्न यह उठता है कि आखिर यह गुरुत्वाकर्षण है क्या बला ?

गुरुत्वाकर्षण

'गुरुत्वाकर्षण दो अणु-समूहों (mass) के मध्य आकर्षण का खिंचाव है। यह एक पारस्परिक शक्ति है जैसे क अणु-समूह ख अणु-समूह को अपनी ओर खीचता है तथा उसी प्रकार ख अणु-समूह क अणु-समूह को अपनी ओर खींचता है। इसमे क्रिया और प्रतिक्रिया दोनों जुडी रहती हैं। अब, अणु-समूह जितने बडे तथा जितने अधिक एक-दूसरे के निकट होंगे, उतना ही अधिक गुरुत्व का खिंचाव उनमें कार्य करेगा। अणु-समूह के बीच की इसी आकर्षण शक्ति को गुरुत्वाकर्षण कहते हैं।'

यह गुरुत्वाकर्षण सभी ज्योति-पिंडों तथा उनकी सापेक्ष्य गतियो को प्रभावित करता है। और आज के जमाने में जबकि अनेक कृत्रिम अथवा मानव-निर्मित अर्थ मे यही गुरुत्वाकर्षण 'तौल' (weight) बन जाता है क्योंकि यह आकर्षण पृथ्वी और उसके ऊपर वाली वस्तुओं के बीच भी क्रियाशील रहता है। किंतु है यह खिचाव पारस्परिक ही। जैसे कि पृथ्वी मनुष्य को अपनी ओर खींचती है तो मनुष्य भी पृथ्वी को अपनी ओर खींचता है। अब, यदि कोई व्यक्ति यान से गिर पड़े तो निश्चय ही पृथ्वी उसे अपनी ओर खींचेगी तथा ऐसा लगेगा कि पृथ्वी अपने स्थान पर ही है और वह पृथ्वी की ओर खिंचा हुआ जा रहा है, परंतु बात ऐसी नहीं है—पृथ्वी

भी उसकी ओर खिचती है।

'गिरने' की बात उठते ही सेब के पेड से गिरने की कथा याद आ जाती है। यह कथा न्यूटन के नाम के साथ जोड़ी जाती है कि उसने बाग में एक सेब पेड से टूटकर पृथ्वी पर गिरते देखा और यह निष्कर्ष निकाला कि जमीन मे ऐसी कोई कशिश अवश्य है जिसके कारण सेब आकाश की ओर न जाकर पृथ्वी पर गिर पडता है। परतु प्रश्न तो यह है कि वृक्षो से टूटकर पृथ्वी पर गिरते हुए फल, फूल और पत्ते आदि किसने नहीं देखे ? फिर भी यदि हम इस कथा कि सच्चाई सिद्ध करने के झगडे मे न पड़ें तो इससे दो स्पष्ट बातें हाथ आती हैं · (1) सेब और पृथ्वी मे एक-दूसरे को आकर्षित करने की शक्ति है। इसलिए तथ्य यह नहीं है कि सेब पृथ्वी पर गिरता है, बल्कि तथ्य यह है कि पारस्परिक आकर्षण-शक्ति के कारण वे दोनों एक-दूसरे से मिल जाते हैं क्योंकि उन दोनों के मध्य रुकावट डालने वाली कोई तीसरी चीज़ नही है। तथ्य पृथ्वी और सेब तक ही सीमित न रहकर किन्ही भी दो अणु-समूह वाले पदार्थो पर लागू होता है। (2) भारतीय विचार धारा के अनुसार सेब का पृथ्वी पर गिरना कोई विचारणीय घटना नही थी क्योंकि उसका 'नीचे' पृथ्वी पर गिरना स्वाभाविक था।

यदि सेब के खिंचाव को खींच-खिंचाव तक न भी ले जाए तो भी न्यूटन ने यह जानकारी प्राप्त कर ली थी कि 'किन्ही भी दो अणु-समूहों में एक-दूसरे को अपनी ओर खीचने की शक्ति है तथा यह शक्ति अणु-समूहो के परिमाण के अनुपात में तथा इसके उलट उन दोनों के बीच की दूरी के वर्ग के अनुपात मे होना है।' सृष्टि मे व्याप्त आकर्षण का यह सिद्धात संभवतः सभी प्राकृतिक नियमो से अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि अतरिक्ष मे स्थित सभी ग्रह-पिंडों का संचालन इसी नियम के अतर्गत होता है।

न जाने कैसे न्यूटन के मत्थे यह सिद्धात मढ़ दिया गया कि 'जो चीज़ ऊपर की ओर फेकी जाती है वह नीचे की ओर लौट आती है।' 'ऊपर' और 'नीचे' की बात न्यूटन कभी नहीं कह सकता था क्योंकि ये दोनों ही शब्द भ्रामक है क्योकि सापेक्ष्य हैं। न्यूटन ने तो इससे बहुत आगे की बात कही थी—'यदि कोई चीज पृथ्वी से बाहर की ओर फेंकी जाए तो यह बिल्कुल संभव है कि वह लौटकर न आए।' प्रक्षेपक के सिद्धात का प्रतिपादन न्यूटन ने ही किया था और वह न्यूनतम गति (24,000 मील प्रति घंटा से अधिक) निर्धारित की थी जिसके प्रयोग से पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण का भेदन किया जा सकता था।

अब यदि हम कोई वस्तु पृथ्वी से बाहर फेकना चाहें—किंतु नहीं, पहले हमें 'बाहर' की जानकारी हासिल करनी होगी। आखिर पृथ्वी से बाहर है क्या ?

अनंत विस्तार

भारतीय दृष्टि के सदर्भ मे 'बाहर' शब्द भी गलत है। हमें यों कहना होगा कि पृथ्वी

से 'ऊपर' आकाश है। इस आकाश की गणना हमने पच महाभूतों में की है। हमारी जानकारी के अनुसार पच महाभूतों का क्रम इस प्रकार है—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। स्पष्ट ही है कि हिंदू विज्ञान स्थूल से सूक्ष्म की ओर चला है। हमारे विचार से आकाश की भी एक सीमा है—उसका धर्म, जिसे हमने 'शब्द' की संज्ञा दी है।

किंतु आकाश अथवा अतरिक्ष के विषय मे हमारा पूर्वमत संशोधन का अधिकारी हो सकता है। असीम अंतरिक्ष के विषय मे एक दृष्टि से हमारी पकड सीमित है। हमने आकाश की स्थिति 'ऊपर' मानी है। साधारणतया हमने सृष्टि के तीन खड स्वीकार किए : (1) पाताल, (2) पृथ्वी और (3) आकाश। इस प्रकार हमने पृथ्वी को सृष्टि के मध्य में माना। पाताल के मुकाबले मे हम 'ऊपर' थे और आकाश के मुकाबले में 'नीचे'। हमने जब दस दिशाओं की बात की तब भी ऊपर-नीचे की गणना की। 'ऊपर' और 'नीचे' अतत सापेक्ष्य ही सिद्ध हुए हैं क्योंकि यहां न कुछ ऊपर है और न नीचे। एक अनन्त विस्तार है जिसमे स्थान-स्थान पर गणित-गणना से परे वाले विस्तारों की नीहारिकाएं है (हमारी आकाश-गगा की गणना दस करोड़ ज्ञात नीहारिकाओ मे होती है—अज्ञात नीहारिकाओ का सिलसिला अटूट है)। प्रत्येक नीहारिका के अपने सूर्य, ग्रह, उपग्रह, अनेक छोटे-बड़े खंड-उपखंड तथा धूल हैं।

नीहारिकाएं, सौरमंडल, ग्रह तथा उपग्रह

अतरिक्ष में स्थित ये सभी सितारे, ग्रह तथा उपग्रह पारस्परिक गुरुत्वाकर्षण से अपनी-अपनी धुरियो पर स्थापित है तथा अपनी कक्षाओं में घूम रहे हैं। एक-एक नीहारिका मे अनेक-अनेक सौरमंडल हैं, एक-एक सौरमंडल मे कई-कई ग्रह-उपग्रह हे तथा ये सब घूम रहे हैं। मोटे तौर से दो बाते इन सभी के विषय में सिद्ध है (1) इन सभी की (न्यूनाधिक) अपनी गुरुत्वाकर्षण शक्तियां हैं और (2) इनमे से कोई अटल नहीं है ('ध्रुव' भी नहीं)—सब घूम रहे हैं। इन प्राकृतिक पिंडों की अधिकाश मे दो गतिया हैं—अपनी धुरी पर घूमना और अपनी कक्षा में घूमना (यह बात हमारे सूर्य के विषय में भी सत्य है)।

नीहारिकाएं निरंतर घूम रही हैं और एक-दूसरे से दूर होती जा रही है। प्रत्येक नीहारिका के सभी सूर्य अपने तमाम ग्रहो-उपग्रहो सहित अपनी नीहारिका की परिक्रमा कर रहे है। इसके बाद प्रत्येक सूर्य के ग्रह-उपग्रह अपने ग्रह की प्रदक्षिणा कर रहा है। उदाहरण के लिए हमारा सूर्य अपने 9 ग्रहों और 31 उपग्रहों सहित अपनी नीहारिका (milky way) के चारों ओर घूम रही है और हमारी पृथ्वी का उपग्रह—चांद हमारी पृथ्वी के चारों ओर घूम रहा है। (इस चांद के अतिरिक्त हमारे सौरमंडल के अन्य पाच ग्रहों के तीस चांद और हैं)।

भारतीयों ने आकाश में अनेक लोकों की कल्पना तो की पर आकाश की स्थिति के विषय में वे

छोर पर पहुंचने तथा उसके चारो ओर दृष्टिपात करने के साधन उनके पास नहीं थे। और पृथ्वी के नीचे क्या है—यह समझ पाने का तो प्रश्न ही नही उठता था। इसीलिए 'पाताल' की कल्पना की गई और उस तथा-कथित पाताल से संबधित अनेक कथाए-उपकथाएं गढी गई। यह तो नवीनतम जानकारी है कि पृथ्वी के चारो ओर आकाश ही आकाश है; हम किसी से ऊपर अथवा नीचे नही है और पाताल नाम की वस्तु की तो कही स्थिति ही नहीं है। तभी तो पृथ्वी पर हमें चांद उदय होता दिखाई पडता है और चाद पर पृथ्वी का उदय नजर आता है।

वातावरण तथा अंतरिक्ष

हा, इस आकाश के दो भाग अवश्य है : (1) वातावरण और (2) अंतरिक्ष। जैसा कि सर्वविदित ही है कि अंतरिक्ष हमारी पृथ्वी से कुछ दूर है—200 से 300 मील तक दूर। हमारे और अंतरिक्ष के बीच एक व्यवधान है—वातावरण, जो कि पृथ्वी के चारों ओर एक लिफाफे की तरह है। वातावरण के इस पार-दर्शक खोल के विस्तार के विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना इसलिए कठिन है कि वातावरण और अंतरिक्ष का सम्मिलन बड़े सहज तथा सूक्ष्म ढंग से होता है, तथा जहां यह सम्मिलन होता है, वहा हठात् वातावरण समाप्त नहीं हो जाता और न एकदम ही अंतरिक्ष आरभ हो जाता है।

वातावरण को साधारणतया दो भागों मे विभक्त किया जाता है—(1) अधो वातावरण और (2) ऊर्द्ध वातावरण। अधो-वातावरण वातावरण का वह निचला भाग है जिसमें वायुयान उड़ान भरते है। इस भाग के दो उपविभाग माने जाते हैं : (क) ट्रॉपॉस्फीयर और (ख) स्ट्रेटॉसफीयर। ऊर्द्धवातावरण वह ऊपरी भाग है जो अंतत अतरिक्ष में घुल-मिलकर समाप्त हो जाता है।

पृथ्वी से 10-15 मील की दूरी पर ही पर्याप्त वातावरण है जो कि है तो चद सैकडा मीलों तक ही सीमित किंतु है बड़ा महत्त्वपूर्ण। इस भाग में ताप में जबरदस्त वृद्धि के दर्शन होते हैं। कहा जाता है कि वातावरण के बाहरी छोर पर जिसे एक्सॉस्फीयर कहते हैं, ताप 4,000^0 सेंटीग्रेड तक पहुंच जाता है जो कि 60^0 सेटीग्रेड से आरभ होता है। इसके विपरीत हवा का दबाव और घनत्व (density) इतने न्यून हो जाते है कि गणित की भाषा मे उनका उल्लेख कठिन हो जाता है।

तीव्र गति वाली हवाएं

ऐसा भी विश्वास किया जाता है कि वातावरण मे अधिक ऊंचाई पर जबरदस्त हवाएं होनी चाहिए। उक्त स्थान पर उन हवाओं की गति 100 मील प्रति घंटा से लेकर 1,000 मील प्रति घटा तक समझी गई है। लेकिन अतरिक्ष यात्रियों के लिए ये हवाएं हानिकारक नहीं हैं ये उनका बाल तक बांका नहीं कर सकतीं (इसका यह अर्थ

निकालकर ये देख ले कि सचमुच ही उसका बाल-बाका होता है या नहीं)।

वातावरण की इस जानकारी के साथ ही उस विशेषता को भी समझ लेना आवश्यक है जिसके अंतर्गत इस प्रश्न का उत्तर आता है कि आखिर वातावरण मे और क्या है ? वातावरण शून्य है ?

वातावरण शून्य नहीं है। वहां की वायु में विभिन्न गैसों का सम्मिश्रण इस प्रकार है : नाइट्रोजन 77%, ऑक्सीजन 21%, ऑर्गान 1%, इसके अतिरिक्त शेष 1% में कार्बन डायोक्साइड, आइड्रोजन, निऑन, हीलियम तथा ऑज़ोन नामक गैसों का मिला-जुला रूप है।

चाद पर चरण टिकाने के दिशा में वातावरण का ज्ञान ऊंट के मुंह में जीरा मात्र है। मनुष्य के मन में उड़ने की बात बराबर रही तथा वह सोचता रहा कि पक्षियों की भाति कैसे उडे परतु उससे भी बड़ा प्रश्न उसके आगे यह रहा कि वह कहां उड़े ? वास्तव में, आकाश इसका पर्याप्त उत्तर आज से पूर्व कभी नहीं रहा, हालाकि आकाश मे उडने की बात आज भी उतनी ही अर्थ पूर्ण है। इसका कारण यही हे कि हमने हर खुले स्थान को 'आकाश' कहा किंतु उस तथाकथित आकाश की विशेषताओं पर ध्यान नहीं दिया। 'आकाश' के विस्तार को तो हम 'नेति-नेति' कहकर संतुष्ट हो गए (जो कि ठीक था) किंतु आकाश के गुण अथवा धर्म को हमने 'शब्द' तक सीमित कर लिया। यदि सच कहा जाए तो हमने साधारणतया वातावरण और अंतरिक्ष में भी कोई भेद नहीं किया।

हमारी इन सीमाओं का कारण हमारा सीमित ज्ञान ही था। और क्योकि हमने अपने ज्ञान को अतिम माना, इसलिए हमने और अधिक जानकारी के अपने द्वार अपने ही हाथ से बद कर लिये। आकाश में हमने कतिपय लोकों की कल्पना की जिसका आधार तो हमारी अपनी पृथ्वी ही थी। लेकिन क्योंकि पृथ्वी अपूर्ण थी, अपर्याप्त थी, इसीलिए उक्त लोकों पर वांछित विशेषताओं का आरोप कर उन्हें आदर्श रूप दिया गया।

वास्तव में, हमने स्थूलता को नकारा तथा सूक्ष्मता का क्षेत्र अपनाया। ऐसा होना स्वाभाविक ही था। क्योंकि अज्ञान और सीमाओं के कारण स्थूल की गति अवरुद्ध थी। हां, मन तथा आत्मा के लिए कोई अवरोध नहीं था। इसीलिए हमने ये ही दोनो मार्ग पकड़े। स्थूल की गति की कल्पना हमने मन की उड़ान के आधार पर की और सूक्ष्म के लिए आत्मा का अवलंब लिया। इस प्रकार हम अपनी पृथ्वी से एक भी इंच बिना उठे (तथा गुरुत्वाकर्षण की शृंखला में बँधे) मानसिक एव आध्यात्मिक उड़ानें भरने लगे।

किंतु आकाश अथवा अंतरिक्ष के स्वरूप को हमने कम ही पहचाना, 'ऐतरेय ब्राह्मण' में कहा गया है—'द्यौरतरिक्षे प्रतिष्ठितातरिक्षि पृथिव्याम्' यानि द्यौ और पृथ्वी के मध्य में अंतरिक्ष है। तो भी सामान्यतः हम अंतरिक्ष को पृथ्वी के वातावरण का विस्तार मात्र ही मानते रहे तथा हमारी यह मान्यता एक ज़माने तक बरकरार रही

कि 'आकाश' नाम की एक निश्चित वस्तु है तथा यदि पंखों में सामर्थ्य हो तो आकाश का स्पर्श किया जा सकता है। यह ज्ञान तो होते-होते ही हुआ कि वातावरण अथवा वायुमंडल पृथ्वी के चारों ओर एक वायवी खोल है जिसका फैलाव चद सैकड़ा मीलो से अधिक नहीं है तथा इसके उपरात है अनन्त एवं असीम अतरिक्ष जिसे उपनिषदो की भाषा मे 'नेति-नेति' कहना ही अधिक सुविधाजनक है।

व्याप्त पदार्थ (matter)

अतरिक्ष सितारो के मध्य एवं ग्रहों-उपग्रहों के मध्य व्याप्त 'शून्य' है जो कि वास्तव मे शून्य नहीं है। समूचे अंतरिक्ष में पदार्थ (matter) व्याप्त है। यों इस पदार्थ (अधिकाश मे हाइड्रोजन) की सघनता है बहुत ही कम : यों समझ लीजिए कि सितारो (सूर्यो) के बीच फैले अंतरिक्ष मे प्रति घन सेंटीमीटर एक अणु और ग्रहों-उपग्रहो के मध्य व्याप्त अंतरिक्ष में दस अणु प्रति घन सेंटीमीटर। फिर अंतरिक्ष मे गुरुत्वाकर्षण-क्षेत्र है (पृथ्वी का गुरुत्व 200 मील की दूर पर 90% है तथा 1,600 मील की दूरी पर 50%), चतुर्मुखी विद्युत-चुंबकीय-विकिरण है, ब्रह्मांड किरणें हैं तथा हैं अज्ञात सघनता और व्याप्ति के विशाल चुबकीय क्षेत्र।

'तौल' या गुरुत्वाकर्षण

अब यदि हम कोई चीज़ पृथ्वी से बाहर (ऊपर) फेंकना चाहें तो वह एक ऊंचाई विशेष तक ही जाएगी तथा फिर नीचे आ जाएगी। यह सभव है कि वह वस्तु काफी जोर से फेंकी जाए (100 मील प्रति घंटा की गति से) तथा वह काफी ऊंचाई तक पहुंच जाए, लेकिन वह लौटेगी पृथ्वी पर ही तथा लौटते समय फिर सही गति ग्रहण कर लेगी जो उसने ऊपर जाते समय की थी। इस प्रकार उस वस्तु को जितना अधिक ऊचा फेकना हो, उसकी आरंभिक गति उतनी ही अधिक रखनी होगी। परंतु यहा इस समस्या का एक और पक्ष प्रकट होता है कि जिस वस्तु का वज़न जमीन पर एक किलो है, उसका वजन 100 मील की ऊंचाई पर भी एक किलो ही होगा और 1,000 मील अथवा किसी भी ऊंचाई पर। किंतु तथ्य इसके विपरीत है। ज्यों-ज्यों वस्तु की दूरी पृथ्वी से बढ़ती जाएगी, उसका अणु-समूह (mass) वही रहने के बावजूद, उसका वज़न दूरी के अनुपात से घटता जाएगा। 'वजन' आखिरकार गुरुत्वाकर्षण ही है और गुरुत्वाकर्षण संपूर्ण पृथ्वी में भी समान नहीं है—उसकी सबसे अधिक मात्रा केंद्र मे है। अतः जिस वस्तु का वज़न पृथ्वी के केंद्र में एक किलो है, उसका पृथ्वी के ही अन्य स्थानों पर एक किलो नहीं होगा—कम हो जाएगा। फिर पृथ्वी से बाहर निकलकर उस वस्तु का उतना ही वज़न कैसे रह सकता है ?

हमारी पृथ्वी का अर्द्ध-व्यास लगभग 4,000 मील है। इसलिए यदि एक किलो का पत्थर पृथ्वी से 4,000 मील की दूरी पर फेंका जाए तो वहां उसका वजन केवल 250 ग्राम रह जाएगा।

संधि-प्रकाश-क्षेत्र

अब यदि वही पत्थर चंद्रमा पर फेंकना हो तो दो के स्थान पर ऐसी तीन वस्तुएं—पृथ्वी, पत्थर और चांद—हो जाएंगी, जो एक-दूसरे को अपनी ओर खींचेंगी। चद्रमा पृथ्वी से 2,39,000 मील दूर है तथा उसका अणु-समूह (mass) पृथ्वी का 1/81 (इक्यासीवां भाग) है। इसलिए उस दूरी पर पृथ्वी का खिंचाव भी उसके मूल खिंचाव का 81 वा भाग ही रह जाएगा। दूसरी ओर चांद का अपना गुरुत्वाकर्षण इतना प्रबल है कि उसके कारण हमारे समुद्रो में ज्वार आता रहता है (यो ज्वार-भाटे का कारण मात्र चंद्रमा का गुरुत्वाकर्षण ही नहीं है)। इसीलिए ज्यों-ज्यो पत्थर चांद के निकट पहुचता जाएगा उस पर पृथ्वी का खिंचाव कम होता जाएगा ओर चाद का खिंचाव बढता जाएगा। होते-होते एक ऐसा स्थल आएगा जहां पृथ्वी और चांद—दोनों के खिंचाव समान है। यह स्थल संधि-प्रकाश-क्षेत्र (twilight Zone) कहलाता है। यह बिंदु हमारी पृथ्वी से 2,09,000 मील दूर है और चांद से 10,000 मील दूर।

कल्पना कीजिए कि हमने अपना पत्थर ऐसी गति से फेंक दिया (6 94 मील प्रति सेकेंड से कुछ अधिक) कि वह संधि-प्रकाश-क्षेत्र मे पहुच जाए तो क्या वह पत्थर वही अटककर रह जाएगा ? इसका उत्तर नकारात्मक ही हो सकता है। वास्तव मे, संधि-प्रकाश-क्षेत्र मे कोई चीज़ नही टहर सकती। उक्त स्थल को 'संधि-प्रकाश-क्षेत्र' पृथ्वी और चद्रमा के गुरुत्वों के समान आकर्षण के कारण कहा जाता है। किंतु उसी क्षेत्र में सूर्य अथवा किसी-न-किसी ग्रह के गुरुत्वाकर्षण की शक्ति भी अवश्य उपस्थित रहती है, जो कि अंततः पत्थर के सतुलन को बिगाड़ सकती है। परिणाम यह होता हे कि पत्थर चंद्रमा अथवा पृथ्वी पर गिर जाएगा। यदि पत्थर 6 94 मील प्रति सेकेंड के प्रवेग से फेका गया हो तो वह निश्चय ही पृथ्वी पर लौट आएगा। 6.95 मील प्रति सेकेंड की गति से वह चंद्रमा पर जा टकराएगा।

पृथ्वी के आकर्षण-क्षेत्र से बाहर

गुरुत्वाकर्षण का एक पक्ष और भी है : पृथ्वी के गुरुत्व से बाहर निकलने की न्यूनतम गति मनुष्य को ज्ञात है—24,000 मील प्रति घटा से अधिक। इस गति से चलकर किसी अन्य ग्रह-उपग्रह के खिंचाव क्षेत्र मे पहुचा जा सकता है, फिर भी पृथ्वी की कशिश से सर्वथा बाहर निकलने की मंज़िल काफी दूर होती है। इसका कारण यह हे कि प्रत्येक ग्रह और उपग्रह तथा सूर्य से संबंधित पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण का अलग-अलग क्षेत्र है (विभिन्न पिंडों के संबंध से प्रत्येक पिंड के खिंचाव का क्षेत्र भी भिन्न होता है)। उदाहरण के लिए, सूर्य की दिशा में 6,00,000 मील की दूरी तक पृथ्वी की कशिश सूर्य की कशिश से अधिक प्रबल है। इस प्रकार 'सूर्य से संबधित पृथ्वी के प्रभाव क्षेत्र को वह वृत्त समझना चाहिए, जिसका व्यास 6,00,000 मील है।' इसलिए किसी भी वस्तु को पृथ्वी के आकर्षण से बाहर भेजते समय अन्य

ग्रहो-उपग्रहो (तथा सूर्य) के आकर्षण-क्षेत्रो को भी ध्यान मे रखना जरूरी है

गुरुत्वाकर्षण के विषय मे इतना विचार कर लेने के उपरांत ऐसा प्रतीत होना स्वाभाविक है कि बस, अब चांद पर पहुंचने में क्या देर है ! परंतु यह जानकारी तो बिल्कुल एकागी है। हमे यह भी ज्ञात है कि पृथ्वी के चारों ओर आकाश अथवा अतरिक्ष है। अंतरिक्ष के स्वभाव, उसकी विशेषताओं का परिचय भी हमें है। फिर भी यह तो पता लगाना ही होगा कि अतरिक्ष में कोई ऐसे विरोधी तत्त्व तो नही जो अतरिक्ष-यान अथवा अंतरिक्ष-यात्री के लिए घातक हो।

वास्तव मे, अतरिक्ष मे मनुष्य के लिए खतरा-ही-खतरा है : 'एक समय तो वह भी था जबकि गुरुत्वाकर्षण-भेदन की गति का ज्ञान मनुष्य को था परतु वह गति उसके पास नहीं थी। अंतरिक्ष मे थे विद्युत-चुंबकीय विकिरण, चुंबकीय विकिरण, और धूल, ब्रह्माड-किरणें और उल्काएं' जो मनुष्य तो क्या, उसके यान मे प्रवेश कर सकती थी तथा उसे नष्ट कर सकती थीं। और फिर भारहीनता—'भारहीनता उस स्थिति को कहते हैं जब कोई व्यक्ति गुरुत्वाकर्षण के खिंचाव का निर्विरोध रूप से अनुसरण करता जाए'—इस समस्या का उत्तर मनुष्य के पास नहीं था। उसे यह भी ज्ञात नहीं था कि भारहीनता की स्थिति में शरीर और मन की प्रतिक्रिया कैसे होगी।

अंतरिक्ष-उड़ान की समस्याएं

हमे ज्ञात है कि माउट एवरेस्ट पर चढने के लिए भी ऑक्सीजन (oxygen) की आवश्यकता होती है जबकि एवरेस्ट की ऊंचाई 30,000 फीट की ऊंचाई के अंदर ही है। फिर अंतरिक्ष में तो ऑक्सीजन की बड़ी भारी मात्रा चाहिए।

ताप की मात्रा का प्रश्न तो अंतरिक्ष में और भी अधिक कठिन था। मनुष्य तो 100^0 सेटीग्रेड मे ही जिंदा नहीं रह सकता। वायुमंडल तथा उसके बाहर तो हजारो डिग्रियो की मात्रा में तापमान की विद्यमानता है। फिर अंतरिक्ष मे भोजन और पानी की समस्या !

यदि मनुष्य पृथ्वी से उठने के अत्यधिक प्रवेग के दबाव को झेलकर किसी प्रकार जीता-जागता अंतरिक्ष में पहुंच भी जाए, तो पृथ्वी के साथ संपर्क कायम रखने के लिए सचार-व्यवस्था का कठिन प्रश्न था। और तो और, मनुष्य को यह भी पता नही था कि पृथ्वी की धातुओं से बने कल-पुर्जे अतरिक्ष मे कार्य करेंगे भी या नहीं ?

इन सब बाधाओं को भी यदि सफलतापूर्वक पार कर लिया जाए तो भी पृथ्वी के वातावरण में से होकर पृथ्वी पर लौट आना एक और ही प्रकार की कठिनाई थी। जबकि हमारा वातावरण अंतरिक्ष से गिरने वाले लगभग सभी उल्का-पिंडो को घर्षण द्वारा जलाकर हमारी रक्षा करता है, तो मानव द्वारा निर्मित साधारण से यान को उक्त हत्यारे वातावरण से कैसे बचाया जा सकता था ?

सभवतः इन्हीं भीषण समस्याओं के कारण मनुष्य ने आकाश को देवताओं का देश स्वीकार किया था। किंतु 'देवता' बहरहाल मनुष्य की ही कल्पना है—शायद

उसके अपने ही आदश स्वरूप की कल्पना . अतत- मनुष्य को अपन आदर्श स्वरूप को प्राप्त होना ही है और देवताओं के देश में प्रवेश करना ही है (यह प्रवेश हो ही चुका है) इसलिए इन सभी समस्याओ पर विचार तथा कार्य होता रहा।

अंतरिक्ष का सही स्वरूप जान लेने के बाद तथा प्रक्षेपक के परिचय और निर्माण के पश्चात् मुख्य रूप से दो समस्याए और शेष रह गई थी—(1) लक्ष्य की सिद्धि और (2) यान छोड़ने की विधि।

लक्ष्य के विषय में अधिक चिंता इसीलिए नहीं की गई क्योंकि लक्ष्य निश्चय ही चंद्रमा था और हमारे समक्ष था। इसलिए लक्ष्य-सिद्धि को तो स्यात् कोई कठिनाई माना ही नही गया। सारा ध्यान यान छोड़ने की गति-विधि पर ही केंद्रित किया गया। जैसा कि मालूम है, पृथ्वी और चांद दोनो ही स्थिर नही हैं। पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा कर रही है और साथ ही अपने अक्ष पर भी घूम रही है। उधर चांद पृथ्वी का चक्कर लगा रहा है और अपने अक्ष पर भी घूम रहा है।

अंतरिक्ष-यान छोड़ने की ओर

फिर चाद का अणु-समूह पृथ्वी का 1/81 है, गुरुत्वाकर्षण पृथ्वी का 1/6 है तथा चाद के गुरुत्वाकर्षण से निकलने की गति 1.5 मील प्रति सेकेंड है। यही वह गति है जिसके अनुसार संधि-प्रकाश-क्षेत्र से कोई भी वस्तु चांद पर पहुंच सकती है। किंतु यदि कोई चीज़ इतनी गति से चांद से टकराती है तो टूटे-फूटे बिना कभी नहीं बचेगी। और चांद पर वातावरण भी ऐसा नगण्य है (संभवतः पृथ्वी के वातावरण का दस लाखवा भाग) कि उसकी कृपा से ही गति टूट जाए ! इसलिए धीरे-से चाद पर उतरने के लिए तो प्रक्षेपक का ही सहारा लेना आवश्यक था। यह गुजाइश भी प्रक्षेपक मे ही थी कि उसकी गति का घटाव-बढ़ाव इतना सौम्य हो कि मानव-पशु सभी उसे सफलतापूर्वक संभाल सके। लेकिन प्रक्षेपक के साथ कुछ अपनी ही समस्याएं जुडी हुई थीं।

वास्तव में, प्रक्षेपक मे ईधन की बहुत अधिक खपत होती है जिसके कारण उसका भार क्रमशः घटता जाता है। उधर पृथ्वी से प्रक्षेपक की दूरी ज्यों-ज्यों बढती जाती है, उसका भार भी गुरुत्वाकर्षण के नियम के अनुसार घटता जाता है। यदि प्रक्षेपक एक से अधिक चरणों वाला हो तो यथा समय उसके चरण क्रमशः अलग होते जाते हैं। और उसका वज़न कम होता जाता है। इस तरह जो यान चाद पर पहुचता है, वह बहुत ही कम भार वाला रह जाता है।

यान को चाद पर पहुंचाने की बात करते समय साधारण व्यक्ति एक गलती अवश्य करता रहता है और वह यह है कि उसके विचार से यान पृथ्वी से सीधा उठता है तथा मार्ग की बाधाओं से जूझता हुआ सीधा चांद पर पहुंच जाता है, अथवा चाद का एक कृत्रिम उपग्रह बन जाता है। यहा भी हम वही 'ऊपर-नीचे' वाली भूल करते हैं। वस्तुत· चांद पर पहुंचने का मार्ग ऐसा सीधा सचमुच नहीं है, जैसा कि

हम समझते है। अत यान को लब रूप मे चलाने की अपेक्षा पटबल (.ıor.zontally) चलाना पड़ता है।

पर यान को पृथ्वी की सतह से पटबल चलाने में कठिनाई है। इसके लिए दो बातो को ध्यान में रखना आवश्यक है। पहली तो यह कि यान किस ऊचाई तक फेंका जाता है और दूसरी यह कि पटबल चलने मे उसकी गति कितनी है। क्योंकि यदि यान भूमि की सतह पर छोड दिया जाता है तो वह शायद ही आगे बढे। फिर चाहे उसकी पटबल गति कितनी भी क्यों न हो। लेकिन यदि उसे पर्याप्त ऊचाई तथा पर्याप्त गति के साथ छोडा जाता है तो वह जमीन से टकराने से पूर्व काफी दूरी तय कर लेगा।

अब प्रश्न यह है कि पृथ्वी चपटी तो है नहीं—गोल है। अत. आगे बढते हुए यान को पृथ्वी की गोलाई निश्चित रूप से प्रभावित करेगी। क्योंकि यदि छोड़ा गया यान पृथ्वी से टकरा नहीं जाता तो उससे दूर होता चला जाएगा। साथ ही, उक्त यान पर पृथ्वी की कशिश यद्यपि लबरूप मे (vertically) असर डालेगी (क्योंकि गुरुत्वाकर्षण शक्ति सदा पृथ्वी के केंद्र की ओर होती है) परंतु अंतरिक्ष मे लंबरूप बदल जाता है और उसी के अनुसार वक्र रेखा (curve) मे भी परिवर्तन हो जाता है।

देखना यह है कि पटबल यान छोड़ देने तथा उसका प्रवेग बढ़ा देने से स्थिति क्या रूप ले लेती है ? आरभ में तो यान पृथ्वी का चक्कर लगाता हुआ दूर निकलता जाएगा परतु हर बार आगे मार्ग से कम वाले किसी बिंदु पर पृथ्वी पर अवश्य लौटेगा। 16,000 मील प्रति घंटा की गति पर पहुचकर यान पृथ्वी के पिछले पक्ष से निकल जाएगा तथा ऊंचा उठ जाएगा। सबसे आश्चर्य की बात तो यह होगी कि यान पृथ्वी का चक्कर लगाकर उसी स्थान पर आएगा जहां से चला था और फिर उसी सिलसिले से गुजरेगा तथा उसकी स्थिति एक उपग्रह की होगी। पर ऐसा तो तभी हो सकता है जबकि वायुमंडल से बचा जा सके। इस प्रक्रिया में तो यान को पृथ्वी के पिछले पक्ष पर वातावरण मे से होकर गुजरना पडेगा। और उस अवस्था मे यान या तो जलकर राख हो जाएगा और यदि किसी उष्णता-अवरोधक आवरण से ढका भी हुआ हो तब भी उसकी गति घट जाएगी और वह पृथ्वी पर गिर जाएगा।

यदि यान को छोड़ने की गति इससे भी अधिक कर दी जाए तो पृथ्वी के पिछले हिस्से से 200 मील की दूरी से वह निकल जाएगा (अगले हिस्से से उसकी दूरी 500 मील होगी) और वातावरण के खूनी पंजों से बच जाएगा। इस अवस्था मे यान की कक्षा अण्डवृत्ताकार हो जाएगी और यान एक घूमता हुआ उपग्रह बन जाएगा।

शायद इसके उत्तर में यह कहा जाए कि 200 मील पर भी थोड़ा-बहुत वातावरण तो होता ही है अत: जब बार-बार यान वातावरण में से गुजरेगा तो उसकी गति क्रमशः कम होती जाएगी तथा अंतत. वह पृथ्वी पर गिर ही जाएगा। किंतु इसमे

निराश होने की कोई बात नहीं क्योंकि वह प्रवेग और बढाया जा सकता है। यदि उसकी गति आरंभ में 4.65 मील प्रति सेकण्ड रखी जाए तो यान की कक्षा वृत्त मे बदल जाएगी और यान से पृथ्वी के निकटतम और दूरतम विंदु समाप्त हो जाएंगे। यदि गति इससे भी अधिक बढा दी जाए तो कक्षा का रूप फिर अडवृत्ताकार हो जाएगा। अतर केवल इतना ही पड़ेगा कि अब यान से पृथ्वी का दूरतम बिंदु पृथ्वी के पिछले पक्ष पर होगा और निकटतम विंदु वह रहेगा जहा से यान छोड़ा गया था।

यदि क्षेपण-प्रवेग और अधिक रखा जाए तो कक्षा और अधिक अंडवृत्ताकार हो जाएगी तथा दूरतम बिंदु और अधिक दूर जा पडेगा तथा वातावरण मे टकराव का कोई भी खतरा नहीं रह जाएगा।

सिद्धात रूप में तो यह तरीका बिल्कुल ठीक है कि अंतरिक्ष को 500 मील की ऊंचाई पर ले जाया जाए (इसमे यान को 500 मील की ऊंचाई पर ले जाने की समस्या सबसे पहले आती है) फिर उसे धरातल के समानान्तर पर्याप्त प्रवेग से छोडा जाए—इतने प्रवेग से कि वह चाद का अनुसरण करके उस पर न पहुंचे, बल्कि सामने से उस पर उतरे। क्योंकि चांद स्वय भी 2,300 मील प्रति घंटे की चाल से चल रहा है, इधर पृथ्वी अपने केंद्र पर 1,000 मील प्रति घंटे की चाल से पूर्व की ओर घूम रही है। इस प्रकार चांद पर पहुंचने के लिए अंडवृत्ताकार कक्षा, सही दिशा और छोडने का प्रवेग—इन तीनो सूक्ष्मग्राह्य बातों को ध्यान में रखना पड़ता है।

अब अंतरिक्ष यान को जिस ढंग से छोड़ा जाता है, उसका ब्योरा हमें स्पुत्निक-1 के छोडने के प्रकार मे ही मिल जाता है। 'स्पुत्निक-1 को छोड़ने में तीन खंडों वाला प्रक्षेपक प्रयुक्त किया गया। यान को छोड़ने के बाद लगभग 1¼ मील की ऊंचाई तक तो यान सीधा ऊपर (vertically) उठा। इसके बाद वह एक ओर को झुकने लगा। उसके तुरंत बाद ही, जबकि प्रक्षेपक 4,500 मील प्रति घंटा की गति से चल रहा था और पृथ्वी-तल के साथ 45^0 का कोण बना रहा था, तो उसका पहला खंड टूटकर अलग हो गया।'

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि अंतरिक्ष-यान धरातल से ही छोड़ा जाता है। कुछ ऊंचाई तक वह सीधा उठता है तथा फिर धरातल के समानान्तर होता हुआ कोण बनाता है तथा आवश्यक गति पाकर अपनी निर्धारित कक्षा मे प्रवेश कर जाता है।

जैसा कि हमें ज्ञात है, पृथ्वी का वातावरण अंतरिक्ष यान का शत्रु है। यदि अतरिक्ष-यान को मामूली वातावरण मे से भी होकर बार-बार घूमना पड़ेगा तो वह क्रमशः न्यून गति होता चला जाएगा। और ज्यों-ज्यों उसकी गति धीमी पड़ेगी, पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण का खिंचाव उस पर बढ़ जाएगा, जिससे धीरे-धीरे उसकी ऊंचाई भी कम होती जाएगी और अंततः वह वातावरण से रगड खाकर जल जाएगा।

स्पुत्निक-1 की यही दशा हुई थी। पृथ्वी से उसका दूरतम बिंदु (apogee) 588 मील की दूरी पर था और निकटतम बिंदु (perigee) केवल 142 मील दूर।

इस कारण स्पुत्निक-1 को हर बार वातावरण मे से गुजरना पडा तथा केवल तीन महीने ही ऊपर रह सका।

वातावरण मे हवा का दवाब कृत्रिम उपग्रह के विरुद्ध कार्य करता है और उसे धीमी गति वाला बनाकर अंत में जला डालता है। पर जो उपग्रह ऐसी कक्षा में घूमता है कि वातावरण मे से नही गुजरना पड़ता, वह उपग्रह पृथ्वी के गुरुत्वाकर्पण के कारण पृथ्वी पर क्यो नही गिर पड़ता ?—यह प्रश्न कई लोगों को चकित करने वाला है।

इस बात को बालकों के एक खेल द्वारा समझा जा सकता है—यदि कोई कंकड़ी धागे के एक सिरे से बाधकर जोर से घुमाई जाए तो वह उंगली के खिंचाव के बावजूद गिरेगी नही; घूमती ही रहेगी, हालाकि उसको जोर से घुमाना पहली शर्त होगी तथा धागे को कसकर पकड़े रखना दूसरी शर्त। यदि ककडी को धीरे-से घुमाया जाए तो वह उगली के साथ आ लटकेगी और यदि धागा छोड़ दिया जाए तो ककडी दूर चली जाएगी।

मोटे तौर से ककडी को उपग्रह मान लीजिए। जिस गति से धागे मे बधी कंकड़ी को घुमाया जा रहा है, उसे पृथ्वी की कक्षा में घूमते हुए उपग्रह की गति मान लीजिए तथा धागे को गुरुत्वाकर्षण का खिचाव समझ लीजिए। अब, जिस समय उपग्रह तेज गति से कक्षा में घूम रहा है तो उसमें गुरुत्व की शक्ति के अतिरिक्त एक अन्य शक्ति भी कार्य कर रही है—केंद्र से हटने वाली शक्ति (centrifugal force) । यही शक्ति गुरुत्वाकर्षण के साथ उपग्रह का सतुलन रखती है तथा उसको नीचे नहीं आने देती।

और चांद जो कि पृथ्वी का एक उपग्रह है, इसी कारण पृथ्वी-तल पर नहीं गिर पड़ता।

5. अंतरिक्ष-युग

4 अक्टूबर, 1957 को सोवियत सूचना समिति 'तास' ने निम्नलिखित घोषणा की –

'विश्व का सर्वप्रथम कृत्रिम भू-उपग्रह सोवियत भूमि से सफलतापूर्वक छोड़ा गया। ....भू उपग्रह को वहन करने वाले प्रक्षेपक ने उपग्रह को लगभग 25,000 फीट प्रति सेकेण्ड की गति प्रदान की।

'अब उपग्रह पृथ्वी की अंडवृत्ताकार कक्षा में घूम रहा है तथा सूर्योदय ओर सूर्यास्त के प्रकाश में सामान्य दूरदर्शक-यंत्रो द्वारा उसका अनुसरण किया जा सकता है। अब प्रत्यक्ष दर्शन द्वारा जो गणना अधिक सही ढंग से की जा रही है, उसके अनुसार उपग्रह भू-तल से 500 मील की ऊचाई तक यात्रा करेगा। विषुवत रेखा पर कक्षा का झुकाव 65^0 है।'

'उपग्रह 228 इच के व्यास वाला गोला है, जिसका वजन 184 पौंड है। इसमें दो रेडियो-प्रेषक लगे हुए है, जो बराबर रेडियो संकेत भेज रहे है।'

यह गोला स्पुत्निक-1 था। रूसी भाषा में 'स्पुत्निक' का अर्थ होता है 'सहयात्री'। वास्तव मे अभी तक पृथ्वी का सहयात्री मात्र प्राकृतिक उपग्रह था—चाद। पृथ्वी का मानव-निर्मित सहगामी स्पुत्निक-1 था।

स्पुत्निक-1 की उडान मानव-इतिहास का एक अद्वितीय आश्चर्य था पर इसे सर्वथा आकस्मिक कहना उचित नहीं होगा। वास्तव में द्वितीय विश्वयुद्ध के समय से ही अमरीका और रूस अतरिक्ष में पहल करने के लिए व्यस्त थे तथा प्रतियोगिता की भावना से इस कार्य में जुटे हुए थे। दोनो देश आंख मूंदकर इस दिशा मे धन व्यय कर रहे थे और कम-से-कम उस समय अपने देश की सुरक्षा का विचार प्रमुख था और वैज्ञानिक उत्थान का गौण।

जर्मनी के उत्साही नवयुवक प्रक्षेपक की सभावनाओं और अंतरिक्ष के अन्वेषण मे केवल वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जुटे हुए थे। किंतु 1939 में द्वितीय विश्व-युद्ध के आरभ के साथ ही उस महान् प्रयत्न का भी स्वरूप बदल गया और जो जर्मन सोसाइटी हर्मन ओबर्थ रूमैनियन अंतरिक्ष-वैज्ञानिक के प्रेरक नेतृत्व में काम कर रही थी, उसे वॉल्टर डोर्न बर्गर की अध्यक्षता में सामरिक महत्त्व के प्रक्षेपक पर कार्य करना पडा।

आरंभ में तो यह प्रयत्न सफल नहीं हुआ परतु 3 अक्टूबर 1942 को एक

काफी बड़ा प्रक्षेपक चलाने मे जर्मन वैज्ञानिको को सफलता मिल गई। यह प्रक्षेपक 46 फीट लबा था। इसका व्यास 5 फीट का था और ईधन के भार सहित इसका वजन लगभग 14 टन था। यह आकाश में काफी ऊचाई तक गया था। यह स्वत सचालन-सयंत्रों से सुसज्जित था तथा इसमें तरल ईधन का प्रयोग किया गया था।

अमरीकी तथा रूसी प्रयास

वी-2 रॉकेट जो ध्वनि की गति से भी अधिक तेज चलता था, इसी आरंभिक प्रक्षेपक का विकसित एवं सशोधित रूप था।

वी-2 रॉकेट अपने समय का सर्वश्रेष्ठ प्रक्षेपक था किंतु यह मानना भूल होगी कि जिस समय जर्मनी अपने वी-2 रॉकेट चलाकर लंदन नगर को ध्वस्त कर रहा था, उस समय संसार प्रक्षेपक-प्रणाली से अनभिज्ञ था। बल्कि सच्चाई तो यह है कि रॉकेट नामक शक्ति उस समय रूस और अमरीका दोनो के पास थी, केवल रूप तथा स्तर का भेद था। रूसियों के पास तो एक ऐसी तोप ही थी जिसके माध्यम से रॉकेट चलाए जा सकें। उधर अमरीका ने 'बाजूका' नामक एक बहुत बड़ी बदूक तैयार कर ली थी जिसके द्वारा रॉकेट चलाए जाते थे।

इसके बाद तोप और बदूक का स्थान प्रक्षेपणास्त्रों ने ले लिया तथा महाद्वीपीय और अंतरमहाद्वीपीय प्रक्षेपणास्त्र तैयार किए गए जिनकी गति 6,000 मील प्रति घंटा तक थी। प्रक्षेपणास्त्रों के विकास को प्रक्षेपक का विकास ही मानना चाहिए।

द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद जर्मनी के अंतरिक्ष वैज्ञानिक और उनकी सामग्री का एक असंतुलित-सा विभाजन हो गया। डोर्न बर्गर और व्हॉन ब्रॉन अपने निकटतम सहयोगियो के साथ अमरीका चले आए जबकि उसी केंद्र के कुछ वैज्ञानिक सोवियत संघ को प्राप्त हो गए। रूस ने मॉस्को के निकट 'खिम्की प्रक्षेपक-अन्वेषण केंद्र' स्थापित कर लिया जहां शक्तिशाली प्रक्षेपक-मोटर के निर्माण की दिशा में कार्यारभ हो गया तथा 1950 में उन्होने '103' नामक प्रक्षेपक-मोटर बना भी लिया।

उधर अमरीकी अतरिक्ष-विज्ञान ने भी 1955 में 'वैनगार्ड' रॉकेट पर काम शुरू कर दिया था। वैनगार्ड-अभियान एक असैनिक डॉ. हेगन की अध्यक्षता में आरंभ हुआ था।

1955 में, डेन्मार्क की राजधानी कॉपेन्हेगन में छठी अंतरराष्ट्रीय अंतरिक्ष-विज्ञान कांग्रेस की बैठक हुई जिसमें 25 जुलाई, 1955 को अमरीका के तत्कालीन राष्ट्रपति आइज़नहॉवर ने यह सूचना दी कि अंतरराष्ट्रीय-भू-भौतिक-वर्ष में अमरीका का विचार कृत्रिम भू-उपग्रह छोड़ने का है। दूसरी ओर रूस के प्रतिनिधि ने भी एक संवाददाता-सम्मेलन मे यह घोषणा की कि सोवियत संघ भी कृत्रिम भू-उपग्रह उड़ाने का विचार कर रहा है।

भू-भौतिक-वर्ष अठारह महीनों का एक वैज्ञानिक वर्ष मनाने का निश्चय संयुक्त राष्ट्र संघ ने किया था, जिसका आयोजन 1 जुलाई, 1957 से 31 दिसंबर, 1958

तक किया गया था। यह शायद विश्व का विशालतम वैज्ञानिक अभियान था क्योंकि इसमें ससार के 64 देशों ने भाग लिया था, यद्यपि ऐसे देश रूस और अमरीका ही थे जिन्होंने स्वयं को अतरिक्ष-अन्वेषण से प्रतिबद्ध घोषित किया था। इन दोनों देशो ने 'भू-परिक्रमी उपग्रहो के महत्त्व पर बल दिया और ऐलान किया कि भू-भौतिक वर्ष के दौरान ही वे जल्दी-से-जल्दी कृत्रिम भू-उपग्रह छोड़ेंगे।' यहा यह स्मरण करा देना सर्वथा ही अनावश्यक न होगा कि भू-भौतिक-वर्ष का आयोजन अपनी ही पृथ्वी की अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए किया गया था।

उधर अमरीका मे वैनगार्ड-अभियान के अतर्गत जुपिटर-सी नामक एक नए ही प्रक्षेपक-वाहन का विकास किया जा रहा था कि अकस्मात् ही स्पुत्निक-1 छोडकर रूस ने अतरिक्ष-युग का सूत्रपात कर दिया।

इससे पूर्व मानव द्वारा निर्मित कोई भी वस्तु 7,009 मील प्रति घंटा की गति नही पकड सकी थी, जबकि पॉलिश किए हुए खोल पर पड़ती सूर्य की किरणो में बिना दूरदर्शक-यत्र के दिखाई देने वाला यह गोला 18,000 मील प्रति घंटा की गति से पृथ्वी की परिक्रमा कर रहा था।

सोवियत साज-सज्जा

सोवियत साज-सज्जा पर विचार करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक प्रतीत होता है कि यद्यपि विश्व का प्रथम प्रक्षेपक सन् 1806 में रूजिटी नामक आविष्कर्ता द्वारा प्रयुक्त किया गया था, फिर भी वह बाल-प्रयास ही था।

इसीलिए उक्त प्रयास न केवल गभीरता से ग्रहण नहीं किया गया बल्कि उसके बाद 140 वर्षो तक उस दिशा में किसी ने सार्थक प्रयत्न भी नहीं किया। अंतरिक्ष मे उड़ान भरने का सर्वप्रथम सत्य सन् 1883 में रूस के महान् वैज्ञानिक सियल्कोवस्की द्वारा उद्घाटित किया गया था। यह उद्घाटन किसी अनुमान, कल्पना अथवा कामनापूर्ण विचार पर आधारित न होकर ठेठ गणित-गणना पर आधारित था। यह प्रतिपादन सियल्कोवस्की द्वारा ही किया गया था कि 'जीवित प्राणियों की अंतरिक्ष यात्रा—सुरक्षित यात्रा मे एकमात्र प्रक्षेपक ही उचित वाहन बन सकता है।' क्योंकि प्रक्षेपक की गति आवश्यकतानुसार क्रमशः घटाई-बढ़ाई जा सकती है। अतः इस तथ्य को स्वीकार कर लेने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं है कि प्रक्षेपक-निर्माण की दिशा में जर्मन और अमरीकी प्रयत्नो के साथ-साथ रूसी प्रयत्न भी निरंतर जारी थे।

रूस ने अपने मध्यम दर्जे के प्रक्षेपणास्त्र का परीक्षण 1956 में किया था। प्रथम कोटि के प्रक्षेपणास्त्र को 1957 में सफलतापूर्वक जांचा गया। यह एक निर्विवाद सत्य है कि प्रक्षेपक का निर्माण और विकास रूस में भी बम ठिकाने पर फेंकने के लिए ही किया गया था, पर यह बात उनकी समझ में आ गई थी कि यदि प्रक्षेपक के आगे एक कक्ष और जोड़ दिया जाए तो उसे पृथ्वी की कक्षा मे घुमाया जा सकता है। विश्वास किया जाता है कि रूसी प्रक्षेपक-विज्ञान तथा अंतरिक्ष-अन्वेषण-आयोजन

के पीछे कोरोलॉफ जैसा महान् मस्तिष्क था।

अमरीकी वैज्ञानिक अनुसधान अभी 'जुपिटर' की उलझनो को सुलझाने मे ही व्यस्त था कि 4 अक्टूबर, 1957 की सुबह एक तीन मंजिले प्रक्षेपक को पृथ्वी की कक्षा मे देखकर दुनिया दंग रह गई, जिसकी नाक मे 184 पौड वज़न का स्पुत्निक-1 छुपा हुआ था तथा जो गोलाकार कक्ष यथा समय बाहर निकलकर अतरिक्ष की सैर करने लगा।

स्पुत्निक-1

स्पुत्निक-1 मील सवा मील तक ऊपर उठा तथा फिर पथ-प्रदर्शन-व्यवस्था के अनुसार झुकने लगा। जिस समय यह भू-उपग्रह भू-तल के साथ 45^0 का कोण बनाता हुआ लगभग साढे चार हजार मील प्रति घंटा की चाल से चल रहा था तो प्रक्षेपक का पहला चरण टूटकर अलग हो गया। दूसरे चरण ने उसकी गति बढाकर लगभग 12,000 मील प्रति घंटा कर दी, जबकि यह चरण भी पीछे छूट गया। अंतिम चरण अपनी नासिका में स्पुत्निक-1 नामक गोले को सभाले हुए आगे बढ़ता गया। एक समय आया जबकि उपग्रह भूतल के समानान्तर होकर उड़ने लगा। जब स्पुत्निक-1 लगभग 600 मील दूर निकल गया तो पृथ्वी की कक्षा में प्रविष्ट होने के लिए उचित अक्षाश उसके समक्ष था किंतु कक्षा-प्रवेश के लिए आवश्यक गति का अभाव था। उस समय कम-से-कम 18,000 मील प्रति घंटा की गति वांछनीय थी। तीसरे चरण ने उपग्रह को यही वाछित गति प्रदान की।

यद्यपि सोवियत सघ की यह उपलब्धि बीसवीं सदी की सर्वोत्तम उपलब्धि कही जानी चाहिए, उस समय इस सफलता को उसका उचित श्रेय नहीं दिया गया। फिर भी स्पुत्निक-1 की उड़ान अपने समय का सर्वोच्च कीर्तिमान था क्योकि मानवीय प्रयत्न ने स्पुत्निक-1 के माध्यम से पहली बार अंतरिक्ष का द्वार खटखटाया था। मानवीय संभावनाओं का एक नया आयाम (dimension) उपस्थित किया था।

स्पुत्निक-1 के विषय में यह जानकारी बडी महत्त्वपूर्ण है कि उसके निर्माण में जर्मन-विज्ञान का कोई प्रत्यक्ष हाथ नहीं था (जैसा कि उस समय स्वाभाविक सदेह किया गया था)। यह तथ्य तो बहुत बाद में सिद्ध हुआ कि स्पुत्निक-1 प्रत्यक्ष रूप से सोवियत सफलता ही थी। इस महती सिद्धि का श्रेय उस समय रूसी वैज्ञानिक सर्जी कोरोलॉफ को दिया गया।

स्पुत्निक-1 की उड़ान भविष्य के लिए बडी उपयोगी सिद्ध हुई। उसके कई (ज्ञात) लाभदायक निष्कर्ष निकाले गए - ऊपरी वायुमंडल की सघनता का सही परिचय इसी उड़ान से प्राप्त हुआ क्योंकि स्पुत्निक-1 का दूरतम बिंदु 588 मील की दूरी पर था। फिर उसके द्वारा भेजे गए रेडियो-सकेत प्राप्त हुए, जिनके आधार पर आगामी अतरिक्ष-यानों के लिए विश्वसनीय संचार-व्यवस्था का प्रबध किया जा सका। साथ ही यह भी सिद्ध हो गया कि पृथ्वी की धातुओ से ऐसे कल-पुर्जे ढाले जा सकते

हैं, जो अतरिक्ष के ताप-परिवर्तनों में सुचारु रूप से कार्य कर सकें।

वैसे स्पुत्निक-1 नामक प्रथम मानव-निर्मित भू-उपग्रह को छोड़ने में एक गड़बड़ रह गई थी—इसका निकटतम बिंदु (perigee) केवल 142 मील की दूरी पर था। इससे स्पुत्निक-1 को बार-बार वातावरण मे से होकर गुजरना पड़ा। परिणाम यह हुआ कि तीन महीने के बाद ही वातावरण के घर्षण का शिकार होकर उस उपग्रह की मृत्यु हो गई। इसका कारण यह था कि वातावरण में हवा का दवाब कार्यशील रहता है तथा वह क्रमशः उपग्रह की गति को घटाता चला जाता है। ज्यों-ज्यो गति में कमी पड़ती है, त्यो-त्यों ऊंचाई घटती जाती है और अतत. उपग्रह को वातावरण की उस सघनता में डुबकी लगानी पड़ती है, जहां घर्षण के ताप से उसकी रक्षा तब तक नहीं हो सकती जब तक कि उपग्रह के ऊपर विशेष प्रकार का कवच न चढा हो तथा उसकी गति को वांछित ढंग से घटाया न गया हो।

स्पुत्निक-1 की चमत्कारी उड़ान के आश्चर्य से अभी विश्व मुक्त भी न हुआ था कि 3 नवबर, 1957 को स्पुत्निक-2 भी पंख लगाकर आसमान मे उड़ गया। यह दूसरा प्रयत्न निश्चय ही पहले से कहीं अधिक आगे की चीज थी। इसके कक्ष मे 'लाइका' नामक एक जीवधारी कुतिया भी थी। असल में स्पुत्निक-1 की उडान के समय तक रॉकेटों की विभिन्न उड़ानों के द्वारा वैज्ञानिक लोग यह जानकारी प्राप्त कर चुके थे कि जीवधारियों पर उड़ान के प्रभाव किस रूप में होते हैं। प्रक्षेपक की उठान और उड़ान के समय गतिदबाव, स्फुरण तथा शोर-शराबा का जीव-जंतुओ पर क्या प्रभाव पड़ता है। इस ज्ञान ने रूसियों को लाइका की उड़ान की प्रेरणा दी थी।

स्पुत्निक-2 तथा लाइका

14 पाउड वजन वाली कुतिया लाइका ने जिस छोटे से कक्ष में यात्रा की वह दवाब वाला था परंतु दुर्भाग्य से उस समय तक उसे वापस पृथ्वी पर उतारने का कोई प्रबंध नहीं था। इसके दुष्परिणाम स्वरूप एक सप्ताह बाद वह कुतिया ऑक्सीजन के अभाव मे बाह्य वायुमडल मे ही मर गई परंतु मनुष्य के पृथ्वी के बंदीगृह से बाहर निकलने की आशा को जिला गई। लाइका को बलि-वेदी पर चढ़ाने का उद्देश्य यह जानकारी प्राप्त करना था कि अंतरिक्ष में प्राणी जीवित रह भी सकता है या नहीं; अंतरिक्ष मे उसकी हृदय-गति, ताप तथा अन्य अवस्थाओं की सीमा क्या है; वहा स्वाभाविक रीति से खाया-पीया भी जा सकता है अथवा नहीं ? और फिर 18,000 मील प्रति घंटा की गति प्राणियों के लिए कहां तक सह्य है ? इन सब प्रश्नों का उत्तर लाइका की मृत्यु से प्राप्त हुआ तथा आश्वासनपूर्ण संकेतों में प्राप्त हुआ।

कुछ लोगों का ऐसा भी अनुमान है कि उसे वापस बुलाने का साधन न होने के कारण उसे आठ दिनो की उड़ान के बाद ऐसे तरीके से मार दिया गया जिससे उसे कष्ट न हो। किंतु इससे मनुष्य को एक हानि भी हुई—उसके लिए यह समझना कठिन हो गया था कि यदि उसे मारा न जाता तो विकिरण (radiation) के प्रभाव

से उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी थी या नहीं ?

स्पुत्निक-2 की उडान कुछ अन्य दृष्टियों से बड़ी कारगर सिद्ध हुई : अंतरिक्ष के इस रहस्य का उद्‌घाटन पहली बार हुआ कि ब्रह्माड-किरणो (cosmic rays) का कोई हानिकारक प्रभाव प्राणी पर नहीं पड़ता और समय-समय पर होते रहते उल्कापातो से भी अंतरिक्ष यान आमतौर पर सुरक्षित रह सकता है। सौर-धूलि (solar dust) के कारण अंतरिक्ष-कक्ष के लिए खतरा नहीं है, यह पता स्पुत्निक-2 मे रखे आवश्यक पुर्जो के समुचित संचालन से चला।

स्पुत्निक-3

15 मई, 1958 को रूस द्वारा स्पुत्निक-3 उड़ाया गया। इसका वज़न 3,000 पोड था। पहले दो स्पुत्निकों के मुकाबले में यह सचमुच ही बहुत बड़ा था—इतना अधिक बडा कि इसे 'समानव' समझे जाने की गलती की जाने लगी। किंतु जैसा कि ज्ञात ही है, इस यान की उडान भी अनेक प्रकार के वैज्ञानिक परीक्षणों के लिए ही की गई थी। इन परीक्षणो में उपकरणों की जाच तथा विभिन्न जोखिमो की जानकारी मुख्य रूप से शामिल थी।

स्पुत्निक-शृंखला की उड़ान भीतरी अंतरिक्ष की जांच-परख के लिए की जा रही थी पर इस अन्वेषण-सीमा से सोवियत-विज्ञान सतुष्ट नहीं था। अतरिक्ष में आगे बढने के लिए बाह्य अंतरिक्ष का समुचित ज्ञान आवश्यक था। अत॰ जनवरी, 1959 के प्रथम सप्ताह में ल्यूनिक-1 नामक उपग्रह ऊपर उठाया गया। मानव द्वारा निर्मित यह प्रथम कृत्रिम उपग्रह था जो गुरुत्वाकर्षण की लक्ष्मण रेखा को भेदकर अंत मे सूर्य की कक्षा मे चला गया। उक्त उपग्रह 34 घंटों की उडान के बाद चांद के निकट से गुजरा था।

गुरुत्वाकर्षण की लक्ष्मण-रेखा से पार

ल्यूनिक-1

ल्यूनिक-1, जैसा कि उसके नाम से ही प्रकट है (लूना का अर्थ चांद होता है), चाद पर मनुष्य की पहली यांत्रिक चढ़ाई थी। यह उपग्रह भी तीन खंडों वाले प्रक्षेपक की सहायता से ही भेजा गया था। इस उपग्रह मे कई प्रकार के यंत्र रखे गए थे जिनके द्वारा विकिरण, सौर धूलि के ठोस कण तथा धरती के चुंबकीय क्षेत्र आदि की जानकारी का प्रयत्न किया गया था। कहते है ल्यूनिक-1 में ऐसी प्रकाश-व्यवस्था भी थी जो आगे का मार्ग-प्रदर्शन करे।

ल्यूनिक-1 चाद पर नहीं पहुंचा—वह सूर्य का प्रथम मानव-निर्मित उपग्रह बन गया। हां, 12 सितंबर, 1959 को छोडे गए ल्यूनिक-2 ने सचमुच ही चांद को छू लिया। ल्यूनिक-2 पहली ऐसी वस्तु थी जो चांद से टकराई और टुकड़े-टुकड़े होकर वहीं धराशायी हो गई। इसके विषय में डॉ. गिल्बर्ट फील्डर ने बतलाया था 'निशाना

बिल्कुल ठीक-सा ही रहा। 825 पाउड वज़न का पात्र श्नेकेन्वर्ग नामक ज्वालामुखी के निकट चाद के केंद्र के निकट गिरा।'

बाद में सोवियत-भूमि से निम्नलिखित सूचना दी गई—

'ल्यूनिक-2 पूर्व-निर्धारित स्थान पर गिरकर टूट गया। उसके सभी यन्त्र नष्ट हो गए।'

चांद का अदृश्य चेहरा

जैसा कि अव विदित ही है, चांद का पिछला चेहरा मनुष्य के लिए सदा अदृश्य तो रहा ही, अविदित भी रहा। उसका कारण है, चाद के पृष्ठ भाग का पृथ्वी से दिखाई न पड़ना क्योंकि पृथ्वी की तरह चांद अपने अक्ष पर भी घूमता हे किंतु अक्ष पर घूमने मे वह उतना ही समय लगाता है, जितना पृथ्वी की परिक्रमा करने में, इसीलिए उसका एक ही चेहरा सदा हमारे सामने रहता है। परतु 4 अक्टूबर, 1959 को रूस द्वारा ही छोड़े गए ल्यूनिक-3 ने चद्र-सुंदरी का वह घूंघट वाला चेहरा देख ही लिया। केवल देख ही नहीं लिया बल्कि उस लज्जालु नायिका के उक्त चेहरे के अनेक टेलीविजन चित्र पृथ्वी के प्राणियों मे बांट भी दिए। चंद्र-सुंदरी की दृष्टि से यह कार्य शायद अच्छा नहीं हुआ क्योंकि अब समस्त संसार को यह पता चल गया कि चंद्र-सुदरी के दो मुख तो है ही, किंतु उसका दूसरा चेहरा पहले चेहरे से कम कुरूप नहीं है—कुछ अधिक ही कुरूप है। चाद के दीखने वाले चेहरे और न दीखने वाले चेहरे में यदि कोई अंतर निकला तो केवल यह कि अदृश्य पक्ष पर पहाड़ो, टीलो, गड्ढों आदि का विस्तार अपेक्षाकृत कम ही है। और तथाकथित 'समुद्री-क्षेत्र' भी कम है।

ल्यूनिक-3 में 35 मिली मीटर का एक कैमरा था और खीचे गए चित्रों को पृथ्वी पर भेजने के लिए आवश्यक सामग्री थी।

चाद के पृष्ठ भाग की ओर पहुचने में ल्यूनिक-3 को 6 दिन लगे। वहां लगभग 40,000 मील की ऊंचाई से लगभग तीन-चौथाई अदृश्य भाग के चित्र लिये गए और उन्हें पृथ्वी पर भेजा गया। ल्यूनिक-3 चाद के पिछले चेहरे की तस्वीरें लेकर धरती की ओर लौटता हुआ अप्रैल, 1960 में जलकर समाप्त हो गया।

इस बात को समझने-बूझने के लिए किसी विशेष सूझ-बूझ की दरकार नही थी कि ढका-दबा राज खुल जाने के कारण चद्रमा रुष्ट अवश्य हुआ होगा ! इसलिए अक्ल का यही तकाजा था कि अब कुछ दिनों के लिए उसके पास न फटका जाए ! अत 1959-63 के बीच का समय पृथ्वी की कक्षा मे ही बिताया गया।

स्पुत्निक शृंखला

फिर मशीन तो चाद पर पहुच ही गई थी। अब तो मनुष्य के वहां पहुंचने की बात थी। परंतु यह बात व्यवहार मे इतनी सरल नहीं थी। अब देखना तो यह था कि मनुष्य चांद पर कैसे पहुचे और उसके लिए बहुत तैयारी की जरूरत थी।

सोवियत सघ का चौथा स्पुत्निक मई, 1960 मे पृथ्वी से उठा। किंतु दो वर्षो के इस अवकाश का यह अर्थ कदापि नही लगाना चाहिए कि सोवियत विज्ञान को स्पुत्निक-4 की उडान में किसी गभीर कठिनाई का सामना करना पडा। वास्तव मे लगता ऐसा है कि अंतरिक्ष मे कदम रखते ही सोवियत विज्ञान की दृष्टि चद्रमा पर जा पड़ी थी। जनवरी, 1959 मे बाह्य अतरिक्ष मे भेजा गया ल्यूनिक-1 इस अनुमान की पुष्टि करता है।

यहां यह कहना असंगत न होगा कि स्पुत्निक-4 वापस नही लौटा (मुमकिन है, उसको वापस लौटाने की योजना ही न हो)—वायुमंडल मे ही खेत रहा। हां, उसी वर्ष अगस्त मे छोडा गया स्पुत्निक-5 सही-सलामत वापस लौट आया। स्पुत्निक-5 मे बेल्का और स्ट्रेल्का नामक दो कुत्ते सवार थे। इसके अलावा उसमें चूहे, मक्खिया तथा जीवाणु भी थे।

उसी वर्ष दिसबर में उडाया स्पुत्निक-6 जिस पर शेल्का और मुश्का नामक दो कुत्ते सवार थे, यात्रा की वापसी के दौरान जलकर खाक हो गया क्योंकि यान के स्वतः चालित स्थिरीकरण-यंत्र ने समय पर कार्य नहीं किया।

इसके बाद 10 की संख्या तक के स्पुत्निक कुछ सौभाग्यशाली (और दुर्भाग्यशाली भी) कुत्तों को अंतरिक्ष की सैर कराते रहे और उनको सैर कराने वाले वैज्ञानिक नवीनतम जानकारियां बटोरकर 'समानव' अंतरिक्ष-यात्रा की तैयारी करते रहे।

इन दस स्पुत्निकों को उड़ाने का उद्देश्य था 'उनमें मौजूद उपकरणो की जाच, उडान-पथ की विशुद्ध जानकारी और अंतरिक्ष-यात्रियों पर विभिन्न परिस्थितियो का सभावित प्रभाव।' इन्हीं 'अमानव' यानो द्वारा विकिरण (पराबैंगनी), ब्रह्माड-किरण (तथा ब्रह्माड-धूलि) और उल्काओं से सबधित जानकारी भी प्राप्त की गई।

सोवियत साज-सज्जा के सदर्भ में जीव-जतुओं के योगदान की चर्चा न करना एक अपने ही ढग की कृतघ्नता होगी। इतिहास साक्षी है कि जतु-जगत सदा ही मानव-जगत का अग्रवर्ती रहा है तथा उच्चकोटि के जीवन के निमित्त निम्न-कोटि के जीवन ने सदा आत्मोत्सर्ग किया है। प्राकृतिक योजना इसी आधार पर आगे वढी है। भारत में प्रचलित चौबीस अवतारों की कथा, जो कि वास्तव में जीवन के विकास और मानव-जीवन के विकास की कथा है, इसी तथ्य का लेखा-जोखा है। पृथ्वी पर भी जीवन मत्स्य अथवा मच्छ से आरम्भ होता है और कच्छ, वराह और नृसिंह के सोपानों को पार करता हुआ वामन, परशुराम तथा अंत मे राम, कृष्ण और गौतम बुद्ध तक पहुंचता है।

जैसा कि स्पष्ट ही है, जंतु-जगत की भूमिका अतरिक्ष में भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण रही है। संभवतः प्राकृतिक गति-विधि को दृष्टिकोण में रखकर ही गल्फियर बंधुओ ने अपने प्रथम गुब्बारे में जीव-जंतुओं को ही ऊपर भेजा था। मामूली ऊंचाई तक बारूदी प्रक्षेपक भेजने वाले रूजिटी नामक वैज्ञानिक ने 1806 में कई छोटे-छोटे जीव-जंतुओं का उपयोग किया था। वैज्ञानिक-कथा लेखक जुल्स वर्न ने भी अपनी

पुस्तक 'From the Earth to the Moon' में मनुष्यों से पहले एक बिल्ली और एक गिलहरी के अंतरिक्ष में भेजने की बात लिखी है ताकि चन्द्र उड़ान के सुरक्षात्मक पक्ष की जांच-परख पहले ही की जा सके।

यहा यह मान लेना उचित लगता है कि अन्य असंख्य साधनों की उपलब्धि तथा मानव-सहयोग के बावजूद मानव द्वारा चंद्र-विजय-अभियान मे सबसे अधिक विश्वसनीय साथी जीव-जंतु ही रहे हैं, जिन्होंने अपनी बलि चढ़ाकर मानव का मार्ग प्रशस्त किया है। इस दिशा में सोवियत प्रयत्न अत्यंत दूरदर्शिता पूर्ण साबित हुआ।

अमरीकी अभियान

डेन्मार्क की राजधानी कॉपेन्हेगन मे अमरीका के तत्कालीन राष्ट्रपति आइज़नहॉवर की घोषणा इस संभावना का पूर्वाभास थी कि भू-भौतिक-वर्ष मे देश की भूमिका सर्वोपरि रहेगी। किंतु समय की कसौटी पर यह आशा पूरी नहीं उतरी। इसके विपरीत सोवियत स्पुत्निक-1 की सफल उड़ान से इस महादेश को जबरदस्त धक्का लगा।

अमरीका को प्रक्षेपक के क्षेत्र मे एक विशेष सुविधा प्राप्त हो गई थी। द्वितीय विश्व युद्ध मे जर्मनी के आत्मसमर्पण के पश्चात् वी-2 रॉकेट का निर्माता वर्नर व्यॉन ब्रॉन अपने वैज्ञानिक सहयोगियों सहित तथा समर्थ योजनाओं के भंडार सहित अमरीका चला आया था। ब्रॉन आरंभ से ही प्रक्षेपक के सामरिक प्रयोग का विरोधी था; उसका गन्तव्य तो सितारे थे। वह अमरीकी अंतरिक्ष-कार्यक्रम में सक्रिय सहयोग दे भी रहा था पर अमरीका स्वयं ही उस मूल्यवान सहयोग से लाभ उठाने की स्थिति मे नहीं था। उसका सारा आयोजन विशृंखल था क्योंकि शास्त्रों की दौड में प्रक्षेपक के सामरिक महत्त्व पर उसकी मुख्य दृष्टि थी तथा अंतरिक्ष-आयोजन गौण था। वास्तव में, उस समय अंतरिक्ष को जितना महत्त्व दिया भी जा रहा था, उसके गर्भ मे भी सामरिक प्रतिष्ठा की ही लालसा थी।

इसमें कोई संदेह नहीं कि रूसी सफलता से अमरीकी प्रतिष्ठा को आंच आई थी (और संभवतः सामरिक संतुलन में फर्क पड़ा था) अतः इस धब्बे को धोने का बीडा अमरीकी नौसेना ने उठाया और तीन मंजिले 'वैनगार्ड' का अंतिम परीक्षण 23 अक्टूबर, 1957 को किया गया। इस परीक्षण के परिणामस्वरूप यह आशा बंध गई कि अमरीकी अभियान अब आगे बढ़ने वाला है। परंतु 6 दिसंबर, 1957 को अपना उपग्रह छोड़ने के प्रयत्न मे अमरीकी नौसेना को असफलता का मुंह देखना पड़ा। 'यद्यपि अमरीकी नौसेना अभियान के निदेशक सहमत नहीं थे, तो भी उक्त आयोजन को आगे बढ़ाने मे अनावश्यक तेजी से काम किया गया। परिणाम यह निकला कि भू-उपग्रह छोड़ने का प्रथम अमरीकी प्रयत्न छोड़ने-के-स्थान पर ही संतरे के रंग की विशाल लपटों मे समाप्त हो गया।'

नौसेना की ——— के बाद सेना की बारी आई क्योंकि स्थल-सेना स्वतंत्र रूप से इस कार्य में जुटी हुई थी ... की तैयारियों

मे जुटा हुआ था, उसमें वर्नर व्हॉन ब्रॉन भी था। अंततः 31 जनवरी, 1958 को अमरीकी स्थल-सेना का वही 'जुपिटर-सी' रॉकेट कृत्रिम उपग्रह को अपने सिर पर उठाकर आकाश मे प्रवेश कर सका, जिसे एक वर्ष पूर्व अमरीका के प्रतिरक्षा विभाग ने अस्वीकार कर दिया था। इस उपग्रह का नाम एक्सप्लोरर-1 था।

एक्सप्लोरर तथा वैनगार्ड आदि उपग्रह

एक्सप्लोरर-1 का वजन केवल 31 पौंड था तथा यह स्पष्टतः स्पुत्निक-1 से छोटा था। यह उपग्रह था तो छोटा पर इसने कार्य बहुत बड़ा किया। वास्तव में, पृथ्वी के वायुमंडल के बाहर दो विकिरण-पेटिया है, जिनका निर्माण सतत रूप से सूर्य से स्खलित होते धूलि-कणों के एकत्र होते रहने मे हुआ है तथा जिन्होंने हमारी पृथ्वी को उसके वायुमंडल सहित पेटियों की तरह बांधा हुआ है। इन पेटियो का पता प्रकट रूप से सर्वप्रथम एक्सप्लोरर-1 ने ही दिया (एक मत ऐसा भी है कि पहली पेटी जो कि भूतल से 600 मील दूरी से 8,000 मील की दूरी तक फैली हुई है, एक्सप्लोरर-1 के द्वारा ढूढ़ी गई, जबकि दूसरी विकिरण-पेटी जो कि उससे परे है, अमरीका के ही पायनियर-3 ने तलाश की)। ये दोनो 'वॉन एलन पेटिया' कहलाती हैं क्योंकि एक्सप्लोरर-1 ने जो सूचनाए भेजी थी उनसे इन पेटियो की स्थिति का पता सबसे पहले जेम्स वॉन एलन नामक वैज्ञानिक द्वारा ही लगाया गया था।

लगता है, सेना की सफलता से नौ सेना को भी पुनः प्रेरणा मिली, क्योंकि 17 मार्च, 1958 को नौ सैनिक अंतरिक्ष-विज्ञान ने एक सफल प्रयास किया। 3 पौंड वज़न का 'वैनगार्ड' उपग्रह पृथ्वी की कक्षा में पहुचा दिया। वैनगार्ड इतना छोटा उपग्रह था कि रूसियों ने इसे 'अंगूर' की संज्ञा दी थी।

वैनगार्ड नाम का यह गोला इतना छोटा था कि इसका व्यास लगभग 1/2 फुट था। इसमें सौर-विकिरण को नापने के समर्थ यंत्र लगे हुए थे। इस तथाकथित खिलौने मे सौर-बैट्रिया लगाई गई थीं जो कि सूर्य के प्रकाश को शक्ति (power) मे परिवर्तित करके जीवित रहने में समर्थ थीं। यह पता इसी उपग्रह की उड़ान से चला कि पृथ्वी नाशपाती की शक्ल की है।

वैनगार्ड उपग्रह स्पुत्निक-1 की अपेक्षा अधिक सुरक्षित कक्षा मे स्थापित किया गया था—उसका दूरतम बिंदु 2453 मील और निकटतम बिंदु 409 मील की दूरी पर था। जिसके कारण काफी लंबे अर्से तक उसके वातावरण की लपेट मे आने का अन्देशा नहीं था।

इसके बाद तो अमरीका ने उपग्रहों की झड़ी-सी लगा दी। जिस दौरान रूस द्वारा तीन उपग्रह छोडे गए, उसी बीच अमरीका ने अठारह उपग्रह भेजे।

17 अगस्त 1958 को 'एबल-1' छोड़ा गया किंतु वह चंद मील जाकर ही फेल हो गया

18 दिसंबर, 1958 को ...

उपग्रह ने अंतरिक्ष की सैर की। यह उपग्रह लगभग 9,000 पौंड वजन का था। इसका निकटतम बिंदु 115 मील की दूरी था। अतः यह एक महीने के बाद समाप्त हो गया।

'नासा' NASA (National Aeronautics and Space Administration) की स्थापना इससे पूर्व अक्टूबर, 1958 में हो चुकी थी। नासा की स्थापना इस तथ्य का प्रमाण है कि अमरीका ने अंतरिक्ष-अन्वेषण को स्वतंत्र विषय मान लिया था तथा उसका संचालन असैनिक प्रशासन के सुपुर्द कर दिया था। यह नासा की ही योजना थी कि अमरीका पृथ्वी की कक्षा में समानव उपग्रह भेजे।

11 अक्टूबर 1958 को 'पायनियर-1' भेजा गया परंतु चांद पर पहुंचना तो दूर 50-60 मील चलकर ही वह वापस हो लिया। 'पायनियर-2' ने उड़ने से ही इंकार कर दिया। और तो और, 6 दिसंबर, 1958 को उड़ान भरने वाला 'पायनियर-3' भी चाद के तिहाई मार्ग तक ही पहुंच पाया।

इधर 17 फरवरी, 1959 को पृथ्वी की कक्षा में वैनगार्ड-2 पहुंचाया गया। इस उपग्रह ने बादलों से ढंकी पृथ्वी का चित्र भेजा। 3 मार्च 1959 को उड़ारी लेने वाला 'पायनियर-4' चाद के पास से गुजरा जरूर लेकिन डरता-डरता और यकायक ही बाह्य अतरिक्ष मे भाग गया।

वॉन एलन विकिरण-पेटियों के अन्वेषण में एक्सप्लोरर-6 का बड़ा हाथ था। 143 पौंड वजन का यह उपग्रह 7 अगस्त, 1959 को छोड़ा गया था। इसका दूरतम-बिंदु (apogee) 26, 366 मील के फासले पर था। विकिरण की बाहरी पेटी की जानकारी तो वास्तव में इसी यान ने दी, पृथ्वी के प्रथम टेलीविज़न चित्र भी इसी उपग्रह के द्वारा भेजे गए। पर इसकी उम्र अधिक नहीं थी। यह जुलाई, 1961 से आगे नही चल सका। जानकार लोगों की सूचना है कि इसे एक उल्का ने विनष्ट कर दिया था।

इसके बाद 18 सितबर, 1959 को उड़ने वाले वैनगार्ड-3 ने और भी उपयोगी सूचनाएं दी, यद्यपि यह उपग्रह ले-देकर 100 पौंड वजन का था। पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र (magnetic field) की जानकारी वैनगार्ड-3 ने दी तथा उसके विस्तार का संपूर्ण आभास दिया। इसके अतिरिक्त लघु उल्काओं एवं विकिरण का और भी अधिक ज्ञान उसके द्वारा भेजा गया।

अंतरिक्ष अन्वेषण मे अमरीका की वायुसेना स्वतंत्र रूप से भाग ले रही थी तथा उसने 'डिस्कवरर शृंखला' चलाई थी। किंतु यह शृंखला सर्वथा सामरिक महत्त्व की थी तथा इसका कार्यक्रम गुप्त रीति से चलता था। उधर स्थल सेना ने जुपिटर नामक प्रक्षेपणास्त्र के शंकु (cone) में दो बंदरों—एबल और बेकर को अंतरिक्ष मे 300 मील की ऊंचाई तक भेजा।

1959 में ही अमरीका द्वारा एक और महत्त्वपूर्ण उपग्रह छोड़ा गया यह 'एक्सप्लोरर-7' था, जो कि [illegible] अक्तूबर, 1959 को [illegible]

पर बैठाकर भेजा गया था। इसका वजन 100 पौंड से भी कम था। इसने चुंबकीय क्षेत्र, और प्रज्वलन तथा विकिरण के विषय मे सूचनाएं भेजी थी।

लगता ऐसा है कि अमरीकी दृष्टि से 1960 का वर्ष 'समानव' उड़ान की तैयारी का वर्ष था। इन दिनो अमरीका 'मर्करी' के परीक्षण मे व्यस्त था। 19 जुलाई, 1960 को 'मर्करी' का परीक्षण असफल सिद्ध हो गया तथा उसके साथ ही 'रेडस्टोन' रॉकेट का परीक्षण आरंभ हुआ। परतु अमरीकी अतरिक्ष-यात्री के चांद पर उतरने की समय-सारिणी मे 2 जुलाई, 1960 का दिन बडे महत्त्व का है। यह निश्चय इस तिथि को किया गया कि 1970 से पहले-पहले मनुष्य को चांद पर चरण टिका देना है। इसके साथ ही राष्ट्रीय उड्डयन तथा अंतरिक्ष प्रशासन (NASA) ने यह घोषणा कर दी कि मर्करी योजना के बाद 'अपोलो' योजना की बारी होगी।

समानव उड़ान के यत्न

यो भी 1960 का वर्ष अमरीकी अभियान के लिए महत्त्वपूर्ण रहा है। 95 पौंड वजन का पायनियर-5 इसी वर्ष 11 मार्च को 'थोर-एबल' नामक वाहन पर सवार कराके उडाया गया। इस उपग्रह ने न केवल सौर-मडल की लबाई-चौड़ाई का लेखा-जोखा उपलब्ध कराया, बल्कि चुंबकीय-क्षेत्र और सौर-वायु से सबंधित जानकारिया भी दी।

3 नवबर, 1960 को उडने वाले एक्सप्लोरर-8 ने यह बतलाया कि उपग्रह के तल पर निष्क्रिय विद्युत-जमाव की क्या स्थिति होती है तथा कक्ष पर लघु-उल्काओं का क्या प्रभाव होता है।

1961 के आरंभ मे 31 जनवरी को हैम नामक एक शिम्पैंजी को ऊपर भेजा गया। वह शिम्पैंजी मर्करी कक्ष मे बैठा था तथा रेडस्टोन नामक रॉकेट उसे कंधों पर उठाकर उड़ रहा था। हैम ने 420 मील लंबी यात्रा की थी तथा उसे जीता-जागता वापस लौटा लिया गया था।

असल मे ये वे दिन थे जब रूस और अमरीका दोनों ही समानव-अंतरिक्ष-उड़ान मे पहल करने के लिए जी तोड़ कोशिश कर रहे थे। सोवियत संघ के एक दर्जन प्रस्तावित अंतरिक्ष-यात्री बड़ी कठिन दीक्षा के दौर से गुजर रहे थे तथा आधा दर्जन उडाके अमरीका में भी आकाश चारण के लिए खून-पसीना एक करने वाले अभ्यासों से जूझ रहे थे। किंतु सोवियत संघ का पलडा भारी लगता था।

6. आकाश और आदमी

12 अप्रैल, 1961—मानव इतिहास का यह अद्भुत दिन था।

इस दिन मनुष्य ने पहली बार अंतरिक्ष में यात्रा की थी, पहली बार गुरुत्वाकर्षण से कई गुना अधिक दबाव महसूस किया था, पहली बार भारहीनता का 'स्वाद' चखा था, पहली बार (वेग धीमा करने वाले लघु प्रक्षेपकों के चलने पर) घर्षण का अनुभव किया था और पहली बार पृथ्वी के गोले के चारों ओर की कक्षा में परिक्रमा की थी।

यह भाग्यशाली मनुष्य था यूरी गागरिन।

यूरी गागरिन रूसी था—उस देश का निडर निवासी जो अंतरिक्ष के नक्शे पर सोवियत संघ को पहले स्थापित करने के लिए कटिबद्ध था।

किंतु 11 अप्रैल को मॉस्को में एक और ही अफवाह गर्म थी—इल्यूशिन नामक एक अन्य रूसी खलाबाज़ 7 अप्रैल को ही अंतरिक्ष की सैर कर चुका है।

इल्यूशिन की कहानी ने तथाकथित 'स्वतंत्र-विश्व' में बड़ा तूल पकड़ा। यहां कई प्रकार के अनुमान लगाए गए। कुछ लोगों की राय थी कि इल्यूशिन की कहानी मात्र कहानी ही है तथा इसके प्रचार का सीधा-सादा अर्थ यही है कि रूसी अंतरिक्ष-यात्री किसी भी क्षण उड़न-गाड़ियों से उड़न-छू हो सकता है।

दूसरी ओर अन्य लोगों का मत था कि संभवतः संसार का प्रथम अंतरिक्ष यात्री इल्यूशिन को ही बनाने का प्रयत्न किया गया था किंतु किसी अंतिम क्षण में घटी दुर्घटना के कारण बाद में गागरिन को यह श्रेय दिया गया।

वैसे इल्यूशिन नामक रूसी उसी दौरान घायल हुआ था और सोवियत संघ ने इस बात की पुष्टि भी की थी पर टर्की में स्थित अमरीकी रेडार के पर्दे पर 12 अप्रैल से पूर्व कोई उड़न-वस्तु प्रकट नहीं हुई थी।

प्रथम अंतरिक्ष-यात्री

बहरहाल एक तथ्य अवश्य है—मॉस्को से 1,300 मील की दूरी पर मध्य कज़ाकिस्तान में बैकनूर नामक अंतरिक्ष अड्डे पर अद्भुत सूरत शक्ल का एक चमकता हुआ प्रक्षेपक खड़ा था जो एक से अधिक प्रक्षेपकों का सम्मिलित रूप प्रतीत होता था। यह प्रक्षेपक

किसी भी क्षण अपने वाहक 'वोस्तॉक' को उठाकर उड़ने के लिए तैयार था। उधर उसी समय केप कैनेवरल में अमरीकी रेडस्टोन रॉकेट अपनी गद्दियों पर तैयार खड़ा था, जिसके सिर पर मर्करी नामक अंतरिक्ष-यान था। वोस्तॉक का वाहक गागरिन था और मर्करी का शेपर्ड। प्रश्न केवल पहल करने का था। और यह पहल गागरिन ने की, यद्यपि इसकी विधिवत् सूचना विश्व को तब मिली जब गागरिन सही-सलामत पृथ्वी पर लौट आया।

गागरिन ने पृथ्वी की एकमात्र प्रथम परिक्रमा की जिसमें उसे 1 घंटा 48 मिनट लगे थे। उसका यान वोस्तॉक-1 10,418 पौंड वजन का था। उसका निकटतम बिंदु 112 मील के फासले पर और दूरतम-बिंदु 203 मील के फासले पर था। अतरिक्ष-कक्ष गेद के समान गोल था तथा जब इसने पृथ्वी का चक्कर लगाया तो प्रक्षेपक का अतिम चरण उसके साथ संबद्ध था। वोस्तॉक मे से अनेक एरियल निकलकर विभिन्न दिशाओ मे फैले हुए था।

गागरिन के कक्ष में एक ही अंतरिक्ष-यात्री के बैठने का प्रबध था, यद्यपि कक्ष काफी बड़ा था। 'कक्ष मे तीन सुराख थे, जिन पर किवाड़ लगे थे, ताकि सूर्य की अधा कर देने वाली रोशनी से गागरिन की आंखें सुरक्षित रहे।'

अंतरिक्ष-यात्री के सामने यंत्रों का चौखटा लगा हुआ था, 'जिस पर ताप, वायु-दबाव, ईधन-दबाव तथा ऑक्सीजन का स्तर और वातावरण में कार्बन-डॉइआक्साइड की मात्रा मापने के यंत्र लगे थे।'

गागरिन के कक्ष मे दो टेलीविजन कैमरे थे और उसके सामने लगा था एक ग्लोब जो स्वतः चालित था। इस ग्लोब की सहायता से गागरिन किसी भी क्षण यह जान सकता था कि वह पृथ्वी के कौन-से भाग के ऊपर उड़ रहा है।

गागरिन के पास ही अन्य आवश्यक वस्तुएं थी, जैसे पानी, उष्णताव्यवस्थापक, रेडार तथा टेप-रिकॉर्डर। इसके अतिरिक्त उसके निकट ही रेडियो था। विद्युत-व्यवस्था, वातानुकूलित यंत्र और विद्युत घडी भी उसके दाईं ओर थी।

'गागरिन के दाएं हाथ के निकट ही एक छडी थी। जिसकी सहायता से वह अपने यान को उड़ा सकता था।' यह अपने स्थान पर बैठा-बैठा ही अपने कक्ष की विभिन्न व्यवस्थाओ में फेर-बदल कर सकता था।

'आरभ मे तो मुझे अच्छा नहीं लगा,' गागरिन ने बताया, 'लेकिन आदमी शीघ्र ही अभ्यस्त हो जाता है—मैंने अपने अंग-प्रत्यंगो में असाधारण ढंग का हल्कापन अनुभव किया।'

जिस समय गागरिन का यान 17,000 मील प्रति घंटा के वेग से चल रहा था, उस समय प्रथम यात्री ने कहा था, 'कितना बढ़िया है! मैं पृथ्वी, वन तथा बादल देख रहा हूं।'

गागरिन के यान का सचालन भूमि-स्थित संचालन केंद्र के हाथ में था वह

फेर-बदल की जा सके।

वोस्तॉक-1 के वापस लौटने के लिए भी बड़ी कारगर तयारी की गई थी। अतरिक्ष-यान की कक्षा ऐसी रखी गई थी कि यदि यान धीमी करने वाले छोटे रॉकेट किसी वजह से कार्य न करे तो भी दस दिनों के अदर यान स्वाभाविक रीति से वातावरण में उतर जाए। (इसी हिसाब से यान के अदर सभी प्रकार की सामग्री की व्यवस्था की गई थी) किंतु ऐसी स्थिति आई नहीं। अटलांटिक महासागर मे मौजूद एक सोवियत नौसैनिक जहाज से इलेक्ट्रॉनिक आदेश के अनुसार ही वोस्तोक ने कार्य किया और गागरिन सकुशल एक जुते हुए खेत के निकट उतरा। हां, उतरने से पूर्व जब उसका यान घने वातावरण से गुजरा तो काफी हद तक झुलस गया। गागरिन ने स्वय कहा था :—

'जिन लपटों ने यान को घेरा हुआ था, उनकी रोंगटे खड़े करने वाली सुर्ख परछाई मैं वातायन के शीशे में देख रहा था। पर कक्ष के अंदर उस समय भी 20 डिग्री सेंटीग्रेड ताप था जबकि यान आग का गोला बना पृथ्वी की ओर दौड़ा जा रहा था।'

बाद मे गागरिन ने बतलाया था कि उसके यान तथा साज-सामान ने बडे सतोषजनक ढग से कार्य किया था।

यूरी गागरिन की इस अभूतपूर्व सफलता पर सोवियत सूचना समिति तास ने निम्नलिखित टिप्पणी दी थी —

'गागरिन ने अत्यत महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक निष्कर्ष को निकालना सभव किया कि अंतरिक्ष मे समानव उड़ाने व्यावहारिक हैं। उसने यह दिखला दिया कि मनुष्य अतरिक्ष उडान की स्थितियों को सामान्य तरीके से सह सकता है—यान को कक्षा मे स्थापित करने के समय भी और धरती पर लौटते समय भी। इस उड़ान ने यह बतला दिया कि भारहीनता की स्थिति में मनुष्य की कार्य करने की क्षमता पूरी तरह कायम रहती है, शारीरिक चेष्टाओं में एकीकरण रहता है तथा विचार-धारा अविच्छिन्न रहती है।'

वोस्तॉक-1 की उड़ान पर अमरीकी अतरिक्ष-यात्री जॉन ग्लैन ने जो वक्तव्य दिया था उसका अंश निम्नलिखित है :—

'रूसी उपलब्धि महान् है। यह उड़ान बहुत ही सफल रही...मेरा इस विषय मे निराश होना स्वाभाविक है कि इस युग का सूत्रपात करने के लिए पहली उड़ान हमने नहीं भरी। फिर भी मर्करी अभियान का लक्ष्य अब भी यही है कि अंतरिक्ष का शांतिपूर्ण अन्वेषण किया जाए। ये आरंभिक उडानें चाहे रूसियों द्वारा की जाएं या अमरीकियो द्वारा, हमारे आगामी प्रयत्नों की दिशा काफी हद तक निर्धारित कर देंगी। इस अभियान से जो समस्याएं संबद्ध हैं, उनके समाधान के लिए निश्चय ही सबके योगदान की जरूरत है।'

पहुच गया था। यह फासला पृथ्वी से चांद तक के 2,40,000 मील के फासले को देखते हुए तो ऊट के मुह में जीरे के सामन था परतु चद्र-विजय की दिशा मे बडा सार्थक पग था। चाद पर पहुचने के लिए आदमी को अभी लगभग सभी कुछ करना शेष था किंतु कई महत्त्वपूर्ण मंजिले उसने तय कर ली थीं। इनमे से दो तो अभी तक अपराजेय ही मानी जाती थी—(1) भारहीनता की स्थिति का सफलतापूर्वक सामना और (2) वायुमंडल की आग उगलती भट्टी में से होकर सकुशल वापसी।

रूसी चुनौती तथा अमरीकी संकल्प

सोवियत सफलता के साथ ही तास सूचना समिति ने रूस के तत्कालीन प्रधानमत्री क्रुश्चॉफ की यह चुनौती प्रसारित की—

'पूजीवादी देशो को चाहिए कि मैदान मे उतरें।'

इस चुनौती का उत्तर तत्कालीन अमरीकी राष्ट्रपति जॉन एफ. कैनेडी द्वारा 25 मई, 1961 को चंद्र-विजय के संकल्प के आह्वान के रूप में दिया गया—

'यही समय है, जबकि हमे (अंतरिक्ष मे) कदम बढाने चाहिए। इस राष्ट्र के लिए अंतरिक्ष उपलब्धि की दिशा में स्पष्ट नेतृत्व के निमित्त कार्य करने का समय यही है..यह कई प्रकार से इस पृथ्वी पर हमारे भविष्य की कुजी का कार्य करेगा ।

'मेरे विचार से इस राष्ट्र को एक दशक की पूर्ति से पूर्व मानव को चाद पर उतारने तथा सुरक्षित पृथ्वी पर लौटने का कार्य पूरा करने के लिए प्रतिबद्ध हो जाना चाहिए। इस समयावधि मे अन्य कोई भी एकमात्र अतरिक्ष-अभियान मानवता के लिए इससे अधिक प्रभावकारी नहीं होगा, और न ही दीर्घ अवधि वाले अतरिक्ष-अन्वेषण के लिए इससे अधिक महत्त्वपूर्ण ही होगा—और न कोई दूसरा अभियान सिद्धि की दृष्टि से इतना कठिन और व्यय-साध्य ही होगा।'

कैनेडी ने आगे कहा था, 'हम इस नए समुद्र में अपना जलयान उतारते है, क्योंकि इससे हमें नवीन ज्ञान की प्राप्ति होगी ओर नए अधिकारों की उपलब्धि होगी, उन पर विजय पाई ही जानी चाहिए तथा उनका प्रयोग मानव मात्र की प्रगति के लिए किया जाना चाहिए।'

दूसरा अंतरिक्ष-यात्री

यह घोषणा मानो अतरिक्ष-प्रतियोगिता एव प्रतिस्पर्द्धा का श्रीगणेश थी। इस घोषणा से दस दिन पूर्व ही अमरीकी अतरिक्ष-यात्री एलेन शेपर्ड (कनिष्ठ) ने मर्करी यान के आरभिक संस्करण में लगभग 15 मिनट तक वायुमंडल की यात्रा की थी। अंतरिक्ष का स्पर्श करने वाला वह दूसरा व्यक्ति था। वह 116 मील की ऊंचाई तक गया था तथा उसके यान की गति 4,500 मील प्रति घंटा थी।

मर्करी यान (फ्रीडम 7) के उड़ने के चंद ही क्षणों बाद शेपर्ड ने सूचना दी थी, यह फ्रीडम 7 है, ईंधन ठीक है, शरीर पर वेग का दबाव 1.2 है, कक्षीय दबाव

14 हैं। ऑक्सीजन ठीक है। फ्रीडम-7 अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रहा है।'

जिस समय फ्रीडम-7 अपनी गद्दियों से उठ रहा था तो शेपर्ड की नाड़ी का स्पंदन 80 से 126 हो गया था।

शेपर्ड को एक कठिनाई और भी हुई थी। उड़ान शुरू होने के कोई 15 सेकण्ड बाद ही उसका यान जोर-जोर से हिलने लगा था जिससे शेपर्ड को कुछ कठिन क्षण बिताने पड़े थे, पर जब 'जी' शक्ति (शरीर पर वेग का आघात) 6 तक पहुंच गई तो सब कुछ स्वत. ही ठीक हो गया।

शेपर्ड ने ले-देकर 5 मिनट की अवधि में भारहीनता का अनुभव किया था। बाद मे उसने भारहीनता की स्थिति को पीड़ा रहित बतलाया था।

शेपर्ड की इस उड़ान को पूर्ण सफल कहा गया था, हालांकि 15 मिनट की इस उडान को सफल बनाने के लिए लाखों आदमियों ने वर्षो जी-तोड़ परिश्रम किया था। और फिर भी शेपर्ड 'छाइ-छूकर' ही लौट आया था—पृथ्वी की कक्षा में उसने प्रवेश नहीं किया था। वास्तव में, ज्यों ही उसे भारहीनता का अनुभव हुआ, वह वापस लौट पडा।

इसमें कोई संदेह नही कि गागरिन की उपलब्धि के आगे शेपर्ड की सफलता अपेक्षाकृत कमजोर ही कही जाएगी किंतु अमरीकी अतरिक्ष-विज्ञान को प्रोत्साहित करने के लिए यह कदम भी काफी था। राष्ट्रपति कैनेडी ने चंद्र-विजय का संकल्प इस सफलता से आश्वस्त होकर ही किया था।

पृथ्वी की कक्षा में पहुंचने वाला पहला अमरीकी जॉन ग्लेन् था। ग्लेन् ने 24 फरवरी, 1962 को मर्करी यान में बैठकर पृथ्वी के तीन चक्कर लगाए थे।

वास्तव मे यूरी गागरिन से लेकर नील आर्मस्ट्रांग तक के बीच का समय 'समानव' उडानो की दृष्टि से बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इस बीच लगभग चालीस उड़ानें की गई। मानव व मशीन के वे परीक्षण इन्हीं उड़ानों के दौरान हुए, जिनके अनुभव के बल पर अंततः चांद को जीता जा सका। एक साथ एक से अधिक यात्रियों तथा एक से अधिक यानों को उड़ाने के प्रयोग इसी अवधि में हुए। अतरिक्ष उडान में पुरुष तथा स्त्री के भेद-भाव को इसी बीच मिटाया गया। अंतरिक्ष मे तेरने के परीक्षण इसी बीच हुए। दो अतरिक्ष-यानो को एक-दूसरे के निकट लाने, मिलाने तथा जोड़ने के कठिन कार्य इसी समय मे सम्पन्न किए गए। एक यान से दूसरे यान में यात्रियों का आवागमन भी इसी मध्य हुआ। कहने का अभिप्राय यह कि समानव यानों की सफल उडानों ने बहुत अधिक सीमा तक उस मार्ग को प्रशस्त किया जिससे होकर मनुष्य आखिरकार चांद तक पहुंच सका।

शेपर्ड के पश्चात् 21 जुलाई, 1961 को इस पृथ्वी के तीसरे व्यक्ति ने अंतरिक्ष के दर्शन किए। रेडस्टोन रॉकेट पर सवार होकर मर्करी कैप्सूल (लिबर्टी बैल्) अंतरिक्ष की ओर उडा, जिसमे अमरीकी यात्री वर्गिल ग्रिसम बैठा था। शेपर्ड की तरह उसने भी एक छलांग ही लगाई और यान को स्वयं चलाकर अटलांटिक महासागर मे उतर

आया। इस अभियान मे ग्रिसम समुद्र मे डूबते-डूबते बचा था।

और अधिक अंतरिक्ष-यात्री तथा वैज्ञानिक उपलब्धियां

अमरीका के बाद शायद फिर रूस की बारी थी। 6 अगस्त, 1961 को सोवियत अतरिक्ष-यात्री हर्मन तितॉफ़ अपने वोस्तॉक-2 में पृथ्वी से रवाना हुआ। वोस्तॉक-1 की उडान के समय तितॉफ़ को गागरिन के स्थानापन्न उडाके के रूप में सुरक्षित रखा गया था।

वोस्तॉक-2 लगभग उतना ही बड़ा और भारी था जितना वोस्तॉक-1। इसका निकटतम बिंदु 111 मील की दूरी पर था और दूरतम-बिन्दु 160 मील पर। तितॉफ़ 25 घंटे से अधिक समय तक ऊपर रहा था तथा उसने पृथ्वी की 17 परिक्रमाए की थीं।

तितॉफ़ की उडान संकट-रहित सिद्ध नहीं हुई। इस यात्रा के दौरान तितॉफ़ की तबीयत खराब हो गई थी। उसे जोर की मतली होने लगी थी। उसने स्वयं बताया था कि उसे पृथ्वी की कक्षा मे प्रवेश करते हुए ऐसा लगा था जैसे उसकी टागें ऊपर की ओर फिंक गई हों और वह धुध में फस गया हो। यह प्रतिक्रिया भारहीनता की स्थिति में महसूस हुई थी। तबीयत खराब होने के कारण पर काफी खोज-बीन हुई। अंततः यही समझा गया कि तितॉफ़ की गणना ऐसे व्यक्तियों में की जानी चाहिए जिनकी तबीयत यात्रा के दौरान खराब हो जाया करती है।

20 फरवरी, 1962 को जॉन ग्लेन् ने मर्करी कक्ष-6 मे बैठकर, जिसे फ्रेंडशिप-7 का नाम दिया गया था, आकाश-चारण किया। ग्लेन् का यान तितॉफ के यान का लगभग 5वां भाग था। इसके निकटतम तथा दूरतम-बिदु वोस्तॉक-2 के ही समान थे। ग्लेन् 4 घंटे, 56 मिनट के लिए वातावरण में रहा था तथा इस बीच उसने केवल तीन चक्कर लगाए थे।

ग्लेन् की तबीयत खराब होने की कोई खबर नहीं है, लेकिन उसके यान की तबीयत खराब हो गई थी। अपनी परिक्रमाओ के बीच पृथ्वी तथा अन्य ग्रहों-उपग्रहो के बहुत से चित्र लेने के बाद जब वह वापस लौटने लगा तो उसके यान का उष्णता-कवच (जिससे लौटते समय घर्षण-ज्वाला से यान की रक्षा होती है) ढीला पड गया। उष्णता-कवच ढीला पड़ जाने से लौटते हुए यान का जलकर खाक हो जाने का खतरा था।

ग्लेन् के बाद उड़ने वाले अमरीकी अतरिक्ष-यात्री को अनेक कार्य करने थे। कार्पेण्टर को पृथ्वी के अतिरिक्त सूर्य, चद्र व सितारों का भी अध्ययन करना था, साथ ही उनका चित्र लेना भी उसके ही जिम्मे था।

कार्पेण्टर ने 24 मई, 1962 को लगभग 3,000 पौंड के अंतरिक्ष-यान 'अरोरा-7' मे बैठकर ग्लेन् की ही भांति पृथ्वी के तीन चक्कर लगाए थे। गड़बड़ी उसके यान मे भी हुई थी। पृथ्वी पर उतरने से पूर्व यान की गति को धीमी करने वाले रॉकेटों

ने कार्य ही नही किया और कार्पेण्टर को स्वय यान चलाकर नीचे उतरना पड़ा

कार्पेण्टर ने सूर्य तथा पृथ्वी के अनेक चित्र लिये। उसने सूर्यास्त की दिल खोलकर प्रशंसा की—'सूर्यास्त सबसे अधिक कौतुकपूर्ण है।' उसने बताया।

इसी बीच रूस का अंतरिक्ष-विज्ञान किसी और ही जुस्तजू में लगा था। इसका स्पष्टीकरण 11 और 12 अगस्त को मिल गया। 11 अगस्त, 1962 को सोवियत-यात्री निकोलायफ ने लगभग 10,000 पौंड वजन के वोस्तक-3 में उड़ान आरंभ की। विश्व अभी वोस्तक-3 की उडान के विषय मे अनुमान लगा ही रहा था कि 12 अगस्त, 1962 को अर्थात् अगले ही दिन उसी वजन तथा प्रकार के वोस्तक-4 में पोपोविच नामक अंतरिक्ष-यात्री ने यात्रा आरंभ की।

सोवियत संघ ने एक ही प्रकार की उडानो में नवीनता का सूत्रपात किया तथा लगभग समान कक्षाओ में दो भिन्न यानों एव यात्रियो को भेज दिया। कुछ लोगो का विचार था कि शायद दोनों यान समिलन (rendezvous) का प्रयत्न करें पर ऐसा हुआ नहीं। एक बिंदु पर निकोलायफ़ ने पोपोविच को देखा भी था किंतु कक्षाओ मे अंतर होने के कारण दोनो व्यक्ति एक-दूसरे से दूर होते चले गए थे।

निकोलायफ़ ने अतरिक्ष में 94 घंटे तथा 35 मिनट बिताए थे तथा वह अधिक से अधिक 156 मील की ऊचाई तक गया था। दूसरी ओर पोपोविच 158 मील की ऊचाई तक गया और उसने ऊपर 70 घंटे और 57 मिनट व्यतीत किए थे। इसके उपरांत रूसी लेखक पीट्रोविच ने कहा था, 'चद्र-यात्रा साठ और सत्तर के मध्य होगी।'

इस रूसी जुड़वां उड़ान से कई तथ्य हाथ आए · (1) भारहीनता की स्थिति मे अधिक समय तक रहा जा सकता है, (2) दो अंतरिक्ष-यानों का समिलन संभव है (वोस्तक-3 व 4 में लगभग 5 मील का फासला था) और (3) दुतरफा संचार-प्रणाली स्थापित की जा सकती है।

इधर 'मर्करी' के प्रति अमरीकी प्रयत्न जारी थे। 3 अक्टूबर, 1962 को वॉल्टर शिर्रा ने मर्करी के सिग्मा-7 का प्रयोग करते हुए पृथ्वी की छः परिक्रमाएं की। परिक्रमाओ के दौरान ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे सब कुछ ठीक है। स्वय शिर्रा ने भी यही कहा। उसने बडे स्वाभाविक ढग से सभी कार्य किए—विकिरण की जाच की, पृथ्वी पर एकत्र बादलो के चित्र लिये तथा यथा समय स्वयं अपने यान का सचालन भी किया। शिर्रा की उड़ान के साथ 'घटना-रहित' विशेषण लगा दिया गया था किंतु समुद्र मे उतरने के पश्चात् शिर्रा ने अस्वस्थता की शिकायत की।

शिर्रा की अस्वस्थता के विषय में डॉक्टरों की राय थी कि भारहीनता की स्थिति मे शिर्रा का रक्त पांवों में अधिक मात्रा में आ गया था। जिसके कारण उसका रक्त-चाप कम हो गया था।

मर्करी शृंखला का अतिम उड़ाका गॉर्डन कूपर था। वह 15 मई, 1963 को उडा था। वह लगभग 34 घंटों तक अतरिक्ष मे रहा था और उसने 23 चक्कर लगाए थे। उस प्रकाश-प्रणाली का परीक्षण कूपर ने ही किया था जिसकी सहायता से बाद

म दो यानो को जोडने का कठिन काय किया गया वास्तव म गार्डन कूपर ने 6 इंच व्यास का एक गोला अपने यान से बाहर निकाल दिया था, जिस पर रोशनी की व्यवस्था थी। उसका अनुसरण करके यह पता लगाना था कि यदि अन्य यान पर टिमटिमाता प्रकाश मौजूद हो, तो क्या उसे प्रकाश की सहायता से पकडा जा सकता हे ?

कूपर ने मुख्य रूप से चित्र लेने का कार्य किया था। उसके यान मे भी कुछ गडबडी पैदा हो गई थी तथा अंतरिक्ष-निवास की वातानुकूल-व्यवस्थाओ मे भी उसने किसी दोष की शिकायत की थी।

कूपर मजे में नीचे उतर आया था किंतु 1 दिन, 10 घटे और 20 मिनट मे उसका 7 पौंड वजन कम हो गया था।

जैसा कि स्पष्ट ही है कि मर्करी योजना बहुत सफल सिद्ध नहीं हुई थी तथा उसके यंत्रों ने समुचित कार्य नहीं किया था। फिर भी मर्करी अभियान ने अमरीका के लिए अतरिक्ष का द्वार खोल दिया था। मर्करी यान ले-देकर 9 फीट ऊंचा डेढ टन वज़न का यान था। यह इतना छोटा था कि इसमे एक ही आदमी बैठ सकता था। किंतु अमरीकी अतरिक्ष-यात्रियो को भारहीनता का अनुभव मर्करी यान मे उड़ान भरकर ही प्राप्त हुआ। इस अभियान का आरभ नासा के साथ ही हुआ था अक्टूबर, 1958 मे। 84 फीट ऊंचे अपोलो यान के मुकाबले में मर्करी एक खिलौना होते हुए भी चंद्र-विजय की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम था। यह तथ्य मर्करी की उडानों से ही हाथ आया था कि मनुष्य अंतरिक्ष में जीवित रह सकता है और कार्य भी कर सकता है। इस अभियान ने अंतरिक्ष-उडान की मूलभूत तकनीक को आगे बढाया।

मर्करी अभियान के विषय मे एक परिपक्व राय यह थी, 'संपूर्ण अंतरिक्ष-उड़ान-संरचना मे मर्करी के द्वारा एक श्रेष्ठ उड़ाके का अतरिक्ष-यात्री के रूप में विकास हुआ...इस अभियान के अंत तक मर्करी कक्ष मात्र यात्री के बैठने के यंत्र के स्थान पर सचमुच ही समानव अंतरिक्ष यान बन गया था।'

परंतु यह सब होते हुए भी मर्करी की अपनी सीमाए थी। मर्करी यान मे एक से अधिक यात्री नहीं बैठ सकते थे जबकि आगामी अर्थपूर्ण उडानो के लिए कम-से-कम दो यात्रियो का साथ बैठना अति आवश्यक था। फिर मर्करी त्वरित गति-विधियों मे कुशल नही था, जबकि अन्य यान से सम्मिलन के लिए गति-विधियों की कुशलता पहली शर्त थी। इसके अतिरिक्त यह भी देखा गया कि मर्करी में कुछ-न-कुछ यंत्र-संबंधी गड़बड़ी बनी ही रही। इसलिए अधिक अच्छे तथा उपयोगी यान के पक्ष मे मर्करी अभियान को कूपर की उड़ान के साथ ही समाप्त कर दिया गया।

अब मर्करी के स्थान पर 'जेमिनी अभियान' आरभ किया गया। जेमिनी यान मर्करी से दुगना भारी था तथा उसमें दो यात्रियों के बैठने के लिए स्थान था। जेमिनी ने अपनी पहली उड़ान 23 मार्च, 1965 को की थी किंतु इससे पूर्व ही रूसी फिर पहल कर गए। उन्होंने ऐसा अंतरिक्ष-यान उडा दिया जिसमे तीन यात्री बैठे हुए थे।

14 जून, 1963 को रूस के अन्तरिक्ष-अड्डे बैकनूर से वोस्तक-5 ने उड़ान भरी जिसमें वैलेरी बाइकोवस्की सवार था। उसके तीसरे ही दिन वोस्तक-6 में प्रथम महिला अंतरिक्ष यात्री वैलेन्तीना तेरेश्कोवा आकाश में पहुंच गई।

अंतरिक्ष में सम्मिलन

ये दोनों यान लगभग 3 मील के फासले तक नज़दीक आ गए थे। बाइकोवस्की तेरेश्कोवा ने सम्मिलन संदेश में कहा था :—

'हमने साथ-साथ उड़ान आरंभ कर दी है। हमारे यानों के मध्य निर्भर रहने योग्य रेडियो-संचार व्यवस्था कायम हो गई है। हम एक-दूसरे के बहुत निकट हैं। यानों में लगी सभी व्यवस्थाएं बहुत अच्छे ढंग से कार्य कर रही हैं। हम स्वस्थ हैं।'

फिर भी कोई विशेष उपलब्धि इस लगभग जुड़वां उड़ान से नहीं हुई लगती। हां, इस बात का परीक्षण अवश्य हुआ कि अंतरिक्ष में नारी की स्थिति क्या हो सकती है, क्या नारी की शारीरिक संरचना पुरुष की अपेक्षा अंतरिक्ष में अधिक निर्भर योग्य हो सकती है ? क्या अंतरिक्ष यात्रा के दुष्प्रभाव नारी-अवयवों पर अपेक्षाकृत कम होते हैं ?

ऐसी सूचना है कि तेरेश्कोवा की उड़ान के संबंध में डॉक्टरों की राय अच्छी थी। फिर भी, क्योंकि उसके बाद किसी अन्य नारी को अंतरिक्ष में नहीं भेजा गया, यही सन्देह होता है कि शायद वह स्त्री अंतरिक्ष में उतनी सफल नहीं रही, जितनी उससे आशा की जाती थी।

वह स्वयं भी आशापूर्ण थी। उसने क्यूबा की प्रेस कान्फ्रेंस में बतलाया था कि चांद पर जाने वाले अंतरिक्ष-यात्रियों की सूची में उसका भी नाम है।

बहरहाल नारी के अंतरिक्ष में भेजने की अन्य कोई उपयोगिता हो अथवा न हो किंतु भविष्य में जब अन्य ग्रहों-उपग्रहों पर बस्तियां बसने की समस्या उपस्थित होगी तो तेरेश्कोवा के अनुभव रूसियों के बड़े काम के सिद्ध होंगे क्योंकि नारी-विहीन बस्तियों की तो कल्पना ही अधूरी लगती है।

इस उड़ान में बाइकोवस्की ने 81 और तेरेश्कोवा ने 48 परिक्रमाएं की थीं। वे दोनों 19 जून, 1963 को भूमि पर उतरे थे।

और अब सोवियत संघ के लिए एक और करिश्मा कर दिखाने की बारी थी। 12 अक्टूबर, 1964 को उन्होंने वोस्खोद-1 नामक एक नवीन अंतरिक्ष यान आकाश में भेजा, जिस पर एक साथ तीन यात्री सवार थे। यात्रियों के नाम थे कोमारॉफ, फ्योक्तिस्तॉफ और येगोरॉफ।

यह यान 5 टन से भी अधिक वज़नी था। 'यह पूर्ण रूप से वातानुकूलित था तथा उसमें एक ही पंक्ति में साथ-साथ तीन बैठने के स्थान थे।'

ये लोग केवल एक ही दिन आकाश में रहे किंतु इन्होंने जानकारी बहुत काफी बटोरी। मोटे तौर पर, इन्होंने यह पता लगा लिया कि भारहीनता की स्थिति में हाथ

अधिक कार्यशील रह सकते है। इस उडान से यह बात भी सिद्ध हुई कि भावना के स्तर पर एक से अधिक यात्रियों की सामूहिक उडान ही अधिक आवश्यक ओर उपयोगी है।

वोस्खोद-2 में से बैठने का एक स्थान हटा दिया गया तथा उसके स्थान पर सुरग जैसा वायु-बध फिट कर दिया गया। यह व्यवस्था कक्ष को 'दवाब-सहित' और 'दवाब-रहित' बनाने के लिए की गई थी।

वोस्खोद-2 18 मार्च, 1965 को उड़ाया गया। उसमे केवल दो यात्री थे--लिओनॉफ़ और बेल्याएफ़। इस यान की दूसरी परिक्रमा के दौरान अचानक ही लिओनॉफ यान से बाहर निकल आया और उसने लगभग 20 मिनट तक वायुमडल के सागर मे संतरण किया। उस समय केवल अतरिक्ष-पोशाक ही लियोनॉफ़ की रक्षा कर रही थी।

अंतरिक्ष-सैर

अतरिक्ष मे 'चलने' के सफल परीक्षण द्वारा यह तथ्य बड़े मजे में स्थापित हो गया कि वायु-रहित चांद पर भी आदमी अपने पैरो से चल सकता है। किंतु कुछ भी हो, अतरिक्ष में यान से बाहर निकलकर घूमना एक अभूतपूर्व घटना थी। यह बात कम-से-कम उस समय तो कल्पनातीत ही प्रतीत होती थी कि कोई व्यक्ति स्वयं को ही उपग्रह बनाकर पृथ्वी की कक्षा में घुमाए।

इस सैर का वर्णन रूसी यात्री लिओनॉफ़ ने इस तरह किया, 'ज्योंही मैं (यान से) बाहर निकला, मुझे लगा जैसे झटका खाता हुआ यान विपरीत दिशा की ओर जा रहा है।...जिस रस्सी ने मुझे यान से जोडा हुआ था, वह पूरी तरह खिंच गई तथा यान से दूर जाने की मेरी क्रिया रुक गई। अंतरिक्ष मे तैरना पानी मे तैरने के असमान होता है।...अंतरिक्ष मे इच्छानुसार तैरा जा सकता है जैसे कि मैंने अपने हाथ-पाव फैला दिए और तैरने लगा। यह अधिक सुविधाजनक था। वहां तो तैरने के लिए स्थान-ही-स्थान है।. .मैने रस्सी जरा-सी अपनी ओर खींची तथा धीरे-धीरे अतरिक्ष-यान की ओर बढने लगा। उसके निकट पहुंचकर मेने अपने आपको फिर पीछे की ओर ढकेला और तब क्रमशः फिर यान से दूर जाने लगा।...मैंने ब्रह्माड को उसकी संपूर्ण श्रेष्ठता में देखा था।.. मैने अपने समक्ष भूमि के बहुत बड़े-बड़े टुकडे तैरते देखे थे--हरियाली भरे टुकड़े।...लगा जैसे मैं एक विशाल नक्शे के ऊपर तैर रहा हूं।'

वोस्खोद-2 ने भूमि के 17 चक्कर काटे थे किंतु उतरते समय उसके स्वचालन-सयंत्रो ने जवाब दे दिया था तथा इन दोनों अंतरिक्ष-यात्रियों को अपना यान स्वय चलाकर उतरना पड़ा था।

इधर अमरीका का जेमिनी-3 यान 23 मार्च, 1965 को उड़ाया गया। यह दो यात्रियो वाला यान था, जिसमें ग्रिसम और यंग ने यात्रा की। कहना न होगा कि

जेमिनी 3 की उडान से पूर्व परीक्षण क रूप मे दो अमानव जमिनी यान उडाए जा चुके थे।

ग्रिसम और यंग ने पृथ्वी की केवल तीन परिक्रमाए की थी। यह यान 'टाइटन' नामक प्रक्षेपक की सहायता से ऊपर भेजा गया था। इस उड़ान के दोरान एक सगणक-यंत्र का परीक्षण किया गया था जो पृथ्वी पर लौटने के मार्ग की गणना मे सहायक सिद्ध हो सकता था। जेमिनी-3 के यात्रियो ने अपने यान को एक कक्षा से हटाकर दूसरी कक्षा में भी स्थापित किया।

लेकिन जेमिनी-4 अपेक्षाकृत और भी अधिक सफल हुआ। 3 जून, 1965 को उडने वाले इस यान ने 62 चक्कर लगाए। इसके दो यात्रियो मैक्डेविट और व्हाइट ने 20 मिनट तक अतरिक्ष में तैरने का अभ्यास किया। व्हाइट 25 फीट लंबे एक बधन-सूत्र के द्वारा अपने यान से सबद्ध था। अतरिक्ष में तैरने के दौरान उसने गति-विधि से संबंधित एक बंदूक का भी परीक्षण किया।

किंतु अपने यान मे लौटते समय व्हाइट को काफी कठिनाई हुई—इतनी अधिक कि वह सर से पांव तक पसीने मे नहा गया।

जेमिनी अभियान में जेमिनी-5 को बडी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए तैयार किया गया था। इसकी उड़ान 21 अगस्त, 1965 को आरंभ हुई। इसके यात्री कूपर और कॉन्राड थे। इन दोनो को अनेक परीक्षण करने थे, जिसमें दो यानों की समिलन-सामग्री का परीक्षण भी शामिल था। उडान के समय शरीर में कितनी थकावट होती है, इसकी नाप-तोल करनी थी तथा 'पृथ्वी, सितारो और बादलों के चित्र' लेने थे। उन बहुत से परीक्षणो में ब्राह्म-बेला के धुधले प्रकाश की जाच-परख भी शामिल थी।

पर यान को विद्युत-शक्ति प्रदान करने वाले ईधन-कणों में खराबी आ जाने के कारण वे सभी परीक्षण पूरे नहीं किए जा सके। फिर भी कक्षा मे परिवर्तन किया गया, चित्र लिये गए तथा एक काल्पनिक लक्ष्य की स्थापना करके संमिलन का प्रयत्न किया गया।

पृथ्वी पर उतरने से पूर्व दोनो यात्रियों ने अतरिक्ष में पूरे आठ दिन बिताकर यह भी सिद्ध किया कि मनुष्य का चाद की यात्रा पर जाना तथा लौट आना सभव है। यहां यह स्मरणीय है कि चाद की यात्रा करने के लिए कम-से-कम आठ दिन अवश्य चाहिए।

जेमिनी-6 को 25 अक्टूबर, 1965 को उड़ाना था किंतु वह उड़ान हुई नही। असल में संमिलन के लिए जिस 'एजिना' रॉकेट का अनुसरण उनको अतरिक्ष मे करना था, वह अपनी कक्षा में पहुचने से पूर्व ही कट गया। इसलिए जेमिनी-6 के यात्रियो शिर्रा स्टैफोर्ड को 15 दिसंबर, 1965 को उड़ना पडा—वास्तव में उन्होंने 12 दिसबर को उडने की चेष्टा की थी किंतु उनके प्रक्षेपक 'टाइटन' के मोटर चालू होते ही बद हो गए तथा उनकी उडान में और देर लगी। पर इनमें बहुत पहले अर्थात्

4 दिसंबर 1965 को जमिनी 7 उडान भर चुका था इस यान मे फ्रेंक बार्मेन और जेम्स लॉवेल मौजूद थे।

पृथ्वी की कक्षा में परीक्षण

अब जेमिनी-7 लक्ष्य था और जेमिनी-6 उसका अनुसरणकर्ता। अत: जेमिनी-6 ने अपनी कक्षा को थोडा ठीक किया और फिर 'रेडार' तथा अन्य लघु गणक-यंत्रों की सहायता से जेमिनी-6 जेमिनी-7 के निकट आया। अतत: ये दोनो यान एक-दूसरे के इतने करीब आ गए कि उनमें मुश्किल से 6 फीट की दूरी रह गई। निकटता की इस स्थिति मे दोनो यान 2 घंटे तक एक साथ उडते रहे।

जिस समय ये दोनो यान एक साथ उड रहे थे तो उनके अतरिक्ष-यात्रियों के बीच हुई बातचीत का एक नमूना यहां उद्धृत है। भूमि-सचालन केंद्र ह्यूस्टन मे उनकी आवाज साफ सुनाई पड रही थीं —

'वाली, तुम्हें फ्रैंक की दाढ़ी दीख पड रही है ?' जिम लॉवेल ने पूछा।

'इस समय मैं तुम्हे अधिक अच्छी तरह देख रहा हूं।' शिर्रा बोला, 'जिम ऐसा प्रतीत होता है जैसे तुमने अपना चेहरा अभी साफ किया हो—किया है क्या ?'

'हां।'

इस सफलता के बाद जेमिनी-6 ने तो पृथ्वी की ओर पंख फैला दिए किंतु जेमिनी-7 की परिक्रमाएं यथावत् जारी रहीं। यह यान 206 चक्कर लगाने के उपरान्त 18 दिसंबर को वापस लौटा।

यह सम्मिलित उडान चंद्र-यात्रा की दृष्टि से बड़े महत्त्व की थी क्योंकि इसमें मनुष्य और मशीन की और अधिक जाच की गई। और यह पाया गया कि दोनो ही इस दिशा में आगे बढने में समर्थ हैं।

इसके बाद 16 मार्च, 1966 को आर्म स्ट्रांग और स्कॉट ने जेमिनी-8 मे अतरिक्ष-यात्रा की। इस यात्रा मे एजिना रॉकेट को, जो कि जेमिनी-8 का लक्ष्य था, ढूढ लिया गया तथा अपने यान की नाक को रॉकेट की दुम से जोड भी दिया गया। किंतु जुड जाने के बाद एक नई ही समस्या खड़ी हो गई । जेमिनी पर लगे एक 'जेट' के काम न करने के कारण संबद्ध जेमिनी-8 और एजिमा रॉकेट दोनों ही जोर-जोर से चक्कर खाने लगे।

'हम तो यहा बड़ी जबरदस्त मुसीबत मे फंस गए हैं। हम लोग फिरकी की तरह घूम रहे हैं।' आर्म स्ट्रांग ने सूचना दी। फिर भी इस कठिन स्थिति में धैर्यशाली आर्म स्ट्रांग ने न केवल यान को रॉकेट से अलग कर लिया बल्कि वह जेमिनी-8 को सुरक्षित समुद्र में उतारने में सफल हो गया।

3 जून, 1966 को स्टैफोर्ड ने फिर उड़ान की। इस बार उसका साथी सर्नन था और यान था जेमिनी-9। इस यान के द्वारा पृथ्वी की 45 परिक्रमाएं की गई। इस यान से संबद्ध करने के लिए जिस ऐजिना लक्ष्य को 18 मई, 1966 को छोड़ा

गया था वह अपने कक्षा मे नही पहुंच सका। वास्तव में, ऐसा एटलस प्रक्षेपक के ठीक कार्य न करने के कारण हुआ। इसलिए 1 जून को दूसरा एजिना रॉकेट छोड़ा गया। जेमिनी-9 तीन चक्करों के बाद अपने लक्ष्य को पकड़ पाया लेकिन उनका गठबंधन (link-up) संभव न हो सका। इसका कारण यह बताया जाता है कि 'डॉकिंग-कॉलर' अनुकूल स्थिति में नहीं था। अतः यान और रॉकेट दो बार एक-दूसरे के निकट आकर भी असबद्ध ही रहे।

इस यात्रा के दौरान सर्नन ने दो घटे तक अंतरिक्ष में चहलकदमी भी की किंतु घोर परिश्रम के कारण उसके चेहरे के पारदर्शक कवच के आगे धुधलका-सा छा गया जिसके कारण उसे अपने कक्ष में वापस आना पड़ा। इसी वजह से अंतरिक्ष मे गतिविधि सबधी अनेक परीक्षणों का विचार त्याग देना पड़ा।

जेमिनी-10 की उडान 18 जुलाई, 1966 के आरभ मे हुई। जॉन यग और माइकल कॉलिन्स इसी यान मे थे। इस यान का अपने लक्ष्य एजिना रॉकेट से न केवल मिलन हुआ, बल्कि गठबधन भी हुआ। इसके बाद संबद्ध रूप मे उन्होंने 475 मील की ऊंचाई पर पृथ्वी की कक्षा मे उडान की। उस समय वे वॉन एलन विकिरण-पेटी के नीचे उड़ रहे थे।

इस उडान के समय कॉलिन्स ने दो बार अतरिक्ष की सैर की। दूसरी बार की सैर के समय तो वह रॉकेट के बराबर मे पहुच गया और वहा से उन यत्रों का थैला ले आया जिन्हें 'नक्षत्र-धूल के नमूने एकत्र करने के लिए प्रयुक्त किया गया था।'

इस उडान मे लगभग तीन दिन व्यतीत किए गए थे।

जेमिनी-11 की उडान की बारी 12 सितंबर, 1966 को आई। इस यान पर कॉन्राड और गॉर्डन सवार थे। इस यान का अपने लक्ष्य से चार बार मिलन हुआ। उनका पहला ही मिलन निश्चित योजना के अनुसार हो गया। उडान के दूसरे दिन गॉर्डन ने बाहर अंतरिक्ष में निकलकर रस्सी के द्वारा उन दोनों का गठबंधन कर दिया। गठबंधन के बाद कॉन्राड ने दोनो ग्रथित यानो को हल्के-हल्के घुमाकर कृत्रिम गुरुत्वाकर्षण उत्पन्न करने की चेष्टा की। इस परीक्षण के द्वारा यह सिद्ध हो गया कि यदि दो यान रस्सी से सबद्ध हों तो उन्हें बिना कोई उलट-फेर किए समान स्थिति मे उड़ाया जा सकता है।

जेमिनी-11 के भी लगभग 3 दिन ऊपर व्यतीत हुए। इस उडान में अतरिक्ष-यात्री 850 मील की उंचाई तक पहुंच गए थे।

जेमिनी-शृंखला की अंतिम उडान 11 नवम्बर, 1966 को जेमिनी-12 में लॉवेल और एल्ड्रिन द्वारा की गई। इस उड़ान मे एल्ड्रिन ने तीन बार अंतरिक्ष में सैरी लगाई और शिथिलता, थकान तथा पसीने की समस्याओं के हल प्रदर्शित किए। इस जोडी ने पूर्ण सूर्य-ग्रहण की तस्वीर भी उपलब्ध की

इस प्रकार 59 चक्कर लगाकर ये दोनों [illegible] 15 नवम्बर, 1966 को

समुद्र मे उतरे।

वास्तव में, जेमिनी-अभियान को मर्करी और अपोलो के बीच की कड़ी समझना चाहिए। यह अभियान अप्रैल, 1964 से आरंभ होकर नवम्बर, 1966 तक चला जिसमें कुल मिलाकर 12 उड़ानें की गई।

जेमिनी कक्ष लगभग साढ़े ग्यारह फीट ऊंचा था। उसका वजन 3 टन से अधिक था। यह यान अतरिक्ष में सरलता से घुमाया-फिराया जा सकता था इसीलिए इसके द्वारा 10 बार समिलन और 9 बार गठबंधन का अभ्यास किया जा सका। यह तथ्य इसी अभियान के अंतर्गत हाथ आया कि मनुष्य न केवल अपने यान से बाहर निकल सकता है बल्कि बाहर निकलकर कार्य भी कर सकता है तथा उसके कार्य में भारहीनता की स्थिति कोई बाधा नहीं है।

जेमिनी की सफलता से यह स्वीकार कर लेने मे कोई कठिनाई नहीं है कि अमरीकी अंतरिक्ष-विज्ञान ने पृथ्वी की कक्षा मे अपना कार्य सम्पन्न कर लिया था—अब चद्रमा की कक्षा की बारी थी।

7. प्रज्वलित पूंछों वाले चंद्र-पक्षी

चद्र-विजय के आयोजन पर विचार करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि इस युद्ध को एक मोर्चे पर लडना किसी भी स्थिति मे पर्याप्त नहीं था। मानव-निर्मित भू-उपग्रह बडे शान से अतरिक्ष में चहल-कदमी कर रहे थे। इनमे अमानव तथा समानव—दोनो प्रकार के यान शामिल थे। भू-भौतिक वर्ष की दृष्टि से शायद यह काफी भी था, क्योंकि यह वर्प इसी उद्देश्य से मनाया जा रहा था कि अपनी पृथ्वी की और अधिक जानकारी प्राप्त की जाए। इसी जानकारी की प्राप्ति के लिए भू-उपग्रह उडाने की आवश्यकता प्रतीत हुई थी। वास्तव में, पृथ्वी पर बैठकर पृथ्वी के विषय मे पूरी जानकारी प्राप्त नहीं की जा सकती। कम-से-कम विहगम दृष्टि के लिए ही अतरिक्ष मे जाना जरूरी था। किंतु भू-उपग्रह-आयोजन की सफलता ने मानव की इच्छा को एक नवीन उछाल दी थी तथा उसके मन मे यह लालसा जागी थी कि वह अपने निकटतम पडोसी चांद तक तो पहुंच जाए। अब कठिनाई यह थी कि भूमि के चारों ओर की जाने वाली उडानें चंद्रमा के विषय में आवश्यक ज्ञान उपलब्ध कराने मे सर्वथा असमर्थ थी और बिना उक्त अमूल्य ज्ञान के आगे बढना सभव नही था।

यों अदरूनी अतरिक्ष का पता मनुष्य को चल गया था। अतरिक्ष मे उपस्थित खतरों को भी उसने समझ लिया था और उनके विरुद्ध यथासभव कारगर कार्यवाही कर ली थी। पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण को भी उसने भेद दिया था पर चद्रमा के भेद अभी उससे छुपे हुए थे। पृथ्वी से चंद्रमा की दूरी उसे इंचो में ज्ञात थी। चद्रमा का व्यास, उसका अणु-समूह, उसका घनत्व, उसका गुरुत्वाकर्षण तथा तापमान आदि मनुष्य की पकड़ से परे नही थे। फिर भी चांद पर पहुंचने के लिए अनेक प्रश्न-चिह्न उसके समक्ष खडे थे क्या अंतरिक्ष यान को सकुशल चाद तक पहुंचाया जा सकता है ? क्या उसे ऐसे ढग से, चंद्रतल पर उतारा जा सकता है कि वह क्षतिग्रस्त न हो ? क्या चांद की भूमि ऐसी है कि अतरिक्ष-यान को सभाल सकें ? क्या चद्रमा के सख्त 'जल-वायु' मे (चंद्र-तल पर जल और वायु—दोनों का ही अभाव है) मनुष्य और मशीन समुचित रूप से कार्य कर सकेंगे ? क्या पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के छठे

हुआ यान वापस उडाया जा सकेगा ?——आदि-आदि !

इन सब तथा अनेक अन्य अनबूझ पहेलियों को समझने के लिए रूस और अमरीका ने अपने यांत्रिक हाथ चाद तक फैलाने की चेष्टा की। इस चेष्टा मे दूर-अवेर दोनों ही देशों को सफलता मिली। इनके ये यांत्रिक हाथ चाद तक पहुंच रहे थे। बल्कि यो कहना चाहिए कि इन लंबे हाथों का एक सिलसिला बाकायदा चला हुआ था।

चाद को यांत्रिक हाथो से टटोलने की दिशा मे 31 जुलाई, 1961 का दिन बडे महत्त्व का है । इस दिन अमरीकी अमानव चद्र-यान 'रेंजर-7' चंद्रमा की ओर बढा जा रहा था। इससे पूर्व अमरीका के नो चद्र-प्रयत्न असफल हो चुके थे।

वह चंद्र-यान चद्र-तल से चंद सैकडा मील की दूरी पर था कि तभी चद्र-भूमि के टेलीविज़न चित्र पृथ्वी पर प्राप्त होने शुरू हो गए तथा लगभग 17 मिनट तक होते रहे। इस दौरान निकटता से लिये गए चाद की धरती के लगभग 4,000 चित्र प्राप्त हुए।

यह ठीक है कि रेन्जर-7 'ज्ञान-सागर' में पृथ्वीतल से टकराकर चूर-चूर हो गया पर अमरीकी चंद्र-विज्ञान के लिए नए क्षितिज खोल गया। इसके द्वारा भेज गए चित्रो से भले ही चद्र सबधी मूल समस्याओं का समाधान न मिला हो किंतु चद्र-तल के विषय मे नवीन जानकारी इन चित्रों से अवश्य मिली।

यह भी पता चल गया कि चाद की भूमि पर साधारणतया कितने प्रकार के गड्ढे है,, जिनको सुविधा के लिए ज्वालामुखी कहना ही अधिक सगत होगा।

अगला यान रेंजर-8 18 फरवरी, 1965 को छोडा गया। इससे पूर्व एक रूसी चंद्र-यान 9 मई, 1965 को छोडा जा चुका था जो 'अंधड-सागर' मे गिर गया था। रेंजर-8 'शांत-सागर' की ओर जा रहा था। इस यान पर रेंजर-7 के कैमरों से अधिक श्रेष्ठ टेलीविज़न कैमरे लगे हुए थे। इसके द्वारा शांत-सागर नामक भाग के 7,000 से भी अधिक चित्र प्राप्त हुए। इसके चित्रों से उन ज्वालामुखियों का भी आभास मिला जो बनते और बिगडते रहते है। इनका हेतु उल्कापातों को ही माना गया।

किंतु रेंजर-7 के द्वारा भेजे गए चित्रों के अनुसार ही रेंजर-8 से उपलब्ध चित्रो ने भी बुनियादी समस्याओं को सुलझाया नहीं।

चद्रमा की सतह पर 'एल्फोन्सस' नामक विवर एक जमाने मे वैज्ञानिकों की रुचि का केंद्र रहा है। यह 75 मील चोडा विवर है, तथा जो विकृतियां चांद की सतह पर पाई जाती हैं, उन सभी के नमूने यहां मिल जाते है। इसलिए रेंजर-9 को इसी विवर का पर्दाफ़ाश करने के लिए रवाना किया गया। इस यान ने लगभग 6,000 चित्र उक्त स्थल के भेजे तथा उस स्थान के ज्ञान मे निश्चय ही समुचित वृद्धि हुई।

इधर रूसी चंद्र-विज्ञान ने भी अपने प्रयत्न जारी रखे : 8 जून, 1965 को रूसी ल्यूनिक-6 रवाना किया गया किंतु वह चांद की भूमि से लगभग एक लाख मील

चकनाचूर हो गया। जानकार लोगों का कथन है कि दिसम्बर, 1965 में भेजे गए ल्यूनिक-8 की भी वही गति हुई।

हा, 31 जनवरी, 1966 को बेकनूर के अंतरिक्ष अड्डे से उड़ाया गया लूना-1 आहिस्ता से चाद की भूमि पर उतर गया। लूना-1 डेढ़ टन का एक गोला था जिसकी गति अंतिम क्षणों में मात्र 10 मील प्रति घंटा रह गई थी। उतरने के चंद मिनट बाद तक वह चुप रहा तथा फिर उसने सूचनाएं भेजनी आरंभ कर दीं। उसके आठ घंटे बाद ही टेलीविज़न चित्र प्राप्त होने शुरू हो गए। ये चित्र अत्यन्त उच्च कोटि के थे तथा चांद के धरातल और धूल के विषय में निर्भर करने योग्य मसाला दे रहे थे।

लूना-1 लगभग 50 फीट व्यास के एक छोटे से विवर में उतरा था। वह लगातार तीन दिन तक चित्र भेजता रहा था और उसका कैमरा घुमावदार होने के कारण अपने चारों ओर के चित्र भेज रहा था।

रूसी विज्ञान अकादमी के सदस्य वारा वर्शॉफ ने कहा था कि, 'चित्रों ने यह निर्विवाद रूप से सिद्ध कर दिया है कि चंद्र-तल की ऊपरी तह स्पंज जैसी है।'

प्रो. लेबेडिन्स्की ने यह सूचना दी थी कि 'लूना-1 सतह में किसी विशेष गहराई तक नहीं उतरा था।'

लूना-1 की सफलता के बाद ही रूसी अंतरिक्ष-यात्री तितॉफ़ ने चांद पर पहुंचने के लिए चंद सूत्रों का रहस्योद्घाटन किया था —

'भविष्य में चंद्रमा पर उतरने के सोपानों में से एक चंद्रमा की परिक्रमा है।

'इसे निकट से देखना आवश्यक है ताकि वैज्ञानिक सूचना एकत्र की जा सके तथा प्रथम चंद्र-यान को उतारने के लिए स्थान का चुनाव हो। संक्षेप में हमारी 'निशीथ-सुषमा' पर विजय पाना कोई सरल कार्य नहीं है। इस दिशा में पड़ने वाली बाधाओं में से एक तो पृथ्वी की विकिरण-पेटियां हैं।

'लेकिन मुख्य समस्या मनुष्य की पृथ्वी पर वापसी है। इस क्षेत्र में कई सैद्धांतिक समाधान प्रस्तुत किए जाते हैं। जब तक अंतरिक्ष-यात्री के वापस आने की कोई निर्भर योग्य व्यवस्था विकसित नहीं की जाती, तब तक चांद की यात्रा करने की बात गंभीरतापूर्वक नहीं की जा सकती. .।'

लगता है, अंततः ये ही गुर अमरीकी सफलता के आधार स्तंभ सिद्ध हुए।

चंद्र-यानों द्वारा प्राप्त जानकारी

31 मार्च, 1966 में रूस ने उस आयोजन का सूत्रपात किया जिसका संकेत तितॉफ़ ने दिया था, लूना-10 चांद पर उतरने के बजाय 3 अप्रैल, 1966 को चांद की कक्षा में चला गया तथा चांद के चक्कर लगाने लगा।

लूना 10 के विषय में 'तास' ने निम्नलिखित घोषणा की थी 'लूना-10 के

चालित स्टेशन के चंद्र-कक्ष के सन्निकट जाते ही उपग्रह इंजन-सुविधाओं से अलग हो जाता है तथा वैज्ञानिक अन्वेषण आरभ कर देता है।

'उडान के चक्राकार मार्ग पर चद्रमा की ओर जाने के बाद स्टेशन का वज़न 1,600 किलोग्राम था।'

लूना-10 की उडान के 12 दिन बाद सोवियत विज्ञान अकादमी के प्रधान ने यान द्वारा किए गए अन्वेषणों के प्रारभिक परिणामों की घोषणा की :—

'(1) चाद के निकट विकिरण की तहें अंतरिक्ष-यानों के लिए रुकावट नही होगी।

'(2) हालाकि लूना-10 की कक्षा निरतर यत्किंचित् बदलती रही, जिसका कारण चाद के गुरुत्वाकर्षण का खिचाव है, फिर भी गुरुत्वाकर्षण मे 'ज्यादा भिन्नताएं नही है'।

'(3) चद्र-कक्षा में परिक्रमा करते समय 5 घंटे 6 मिनट में अंतरिक्ष-धूलि के कण 65 बार यान से टकराए। यद्यपि वहा की यात्रा मे यह सौ गुनी वृद्धि है, तो भी समानव-उडान के लिए यह कोई खतरा नही है।

'(4) चांद का चुबकीय क्षेत्र बहुत दुर्बल है और विकिरण-पेटी बहुत पतली है परंतु पकडा गया विकिरण का घनत्व पृथ्वी के चारो ओर के विकिरण के घनत्व से एक लाख गुना कम है। इसके अतिरिक्त विकिरण सभी स्थलों पर समान नही है।'

लूना-10 के बाद लूना-11 तथा लूना-12 ने चद्रमा की परिक्रमाएं की। 29 अगस्त, 1966 को तास ने घोषणा की :—

'समानव उडान की दिशा में एक और कदम लूना-11 चद्र-कक्ष मे।'

लूना-11 की उड़ान को ले-देकर दो महीने ही गुज़रे थे कि लूना-12 भी वहा जा पहुचा। लूना-12 की उडान के बाद 1 नवम्बर, 1966 को नोवोस्ती प्रेस समिति ने घोषणा की :—

'स्वचालित स्टेशन लूना-12 ने लगभग 60 मील की ऊचाई से चंद्र-धरातल के विभागों के चित्र लिये। प्रकाशित चित्रों मे अपेक्षाकृत चपटा क्षेत्र जिसे 'वर्षा-सागर' के नाम से जाना जाता है, दिखाया गया है। प्रत्येक चित्र में लगभग 19 वर्ग मील का इलाका प्रदर्शित है। इन चित्रों में जो लघुतम ब्योरे दिखाई पड़ते है, वे पृथ्वी से लिये गए चित्रो के ब्योरो से सैकड़ो गुना छोटे है।'

इधर अमरीका चंद्र-सर्वेक्षण के लिए एक नए ही प्रयत्न मे लगा हुआ था, जिसे 'सर्वेयर'—(सर्वेक्षक) शृखला कहना उचित होगा। यह शृखला मई 1966 में आरभ की गई। उसका उद्देश्य अपोलो-अभियान का मार्ग प्रशस्त करना था। वास्तव मे, देखना यह था कि अपोलो-यान को चांद की सतह पर उतारने के लिए उचित स्थलों की खोज के निमित्त बिना झटके के मानव-रहित यान कैसे उतारा जाए साथ ही यह भी लक्ष्य था कि चद्रमा के विषय में और अधिक जानकारी कैसे

इस ध्येय को समक्ष रखकर 10 फीट ऊंचाई वाले सात अंतरिक्ष यान केप कैनेडी से छोडे गए। इन यानों में मुख्य प्रक्षेपकों के अतिरिक्त कुछ सहायक रॉकेट भी लगाए गए थे जो चद्रमा पर उतरते समय यान की गति धीमी कर सकें।

सर्वेयर-1 ने 30 मई, 1966 को अपने गतव्य के लिए प्रस्थान किया। यह यान चंद्रमा की भूमध्य रेखा के दक्षिण में एक 'सागर' में आराम से उतरकर बस गया। तीन टांगों वाला यह यान ऐसे आराम से उतरा था जैसे कोई छतरी द्वारा पृथ्वी पर उतरे। (चद्रमा पर उतरने के लिए छतरियों का प्रयोग असभव है, क्योंकि वहा वायु नही है)।

2,200 पौंड वजन के इस यान की गति 5,840 मील प्रति घंटा से घटाकर 10 मील प्रति घंटा से भी कम कर दी गई थी। क्योंकि गति-व्यवधान के लिए आवश्यक वातावरण का चद्रमा पर अभाव है इसलिए यान में ऐसे रॉकेटों का प्रयोग किया गया जो गति कम करते हैं।

सर्वेयर-1 का गति घटाने वाला मुख्य रॉकेट अपने तीन सहयोगियों के सहित तभी चालू कर दिया गया था जब यान चंद्र तल से 50 मील की दूरी पर था। मुख्य रॉकेट जलकर अलग हो गया और तब तीनों छोटे रॉकेट ही गति कम करने की क्रिया करते रहे। जब यान चंद्र-तल से केवल 13 फीट की दूरी पर रह गया तो वे तीनों रॉकेट रुक गए तथा यान मे गतिहीनता आ गई। पृथ्वी पर टिकने में यान को आघात पहुंचने का खतरा था, जिससे बचाव के लिए आघात-अवरोधक-गद्दिया यान के तीनो पावों मे लगाई हुई थी। असल मे जिस स्थान पर सर्वेयर-1 उतरा, वहा की ज़मीन टिकाऊ थी तथा यान के पाव सामान्यतः मिट्टी में नहीं धंसे थे। यह स्थान उसके उतरने के निश्चित स्थान से 9 मील के फासले पर था तथा उतरने मे इसने ऐसा ही झटका खाया था जैसे कोई बच्चा स्टूल से कूद पड़े। उतरने के बाद एक महीने के दौरान में यान ने लगभग 11,000 टेलीविजन चित्र भेजे।

चंद्र-भूमि का चंद्र-यानो द्वारा सर्वेक्षण

इन चित्रों में यान के चारो ओर की भूमि के साथ उसके अपने पावों का भी प्रदर्शन था जिससे पता चलता था कि सर्वेयर के पाव एक-दो इंच से अधिक भूमि में नहीं धसे थे। इन चित्रों से यह भी पता चला कि वहां की मिट्टी चट्टान के बहुत बारीक कणो का समुच्चय है, राख जैसी वस्तु नहीं है जिसके कारण वहा का धरातल पोला होता। चद्र-धूल संभवतः उन उल्कापातों की कार-गुजारी है जिन्होंने न केवल वहां की भूमि को लगातार पीटा ही नहीं है, बल्कि चट्टानों को कूट-कूटकर उनका सुरमा बना दिया है।

सर्वेयर-1 पर लगे यंत्रों के द्वारा धूल उड़ने की सूचना भी नहीं मिली थी। इससे भी चाद की भूमि का ठोसपन प्रकट होता था यह ठीक है कि चंद्र-तल पाउडरनुमा

सर्वेयर-1 के कैमरे ने 3 मील के क्षेत्र का चित्रण किया था। इस यान क एक पाव पर एक तीन इंच का वर्ण-चक्र लगाया गया था। इसी वर्ण-चक्र की सहायता से यह ज्ञात हुआ कि चाद की भूमि का वर्ण कही-कही परिवर्तन लिये गहरा भूरा है।

ये चित्र रेंजर यानो द्वारा लिये गए चित्रों से हजार गुना श्रेष्ठ थे।

सर्वेयर-2 सफल नही हुआ परंतु सर्वेयर-3 ने बड़ा महत्त्वपूण कार्य किया। इसमे एक स्वचालित फावडा लगा हुआ था जिसको पाच फीट लम्बी एक भुजा ने थामा हुआ था। उसमे एक छोटा-सा अलम्यूनियम का करछुल था जो कि मिट्टी ऊपर उठा सकता था। उस करछुल के द्वारा चाद की मिट्टी उठाई गई और उसके चित्र पृथ्वी पर प्राप्त किए गए। चांद की चट्टानों के छोटे-छोटे टुकडे भी उसने उठाए तथा छोटे-छोटे गड्ढे खोदे ताकि यह जाचा जा सके कि वहां की मिट्टी मे कितनी जान है।

सर्वेयर-4 को भी असफलता का मुंह देखना पडा। वह ज्यो ही चांद के निकट पहुचा, उसकी सचार व्यवस्था बिगड गई और उसका रेडियो सपर्क जाता रहा।

हां, सर्वेयर-5 का योगदान प्रशंसनीय रहा। एक समय तो इसमे खराबी आ जाने के कारण इसके चांद से टकराने की आशंका उत्पन्न हो गई थी। पर तो अन्तिम क्षणो मे संचालन-केंद्र से निर्देश के द्वारा यह सर्वेयर 'शात-सागर' के एक गर्त की एक दीवार पर टिक गया। इस यान पर 'अल्फा स्कटरर' नामक एक यंत्र लगा हुआ था जिसकी सहायता से धरातल के ऊपरी तह का रासायनिक विश्लेषण इस यान द्वारा उपलब्ध कराया गया। यह जानकारी इस विश्लेषण के द्वारा ही प्राप्त हुई कि वहा कि चट्टान का निर्माण ज्वालामुखी के विस्फोट का परिणाम है। इस दृष्टि से शात-सागर की चट्टाने पृथ्वी पर मिलने वाली चट्टानों जैसी ही है (यह तथ्य अपोलो-11 द्वारा लाए गए चद्र-चट्टानो के नमूनों के परीक्षण के बाद सही नही सिद्ध हुआ)।

अमरीका ने कुल मिलाकर सात सर्वेयर यान चाद की टोह मे भेजे। प्रथम छह यान उन स्थानो को लक्ष्य करके भेजे गए जहां आगामी समय में अपोलो यानो द्वारा चंद्र-यात्रियों को उतारना था। ये सभी स्थान अपेक्षाकृत समतल पाए गए। इसीलिए सर्वेयर-7 को 'टाइको' नामक ज्वालामुखी पर भेजा गया, जिसका व्यास 50 मील से अधिक बताया जाता है।

सर्वेयर-7 ने 21,000 चित्र पृथ्वी पर भेजे। उस स्थान के रासायनिक विश्लेषण ने यह प्रकट किया कि अन्य समतल स्थलों तथा उस ऊचाई की सतही रचना मे अतर है।

कुछ भी हो, सर्वेयर-शृंखला ने अमरीकी अंतरिक्ष-विज्ञान को वे आंखें दीं, जिनसे देखकर अपोलो-11 को अंततः चद्र-तल पर उतारा जा सका।

सर्वेयर-यानों ने वैज्ञानिकों के कुछ प्रारंभिक प्रश्नों के ही उत्तर देने की चेष्टा की जैसे कि क्या चंद्रमा पर भूचाल आते हैं ? (अब यह निश्चित रूप से जाना

नहीं था कि ऊपरी तह के नीचे चंद्र-भूमि की मिट्टी कैसी है ? फिर पानी अथवा बर्फ एक और ही रहस्य रहा है। क्या चांद पर पानी है ? पानी बर्फ के रूप में हो ? संभव ही उस शक्ल में न हो, जिस शक्ल में पृथ्वी पर है। किंतु सर्वेयर-यानों ने पानी की उपस्थिति-अनुपस्थिति के विषय में कोई पते की बात नहीं की।

फिर भी चांद के धरातल तथा परिवेश का अध्ययन करने में कोई कमी नहीं गुजारी गई। कुछ यान आहिस्ता से चंद्र-भूमि पर उतरे, कुछ चांद के चक्कर काट कर रह गए और कुछ टकराकर धराशायी हो गए। इन प्रयत्नों से नक्शों, मानचित्रों और लाखों चित्रों की प्राप्ति हुई।

दूसरी ओर सोवियत यूनियन ने भी दिसंबर, 1966 में एक अन्य चंद्रयान 'लूना 13' उड़ाया जो 'अंधड़ सागर' में उतरा। इस यान ने चांद की भूमि पर एक फुट से कुछ कम गहराई तक खुदाई की। इस विषय में 'तास' ने निम्नलिखित टिप्पणी दी थी :—

'20-30 सेंटीमीटर की गहराई पर चंद्र-तल की ऊपरी विशेषताएं मध्यम दर्जे के घनत्व वाली हमारी मिट्टी की विशेषताओं के समान हैं।'

इस प्रकार चंद्र-धरातल की पर्याप्त जानकारी इन दोनों देशों के प्रक्षेपित पूंछों वाले चंद्र-पक्षियों द्वारा वैज्ञानिकों को दी गई। जैसा कि ज्ञात ही है कि इन चंद्र यानों ने मनुष्य को चांद पर भेजने की दिशा में बहुत ही महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। अमरीकी अंतरिक्ष-विज्ञान ने जो पांच स्थल मनुष्य के उतरने के लिए निश्चित किए, वे बहुत सीमा तक इन यानों द्वारा दी गई जानकारी के आधार पर ही किए गए।

यदि इन चंद्र-यानों को अपोलो-अभियान का अग्रगामी कह दिया जाए तो शायद कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

8. अपोलो–आठवां आश्चर्य

अतरिक्ष मनुष्य के लिए देव-लोक रहा है। उसमे प्रवेश करने की बात मनुष्य के मन मे सदा आई है और उसके लिए उसे केवल एक ही मार्ग मिला है—स्वयं को देवत्व तक पहुंचाना। देवता बनने की दिशा मे उसे बराबर एक ही साधन सही लगा है—ऊचा उठना। किंतु क्योंकि सशरीर ऊचा उठने की संभावना उसे नजर नहीं आई, इसलिए उसने मन से ऊचा उठने की बात सोची। मन से ऊचा उठने के उसे दो लाभ दृष्टिगोचर हुए (1) जीवितावस्था में पृथ्वी पर देवता बनकर रहना और (2) मृत्यु-उपरात देव-लोक मे प्रवेश पाना।

स्पष्ट ही है कि अंतरिक्ष मे जाने की गुंजाइश मरणोपरांत ही थी।

हमारे यहा जहां-तहां शरीर सहित स्वर्ग में पहुचने की कल्पना की गई, वह मात्र कामनापूर्ण कल्पना थी। उसमे वास्तविकता का अभाव था तथा जिन परिस्थितियो मे से मनुष्य गुजर रहा था, वे ऐसी नहीं थीं जिनके बीच मे से वह अपनी सूक्ष्म शृखलाओं का परिचय पा सके, उन्हे काटने की कोशिश कर सके और यत्र (मशीन) को आधार बना सके।

हमारे यहां यंत्र की बात मत्र के साथ ही आई है। यंत्र और मत्र हमारे यहा शास्त्र के अतर्गत आते है। ये ही यत्र और मंत्र आम आदमी की जबान मे 'जतर-मतर' हो गए। किंतु जैसा कि सर्वविदित ही है कि हमारे यंत्र (और मंत्र) सूक्ष्म जगत् मे कार्यशील रहते हैं। भारत मे मंत्रों के ही समान यंत्रों का उपयोग आकर्षण, उच्चाटन, वशीकरण, मारण, रोग-निवारण आदि में किया जाता रहा है। भोज पत्रों पर विशेष आलेखों के रूप में इनका प्रयोग तावीज अथवा कवच के रूप में होता रहा है और अब भी किसी कदर होता है।

'यत्र' को ऐसी मशीन के रूप में विकसित और प्रयुक्त करना जो मानव को शरीर-सहित देव-लोक मे ले जाए, मुख्य रूप से पश्चिम की उपलब्धि प्रतीत होती है। शायद इसीलिए पूर्व को 'रहस्यमय' और पश्चिम को 'व्यावहारिक' कहा गया है।

बहरहाल यह सत्य काफी पहले उजागर हो गया था कि मानव स्वयं अंतरिक्ष मे नहीं पहुंच सकता—इस कार्य के लिए किसी यत्र का सहयोग आवश्यक है। इस

प्रकार अधे को न्योतने' की कथा चरितार्थ हुई अर्थात् यदि मनुष्य सशरीर अतरिक्ष में जाना चाहता है तो उसे मशीन के साथ जाना होगा, और इस प्रकार मानव और मशीन—दोनो का महत्त्व स्वीकार किया गया। निष्कर्ष यह निकला कि मानव और मशीन दोनो ही अतरिक्ष-उडान की दिशा मे अधूरे होने के साथ-साथ एक-दूसरे के समर्थ पूरक हैं।

मशीन मनुष्य के मस्तिष्क की उपज है। मशीन के विकास को अतरिक्ष-यात्रा का आधार बनाया गया, पर विकास की दिशा मे मन को भी उमेठा-उभारा गया तथा मन के सर्वथा स्वस्थ और समर्थ होने पर बल दिया गया। इस प्रकार मोटे तौर पर, देवता बनने का सघर्ष दो मोर्चो पर छेडा गया : (1) तन को स्वस्थ, मन को साहसी और बुद्धि को सजग रखने के लिए अंतरिक्ष-यात्रियों के चुनाव, परीक्षण, प्रशिक्षण, अध्यापन, व्यायाम कठोरतम परिस्थितियो मे क्रियाए-प्रतिक्रियाएं तथा सामर्थ्य-बुद्धि पर अधिकतम ध्यान और बल दिया गया तथा (2) यत्र को उस रूप मे निर्मित एव विकसित करने मे कोई कोर-कसर न उठा रखी गई, जो मनुष्य की गति, दिशा, सुरक्षा, कार्य-निपुणता आदि से उसका सौ प्रतिशत सही सहायक सिद्ध हो।

जहा तक उड़ने अथवा उड सकने की बात है, उसका स्वप्न तो मानव आदि काल से ही देखता आया है, पर उस यंत्र का निर्माण आखिर क्रमश. ही हुआ, जिसके सहारे वह हवा में उड़ सका। उडने के प्रयत्नों, परीक्षणों तथा असफलताओं मे ल्योनार्दो से लेकर राइट बधुओं तक 400 वर्ष व्यतीत हुए तब कही जाकर ऐसे यंत्र का निर्माण सभव हुआ जिस पर बैठकर उड़ा जा सके। 1957 ई. मे जिस अतरिक्ष-यान का निर्माण करने की कल्पना की गई, उसमे दिन-प्रतिदिन परिवर्तन, परिवर्धन और सशोधन होते गए। समय की गति के साथ अंतरिक्ष की सीमाए फैलती गई, अंतरिक्ष-यान की सभावनाए सिकुड़ती गई। मस्तिष्क दौडता रहा और प्रगति कछुवे के कदमो से बढती गई। इस कार्य में 12 वर्ष लगे और बारह लाख आदमी लगे रहे, तब कही जाकर उस आरभिक मशीन का निर्माण संभव हुआ जो मनुष्य को चाद तक ले जा सके। अपने समय की यह सर्वश्रेष्ठ मशीन थी किंतु वह एक प्रयोगात्मक मशीन ही थी। फिर भी जिस मशीन का उल्लेख यहां हो रहा है, उसकी समूची क्रिया-प्रक्रिया को मात्र दो शब्दों में समेटा जा सकता है—'अपोलो-अभियान'।

विशालतम एवं जटिलतम वैज्ञानिक तथा तकीनकी चुनौती

अपोलो-अभियान वस्तुतः एक गागर है जिसमे मानव-इतिहास की विशालतम, जटिलतम तथा उत्कृष्टतम त्रिवेणी का सागर-रूप भरा हुआ है। अपोलो-अभियान के विषय में यह उक्ति उचित प्रतीत होती है—'अपोलो-अभियान कभी भी, किसी भी राष्ट्र द्वारा स्वीकार की गई विशालतम एवं जटिलतम वैज्ञानिक, तंत्र-शास्त्रीय और तकनीकी चुनौती है।' अभियान को मानवअस्तित्व के समय का आठवां आश्चर्य कहना

ही उचित होगा

अपोलो का लक्ष्य मनुष्य को चंद्रमा पर पहुचाना और उसे सही-सलामत पृथ्वी पर वापस ले आना था।

इस लक्ष्य के साथ अनेक प्रश्न जुड़े हुए थे :—

(1) अतरिक्ष-यान, (2) यान का वाहक अथवा प्रक्षेपक, (3) क्षेपण-मच, (4) चद्रमा के धरातल और परिवेश की निर्भर योग्य जानकारी, (5) पर्याप्त सख्या में समर्थ अंतरिक्ष-यात्रियों का प्रशिक्षण, (6) कठिनतम परिस्थितियों में उनकी क्रियाए और प्रतिक्रियाएं, (7) संचार-प्रणाली तथा ऐसे ही और हजारों प्रश्न तथा समस्याए। अपोलो अभियान इसी लक्ष्य का प्रस्तावित उत्तर था।

25 मई, 1961 को जब तत्कालीन अमरीकी राष्ट्रपति केनेडी ने दशक समाप्त होने से पूर्व ही मनुष्य को चाद पर उतारने और उसे सकुशल वापस पृथ्वी पर लाने के लिए अपने राष्ट्र की प्रतिबद्धता की घोषणा की थी, तो साथ ही अपोलो-अभियान के विषय में भी अद्‌भुत अचूकता के साथ यह भविष्यवाणी की थी कि इस अभियान का अर्थ 'एक आदमी के चाद पर उतरने से अधिक होगा।' उन्होंने कहा था, 'यदि हम यह निर्णय स्वीकृतिपूर्वक ले ले, तो यह सपूर्ण राष्ट्र का कार्य होगा। क्योंकि उक्त व्यक्ति को चाद पर पहुचने के लिए हम सभी को कार्य करना पड़ेगा।

राष्ट्रपति के इतने कहने की देर थी कि अपोलो-अभियान का कार्य अमरीका के चारों कोनो में फैल गया। उस देश का शायद ही ऐसा नगर अथवा ग्राम हो, जिसने इस अभियान की पूर्ति के प्रति अपना सक्रिय सहयोग न दिया हो। यह अमरीका महादेश का विशालतम शातिकालीन उपक्रम कहा जाएगा।

बीस हजार उद्योग-धंधों का योगदान

मोटे तौर पर इस अभियान की सफलता के लिए तीन महान् शक्तियो ने अपने सर जोडे। 'नासा' द्वारा आरभ किया गया यह अभियान एक के बाद एक ठेकेदार-शृंखला से गुजरता हुआ छोटे-से-छोटे उद्योग-सस्थानों तक पहुंचा जिनके विषय में एक बड़े व्यवसाई ने कहा था, 'अंतरिक्ष-युग की चुनौती लघु उद्योग-धधो ने स्वीकार कर ली है।' अपोलो-अभियान मे 20,000 उद्योग-धंधे शामिल थे।

फिर हवा मे उड़ाना एक बात है; हवा-हीनता मे उड़ाना दूसरी बात है। इसमें कई नवीनताओं की आवश्यकता होती है—उड़ान के तौर-तरीकों की नवीनता पथ-प्रदर्शन की नवीनता, ईधन की नवीनता, सचार व्यवस्था की नवीनता, भूमि पर वापस लौटने की नवीनता—गरज कि अनेक क्षेत्रों में प्राचीनता का परित्याग कर नवीनता का पल्ला पकडना था। और यदि उड़ान दूर तक की जाने वाली हो, जैसे कि चंद्रमा तक, तब तो इन नवीनताओ में एक आयाम और जुड़ जाता है।

नवीन समस्याओं से जूझने के लिए शोध की आवश्यकता होती है जिसके अभाव में न धन उपयोगी होता है और न यंत्रों को गढ़ने की योग्यता। इस विषय मे एक

छोटे ठकेदार ने कहा था साज सामान का निर्माण तो अंतिम चरण है अधिक कठिन तो यह जानना है कि निर्माण किस चीज का किया जाए उदाहरण के लिए अतरिक्ष यात्री नियन्त्रण व्यवस्था का अभिनय अग है कि उसकी पहुच कहा तक है उसम सहनशीलता कितनी है तथा मशीन स सबद्ध होकर वह कौन से कार्य अधिक अच्छी तरह कर सकता है।'

इसका उत्तर अमरीका के 150 विश्व-विद्यालयों ने दिया। विश्व-विद्यालयों के योगदान के विषय मे 'नासा' के अधिकारी ने एक बार यह टिप्पणी की थी, 'विश्व-विद्यालयों की सहायता के अभाव मे हमारे कार्यक्रम को बडा धक्का लगता। अतरिक्ष मे परीक्षणो से सबंधित अधिकांश विचार हमें विश्व-विद्यालयो से ही प्राप्त होते हैं। और तो और, बहुत से यत्र तो विश्व-विद्यालयों की प्रयोगशालाओं मे ही विकसित किए गए।'

इस प्रकार मानव इतिहास की इस महानतम चुनौती का मुकाबला अमरीका की तीन महाशक्तियो ने मिलकर किया—सरकार ने, उद्योग ने और विश्वविद्यालयो ने।

प्रश्न यह है कि इन निराकार सूक्ष्म समस्याओं को साकार ठोस समाधान के रूप मे कैसे ढाला गया ? अपोलो-अभियान इसी प्रश्न का उत्तर है।

अपोलो-अभियान की रूपरेखा 1960 मे बनाई गई थी। इस अभियान के अंतर्गत तृ-कक्षीय 84 फीट ऊचे एक ऐसे यान का निर्माण करना था जिसका वजन 45 टन हो और जो कि तीन अतरिक्ष-यात्रियो को चांद तक ले जा सके और उन्हें सकुशल पृथ्वी पर वापस ला सकें। इस यान के छोडने के लिए शनि-5 नामक प्रक्षेपक के विकास की आवश्यकता थी—वह प्रक्षेपक जो 363 फ़ीट ऊंचा हो, 140 टन भार को पृथ्वी की कक्षा मे स्थापित कर सके तथा लगभग 50 टन वजन को पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण को भेदकर बाह्य अंतरिक्ष में ले जा सके। क्षेपण के समय जिसका वजन 3,000 टन हो और 75 लाख पाउड तक के आघात का विकास कर सके।

वास्तव मे, किसी भी अतरिक्ष-अभियान की आत्मा उसकी प्रक्षेपण-शक्ति है। शनि-5 प्रक्षेपक अपोलो अभियान की आत्मा है।

प्राविधिकता का कीर्ति-स्तंभ शनि-5

शनि प्रक्षेपक जर्मन प्रक्षेपक-विशेषज्ञ वर्नर व्हॉन ब्रॉन का साकार हुआ स्वप्न है, जो उस सौभाग्यशाली व्यक्ति ने स्वयं ही साकार किया है। अंतरिक्ष युग का सूत्रपात एक प्रकार से वी-2 रॉकेट के क्षेपण से हुआ था जिसे व्हॉन ब्रॉन ने वॉल्टर डॉन बर्गर के साथ मिलकर बनाया था। वी-2 रॉकेट 1945 में चलाया गया था। क्योंकि अतरिक्ष-यात्रा की बुनियादी शक्ति प्रक्षेपक है इसलिए अपोलो आयोजन में भी प्रक्षेपक पर ही पहले विचार हुआ और शनि (प्रक्षेपक) का निर्माण किया गया। व्हॉन ब्रॉन ने 'शनि' को 'प्राविधिकता का कीर्ति-स्तंभ' कहा है।

शनि-5 का वणन अपने आप मे एक स्वतन्त्र पुस्तक का विषय है किंतु सुविधा के लिए इतना ही जान लेना पर्याप्त है कि क्षेपण-विज्ञान का यह एक चमत्कार है तथा इससे बड़ा प्रक्षेपक अभी नहीं बना है। इसकी ऊचाई एक 36 मंजिली इमारत के बराबर है जो लगभग 363 फीट बनती है। इसका वजन 2,700 टन है। अपोलो यान सहित यह वजन 3,000 टन की संख्या को भी लांघ जाता है। इस वजन मे ईधन का वजन शामिल है। इसमें 20,00,000 कल-पुर्जे होते है।

कुछ लोगों की राय है कि इससे बड़ा प्रक्षेपक नही बनाया जा सकता। उनके विचार से इससे बड़े प्रक्षेपक के सिकुड़ जाने की आशका है। किंतु यह मत आज का है। इसके आने वाले कल पर लागू करना उचित नही है। आखिर गुजरे हुए कल में किसने शनि प्रक्षेपक के निर्माण की कल्पना को संभवनीयता के दायरे मे माना था ?

'शनि' के चार खड अथवा चरण होते हैं : इसके तीन चरण जलने वाले होते हैं और चौथा भाग 'यंत्र-इकाई' कहलाता है, जिसमे प्रक्षेपक के आकाश में सचालन के हेतु पुर्जे लगाए हुए होते हैं। सुविधा के लिए चौथे भाग को प्रक्षेपक का मस्तिष्क कह सकते हैं।

शनि-5 का पहला खड 138 फीट लबा होता है। इसका व्यास 33 फीट और वजन लगभग 130 टन होता है। यह खड बोइग कपनी द्वारा न्यू ऑर्लियन्स मे लगभग 1000 एकड भूमि-खड पर बनाया गया। क्योंकि हवाई मार्ग से इसे केप कैनेडी तक पहुंचाने का प्रबंध असंभव था, इसलिए इसे जल मार्ग से उक्त स्थान तक पहुचाया गया। ईधन सहित इस खंड का वजन पचास लाख पौड तक पहुच जाता है। इसमे 75 लाख पाउड आघात वाले पांच इंजन होते हैं।

शनि-5 नामक प्रक्षेपक का दूसरा खड 81 फीट से कुछ अधिक लंबा होता है। इसका व्यास प्रथम खंड के व्यास के ही बराबर है। इसका भार 43 टन समझना चाहिए। ईधन सहित दूसरे खंड का वज़न 10 लाख पाउंड से भी अधिक ही होता है। इसके पांच इंजनों का आघात 10 लाख पाउंड से ऊपर है। इसका निर्माण नॉर्थ अमेरिकन रॉकवैल कपनी ने लॉस एन्जिल्स में किया तथा जल-मार्ग से केप कैनेडी तक पहुचाया।

तीसरा खंड 58 फीट से कुछ अधिक लबा है। इसका व्यास 22 फीट से कम होता है। इसका वजन 25,000 पौंड अथवा 16 टन है। इस वजन मे ईधन का वजन शामिल नहीं है। ईंधन सहित इसका वजन ढाई लाख पाउण्ड से भी अधिक हो जाता है। इसमें केवल एक ही इंजन होता है किंतु उसे एक से अधिक बार चलाया जा सकता है। इस इंजन का आघात दो लाख पाउंड से ऊपर होता है। यह खंड मैकडॉनल डगलस कपनी द्वारा कैलेफोर्निया में निर्मित किया गया और लगभग 30,000 अश्व-शक्ति वाले विशालतम वायुयान के द्वारा केप कैनेडी तक पहुंचाया गया।

शनि प्रक्षेपक मे तरल ईधन इस्तेमाल किया जाता है। (हालांकि अपोलो की

उडान मे थाडी बहुत शुष्क ईधन की आवश्यकता होता है जैसे कि लगभग 6 लाख गैलन तरल नाइट्रोजन साढे तीन लाख गैलन तरल ऑक्सीजन 20 लाख गैलन तरल हाइड्रोजन ओर लगभग 1 लाख गैलन तरल हीलियम मोटे तौर पर या समझना चाहिए कि शनि अपने सिर पर जितना वोझ उठाता है उसका पाच सौ गुना अधिक ईधन व्यय करता है।

ऐसा कहा जाता है कि 'शनि-5 मे इतनी शक्ति है कि इससे पूर्व के तमाम अमरीकी अंतरिक्ष-यानो को (यह यान) कक्षा में स्थापित कर सकता है।' शनि-5 को इसके खडों के निर्माण के बाद क्षेपण-मंच तक लाने में लगभग चार महीने लग जाते है।

शनि-शृंखला में सबसे पूर्व शनि-1 का निर्माण हुआ तथा 1961 और 1965 के मध्य बार-बार इसका परीक्षण किया गया। इस परीक्षण के निमित्त दस शनि-1 छोडे गए।

शनि-1 का अगला चरण शनि-1-बी था। शनि-1-बी शनि-1 के मुकाबले मे 50 प्रतिशत भार अधिक वहन कर सकता था। शनि-5 शनि-1-बी का ही त्रिकमित, सशोधित तथा परिवर्धित रूप है।

पहला शनि-5 प्रक्षेपक 9 नवम्बर, 1967 को अपने क्षेपण-मंच से उड़ा था। वह मानव-रहित उड़ान थी तथा मात्र परीक्षण के लिए थी। इस उडान के विषय मे फेयरले की उक्ति स्मरणीय है :—

'6 वर्ष के दौरान मे बने शनि-5 ने केवल 16 मिनट मे अपना करतब दिखा दिया था।'

इसमे कोई संदेह नही कि शनि-5 प्रक्षेपक विश्व का आठवां आश्चर्य है किंतु इसकी यह असाधारणता अपोलो यान के सहित अधिक सार्थक है क्योंकि प्रक्षेपक तो वाहन मात्र है। प्रक्षेपक का कार्य तो इतना ही है कि वह अतरिक्ष यान को पृथ्वी से उठाकर अंतरिक्ष मे पहुंचा दे तथा कक्षा में स्थापित कर दे। असली वस्तु तो अतरिक्ष-यान है जो प्रक्षेपक की नासिका मे बद करके ऊपर भेजा जाता है तथा कक्षा मे पहुचकर प्रक्षेपक पर निर्भर नहीं रहता।

अपोलो-अभियान की रूप-रेखा

अपोलो अभियान की रूपरेखा जुलाई, 1960 में बनाई गई थी। इस योजना को साकार रूप देने के लिए अनेक विकल्पो पर विचार किया गया, जिनमें से किसी-न-किसी के द्वारा मनुष्य चाद तक पहुच सके। इन विकल्पों मे से एक यह था कि एक ऐसा अतरिक्ष यान बनाया जाए जो पूर्ण का पूर्ण ही चांद पर पहुच जाए और वहा से पृथ्वी पर लौट आए। दूसरा विकल्प यह था कि यान दो किश्तो मे अतरिक्ष में भेजा जाए तथा वहां दोनों भागो को संबद्ध करके उन्हें चंद्रमा पर भेजा जाए। तीसरा महत्त्वपूर्ण विकल्प यह भी था कि अपोलो यान का निर्माण कक्षों मे किया जाए। पृथ्वी से संपूर्ण

यान उड़ाया जाए तथा उसे चद्रमा की कक्षा मे स्थापित्त कर दिया जाए। वहा उसमे से चंद्र-कक्ष अलग होकर चद्रमा पर उतर जाए और आदेश-कक्ष चद्रमा के ही चक्कर काटता रहे। चद्र-कक्ष अपना कार्य पूरा करके मुख्य यान से आ जुड़े तथा बाद मे जब चंद्र-यात्री मुख्य यान अथवा आदेश-कक्ष मे वापस आ जाए तो वह कक्ष पृथ्वी पर लौट आए। इसीलिए अपोलो को त्रृ-कक्षीय यान के रूप में विकसित किया गया--(1) आदेश-कक्ष, (2) सेवा-कक्ष और (3) चद्र-कक्ष।

अपोलो-यान का खाका पहले-पहल 5 जनवरी, 1962 को प्रकाशित किया गया। इस खाके में एक शकु (cone) एक वर्तुल (cylinder) से जुड़ा हुआ दिखाया गया था। यही वह यान था जिसमें बैठकर तीन यात्रियो को चांद की यात्रा करनी थी।

कुछ महीनो के बाद यह स्पष्ट किया गया कि शकु और वर्तुल का सबद्ध रूप तो यात्रियो को चद्र-कक्षा तक ले जाएगा। चाद के धरातल पर उतरने का कार्य एक अन्य कक्ष करेगा जो चंद्र-धरातल से वापस उडकर फिर मुख्य यान से जुड जाएगा।

तब शकु तथा वर्तुल के निर्माण का कार्य नॉर्थ अमेरिकन एविएशन कपनी को सौपा गया और मकडा अथवा चंद्र-कक्ष बनाने का उत्तरदायित्व ग्रन मैन एयरक्राफ्ट कार्पोरेशन के हिस्से आया।

अपोलो-यान पर जनवरी, 1962 मे कार्य शुरू हुआ।

अपोलो-यान का प्रमुख भाग आदेश-कक्ष है। यह 11 फीट 5 इच ऊचा शकु है जिसका व्यास आधार पर 12 फीट 10 इच होता है। 12,000 पोड से भी अधिक वजन का यही कक्ष अंतरिक्ष यात्रियो को लेकर चद्र-यात्रा पर चलता है और यही उन्हे लेकर वापस पृथ्वी पर लौटता है। यह वह भाग है जिस पर क्षेपण के समय का प्रवेग भी प्रभाव डालता है और समुद्र-संतरण का आघात भी। साथ ही इस भाग को लौटते समय वातावरण की उष्णता को भी सहन करना पडता है। इसीलिए यह कक्ष के भीतर कक्ष होता है। इसका भीतरी ताना-बाना दबावपूर्ण तथा अलम्यूनियम और मिश्रित अलम्यूनियम का होता है और बाहरी आवरण स्टेनलैस् स्टील का। बाह्य आवरण के ऊपर एक विशेष प्रकार की राल मढी हुई होती है। ताकि लौटते समय वायुमंडल के घर्षण से उत्पन्न अति तीव्र ताप से यह जल न जाए।

आदेश-कक्ष के तीन उप-विभाग होते है · (1) अग्र भाग, (2) मध्य भाग और (3) पिछला भाग, इनमें मध्य भाग अंतरिक्ष-यात्रियों के बैठने व लेटने के लिए होता है।

आदेश-कक्ष को शयन, नियंत्रण, भोजन और पीरक्षण जैसे व्यापारों का सामूहिक रूप समझना चाहिए। इस कक्ष की दीवारों में भोजन, पानी इत्यादि रखने की व्यवस्था रहती है। इस कक्ष को दबाब-सहित तथा वातानुकूलित रखा जाता है। कक्ष का ताप 75 डिग्री फॉरनहाइट होता है तथा पाच पाउड प्रति वर्ग इंच के हिसाब से दबाब बना रहता है जिसके कारण अंतरिक्ष-यात्री अपने विशेष लिबास को हर समय पहने रखने के लिए विवश नहीं होते।

इस नोकदार कक्ष म कम-से-कम बीस लाख पुर्जे लगे रहते हैं जिनमें गणक स्विच सकेतक आदि होते हैं सोते समय भारहीनता से बचे रहने के लिए विशेष पेटी का प्रबंध भी इसमें रहता है।

बीस लाख कल पुर्जे और...

आदेश-कक्ष में यात्रियो के कार्य करने के लिए लगभग 5 घन मीटर खाली स्थान होता है। साधारणतया यह स्थान इतना ही समझना चाहिए जितना कि एक कार मे होता है। इस कक्ष मे बिजली की पांच बैट्रियां के अलावा एक दर्जन रॉकेट इंजन भी होते हैं। ईंधन की चार टंकियां भी इसमें होती हैं जिनमें 270 पौंड ईंधन रहता है। यह ईंधन आघातकों (thrustors) को चलाने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। इसमे तीन व्यक्तियों के लिए 14 दिन का भोजन-पानी रहता है। साथ ही मल-निष्कासन की व्यवस्था भी इसमें होती है। इसी कक्ष में तीन बडे-बडे पैराशूट (हवाई छाता) रखे होते हैं।

अंतरिक्ष-यान की उडान के नियंत्रक, जिन्हें आवश्यकता पडने पर प्रयोग में लाया जा सके, इसी कक्ष में लगे होते हैं, अन्य साज-सामान दीवारों में बनी अलमारियों में रहता है। इस कक्ष में दो अर्द्ध-द्वार और पांच खिडकियां होती हैं। जबकि आगे वाला द्वार (द्वार का निचला आधा भाग) चंद्र-कक्ष मे जाने के लिए प्रयोग मे आता है, बराबर वाला अर्द्ध द्वार आदेश-कक्ष में ही आने-जाने के लिए होता है। खिड़कियों पर तिहरा शीशा लगा होता है जिनमें सबसे बाहर वाला शीशा 2,800 डिग्री फॉरनहाइट तक के ताप को रोक सकता है।

सेवा-कक्ष का निर्माण भी साधारणतः आदेश-कक्ष के आस-पास का ही है। इसका व्यास है 12 फीट, 10 इंच और वज़न ईंधन सहित 24 टन। सेवा-कक्ष कई उपविभागों मे बंटा होता है। इनमें से कुछ उपविभागो में तो ईंधन की टंकियां बनी है, जिसमें मुख्य रॉकेट इजन कार्य करता है। एक अन्य उपविभाग में आदेश-कक्ष को बिजली-पानी आदि पहुंचाने के लिए ऑक्सीजन-भंडार होता है। एक-दो उपविभाग अन्य किसी भी आवश्यक उपकरण के लिए प्रयुक्त किए जा सकते हैं। इसमे इतना ईंधन रहता है कि लगभग सात लाख मील की निर्विघ्न यात्रा की जा सके। इसमें लगे ईंधन टैंकों के बारे में यह कहावत है कि इनमे बर्फ के टुकड़े डाल दिए जाएं तो उन्हे पिघलाने में एक दशक का समय लग जाएगा। सेवा-कक्ष नॉर्थ अमेरिकन रॉक वैल कपनी ने कैलेफोर्निया मे निर्मित किया है।

सेवा-कक्ष का प्रमुख आकर्षण इसका विशाल रॉकेट इंजन है जो कि शनि-5 प्रक्षेपक के तीसरे चरण के अलग हो जोने के बाद प्रयुक्त किया जाता है। यान की गति घटाने-बढाने तथा दिशा-निर्धारण व मार्ग-संशोधन आदि में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। पृथ्वी तथा चंद्रमा की कक्षाओं एवं गुरुत्वाकर्षणों से निकलने और उनमें प्रवेश करने के लिए रॉकेट इंजन ही प्रमुखतम साधन है। यह बार-बार चलाए

जाने वाला एक इंजन होता है। इसका आघात 20 हजार पौण्ड से अधिक कहा जाता है। रॉकेट इजन के सभी महत्त्वपूर्ण पुर्जे दो-दो की सख्या मे होते हैं तथा अति आवश्यक व अनिवार्य पुर्जो की संख्या एक के स्थान पर तीन तक रखी जाती है ताकि यदि किसी कारणवश एक पुर्जा अपना कार्य वद कर दे तो उसका स्थानापन्न स्वत ही उक्त कार्य सभाल ले। यह इजन स्वय तो साढ़े तीन फीट से अधिक लबा नहीं होता किंतु इसका नासिका-अश 9 फीट से भी अधिक लबा होता है। मुख्य इजन के अतिरिक्त सेवा-कक्ष मे 16 छोटे इंजन भी होते हैं जिनकी सहायता से अंतरिक्ष-यान को किसी भी स्थिति मे स्थापित किया तथा निकाला जा सकता है।

सेवा-कक्ष मे और भी सामान होता है जैसे कि वे बैट्री जिनसे विद्युत शक्ति मिलती है तथा आदेश कक्ष मे प्रकाश, तापमान आदि का प्रबध रहता है।

अनेक कल-पुर्जे इसी विद्युत शक्ति की सहायता से कार्य करते है। इसके अतिरिक्त अतरिक्ष-यात्रियो के वास्ते प्रयुक्त होने वाली ऑक्सीजन तथा पानी का अधिकांश भाग भी सेवा-कक्ष से ही प्राप्त होता है। संचार-व्यवस्था का साज-सामान भी इसी कक्ष मे रहता है। फिर इसमें गति घटाने वाले नियंत्रण-आघातक रखे हुए होते हैं जो कि गति को धीमा करने के काम आते हैं।

अतरिक्ष मे पहुंचने पर ज्यो ही शनि-5 का अतिम चरण अलग होता है, यह कक्ष अपना कार्य संभाल लेता है और तब तक कार्यरत रहता है, जब तक कि मुख्य यान का अग्र भाग (आदेश-कक्ष) लौटते समय वायुमंडल में प्रवेश करने लगता है। वायुमंडल में प्रवेश करने से चद मिनट पहले ही सेवा-कक्ष उससे कट जाता है और ऊपर ही छूट जाता है। यह अलम्यूनियम, स्टैनलेस् स्टील और टाइटेनियम का बना होता है।

अपोलो-यान की सबसे अधिक कौतुकमयी वस्तु चंद्र-कक्ष है जो हू-बहू कीड़े की शक्ल का है। इस कक्ष का निर्माण यो भी सरल नहीं था। चद्र-कक्ष का प्रयोग चद्रमा पर ही किया जाना था। चंद्रमा की स्थिति-परिस्थिति पृथ्वी से बहुत भिन्न है। चंद्रमा-वातावरणरहित है अत: चद्र-कक्ष का प्रयोग वायुहीनता की स्थिति मे किया जाना था। फिर चाद का गुरुत्वाकर्षण भी पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण का 1/3 है। इसका अर्थ यह हुआ कि जो वस्तु हमारी पृथ्वी पर 6 मन की है वह चंद्र धरातल पर केवल 1 मन की रह जाएगी। चद्र-कक्ष ने चंद्रमा की कक्षा में मुख्य यान (आदेश-कक्ष और सेवा-कक्ष) से कटकर चांद की भूमि पर उतरना था तथा वहां कार्य पूरा करके फिर वापस मुख्य यान से संबद्ध होना था। स्पष्ट है कि चद्र-कक्ष का कार्य अधिक समय का नहीं था किंतु सर्वथा नवीन हालात मे इसे कार्य करना था, जिसके विषय में शत-प्रतिशत सही जानकारी इस पृथ्वी के प्राणी को नहीं थी।

मकड़ा या चंद्र-कक्ष

के निर्माण के लिए अमरीका में बड़ी भारी तैयारियां की गई थीं। इसके

विषय मे रेखाचित्र आमंत्रित किए गए थे और तो और चंद्र-कक्ष के नमूने का चुनाव एक लंबे सिलसिले के बाद किया गया जो लगभग 20 वर्ष पूर्व रूसी मकान यूरी कांद्रात्युक ने यह गणना की थी कि चंद्रमा पर उतरने के लिए मकड़ीनुमा ढांचे वाला कक्ष ही कामयाब होगा परंतु चंद्र कक्ष के वास्तविक निर्माण का श्रेय ग्रुमान नामक वैज्ञानिक को है, जिसने इसका प्रथम संस्करण तैयार किया, यद्यपि इसमें समयानुसार अनेक परिवर्तन-संशोधन होते रहे ताकि इसका वजन कम-से-कम रखा जा सके।

चंद्र-कक्ष लगभग 23 फीट लंबा और 31 फीट चौड़ा होता है। ईंधनरहित चंद्र-कक्ष का वजन 4 टन होता है। इसकी चार टांगें होती हैं जिनके तलवे चौड़े और गद्देदार होते हैं। इसकी तीन टांगों में टोह लेने वाले यंत्र लगे होते हैं। ये टांगें यथा-अवसर खोली और सिकोड़ी जा सकती हैं। इसका निर्माण ऐसे ढंग से किया गया है कि यह पोली धरती पर भी उतर सके (तथा एक-दो इंचों से अधिक चंद्र-धूल में न धंसे) और सख्त चट्टान पर भी।

इसके दो विभाग होते हैं :—(1) आरोह विभाग और (2) अवरोह विभाग। आरोह विभाग 12 फीट से कुछ अधिक लंबा और लगभग 14 फीट चौड़ा होता है जो कि ईंधन सहित 10,000 पौंड वज़न तक पहुंच जाता है। अष्ट-भुजी शक्ल का अवरोह विभाग लगभग 10½ फीट ऊंचा होता है। इसकी चौड़ाई लगभग 14 फीट। ईंधन सहित इसका वजन 12,000 पौंड से अधिक होता है।

इसके आरोह-विभाग को आदेश-कक्ष (लघु) और अवरोह विभाग को लघु सेवा-कक्ष समझना चाहिए। जिस समय चंद्र-कक्ष मुख्य यान से असंबद्ध किया जाता है तो आरोह और अवरोह—दोनों विभाग परस्पर जुड़े होते हैं। तथा उसी अवस्था मे वे चंद्र-तल पर उतरते हैं परंतु लौटते समय अवरोह विभाग चांद पर ही छोड़ दिया जाता है तथा वह आरोह विभाग के लिए क्षेपण-मंच का काम देता है। आरोह विभाग भी एक बार मुख्य यान में जुड़ जाने के बाद खाली करके चंद्र-कक्षा में ही छोड़ दिया जाता है।

आरोह विभाग में दो अर्द्ध द्वार और तीन खिड़कियां होती हैं। जो अर्ध द्वार चंद्रमा पर उतरने के लिए बनाया गया है, उसके बाहर नौ डंडों वाली सीढ़ी होती है। अंतरिक्ष-यात्री इसी विभाग में होते हैं और उनके साथ होती हैं आदेश-कक्ष वाली सभी सुविधाएं जैसे कि नियंत्रण व्यवस्था, संचार व्यवस्था, मुख्य इंजन की नियंत्रण-व्यवस्था तथा दिशा आघातक इत्यादि।

अवरोह विभाग को सेवा-कक्ष की साज-सज्जा से लैस रखा जाता है। इसमें इंजन तथा ईंधन की टंकियां होती है। साथ ही पानी और ऑक्सीजन की व्यवस्था भी अवरोह विभाग मे ही होती है। इस विभाग में वह सारी सामग्री भी रखी होती है, जो चंद्रमा पर छोड़ आने के लिए होती है।

चंद्र-कक्ष के दोनो भाग ऐसे ढंग से बने होते हैं कि उन्हें जब भी आवश्यकता

हो, तुरत अलग किया जा सके। इसके भार को कम-से-कम रखने के लिए अलम्यूनियम-मिश्रित-धातुओं की कागज जैसी चादरों से इसे बनाया गया है। किंतु वह कागजी दीवारें सामान्य उल्काओं के आघात को सह सकती हैं। यह कक्ष इस दृष्टि से तैयार किया गया है कि चंद्र भूमि पर अपने यात्रियों की बखूबी रक्षा कर सके। इसके विशेष निर्माण को ध्यान में रखते हुए चंद्र-कक्ष को चांद के धरातल पर 40 घंटों से अधिक समय के लिए नहीं रखा जा सकता।

आदेश-कक्ष का पहला नमूना सितम्बर, 1962 में उपलब्ध हो गया था और दूसरा नमूना मार्च, 1963 में। पहले नमूने को भूमि तथा पानी पर गिराकर देखा गया और दूसरे नमूने का परीक्षण उसे अंतरिक्ष में भेजकर किया गया। मई, 1964 में तीसरे नमूने को भूमि की कक्षा में घुमाया गया। इस प्रकार लगभग डेढ़ दर्जन नमूनों पर परीक्षण किए गए तथा उन्हें सही पाया गया, तब कहीं अक्टूबर, 1965 में 'नासा' को अपोलो-यान उपलब्ध हुआ।

शनि-1 प्रक्षेपक सहित अपोलो का प्रथम परीक्षण 1966 के पूर्वार्द्ध में किया गया। पहले शनि-1 रॉकेट का परीक्षण 9 नवम्बर, 1967 को किया गया।

काश कि अपोलो-यान और शनि-5 प्रक्षेपक का ज्ञान ही पर्याप्त होता ! किंतु ऐसा है नहीं। इनकी जानकारी के बाद बल्कि तुरंत बाद यह ख्याल आना स्वाभाविक है कि शनि-5 प्रक्षेपक और अपोलो-यान जैसे विशाल साज-सामान का परीक्षण आखिर कहां और कैसे किया गया होगा ? इस प्रश्न का उत्तर कुछ भी कठिन न प्रतीत हो यदि हमें ज्ञात हो जाए कि केप केनेडी नामक अंतरिक्ष अड्डा कैसे अस्तित्व में आया।

केप कैनेडी अंतरिक्ष अड्डा तथा ह्यूस्टन नियंत्रण केंद्र

केप कैनेडी वाशिंगटन से लगभग 1,000 मील दूर है। यह स्थान अटलांटिक महासागर के तट पर है तथा फ्लोरिडा राज्य के अंतर्गत आता है। कभी यह हरा-भरा स्थान था तथा यहां-वहां ऊंचे-नीचे गड्ढे भी थे। उस समय इसका नाम केप कैनवरेल था।

24 फरवरी, 1949 को यहां से एक कारपोरल रॉकेट छोड़ा गया था। तब से यह स्थान सेना के उस अंग के अधीन रहा जिसके द्वारा प्रक्षेपणास्त्रों के परीक्षण हो रहे थे। इसीलिए यहां परले सिरे की गोपनीयता बरती जाती थी।

इस स्थान को मनुष्य और मशीन—दोनों ने मिलकर अंतरिक्ष अड्डे के रूप में बदला है। यहां हजारों आदमियों और हजारों ही मशीनों ने रात-दिन कार्य किया तब कहीं इस यंत्र-नगरी का निर्माण संभव हुआ। इस स्थान का उपयोग नौ सेना वायुसेना ने भी किया। पर अंततः अमेरिका के राष्ट्रीय उड्डयन और अंतरिक्ष प्रशासन (नासा) ने इसका उपयोग आरंभ किया और सन् 1963 में केप कैनवरेल के स्थान पर इसका नाम केप कैनेडी रखा गया

यह स्थान अंतरिक्षीय अनुसंधान के लिए तैयार किया गया है। भिन्न-भिन्न

प्रकार के उपकरण जो अमरीका के विभिन्न स्थानों पर बनाए जाते हैं यहां लाकर जोडे तथा जाचे परखे जाते हैं यहा की सबसे बडी इमारत वाहक सबद्धकरण भवन है। इस भवन में एक साथ चार शनि-प्रक्षेपको को जोड़ा जा सकता है, जोड़कर खड़ा किया जा सकता है और उनका परीक्षण किया जा सकता है।

यह भवन लगभग 525 फीट ऊंचा है। इसके 470 फीट ऊंचे किवाड़ ऊपर की ओर खुलते है। इस भवन के भीतर लगभग 70 क्रेनें हैं। वाहक-सबद्धकरण-भवन से जुडा हुआ चार मजिलों वाला क्षेपण-नियंत्रण केंद्र है। यहां प्रक्षेपक की जांच की जाती है। साथ ही संगणक-कोष है। यह बतलाना गणकों का ही कार्य है कि प्रक्षेपक को ऊपर भेजने के लिए क्षेपण-मंच पर स्थित किया जाए अथवा नहीं।

प्रक्षेपक को चल-क्षेपक (mobile launcher) पर खड़ा किया जाता है, जिसको विशाल यात्रिक सोपान कहना ही अधिक उचित होगा। यहीं पर प्रक्षेपक का पूर्ण परीक्षण होता है। जब यह जांच-परख पूरी कर ली जाती है तथा पारखी लोग सतुष्ट हो जाते है तो क्रॉलर मगाया जाता है।

क्रॉलर चल-क्षेपक के नीचे प्रवेश कर जाता है और क्षेपक तथा प्रक्षेपक को तीन मील की दूरी पर बने क्षेपण-मंच तक ले जाता है जहां रॉकेट को विशाल यांत्रिक सोपान के साथ संबद्ध किया जाता है। जब प्रक्षेपण का समय आता है तो यांत्रिक सोपनों की विशाल भुजाए आलिगन शिथिल कर देती हैं और वह विशालकाय पक्षी आकाश में ओझल हो जाता है। ह्यूस्टन का नियंत्रण-केंद्र अपोलो-अभियान का एक और आयाम है जहा अंतरिक्ष मे प्रत्येक मानव-निर्मित वस्तु पर नजर रखी जाती है। ह्यूस्टन के जटिल गणक-यन्त्र न केवल अपने अतरिक्ष-यानो को अपने नियंत्रण मे रखते हैं, बल्कि उनका स्वतः चालन भी करते हैं। ह्यूस्टन के विशाल नियंत्रण-केंद्र को संपूर्ण पृथ्वी पर फैले अनेक अनुसरण-स्थल प्रति सेकण्ड आवश्यक सूचानाएं भेजते रहते है।

चद्र-विजय के नाटक मे मशीन नायिका है तथा उसका सीमित और सकुचित परिचय पाकर भी यही आभास होता है कि संभवतः यह नाटक नायिका-प्रधान है। किंतु तथ्य ऐसा नहीं है। इस नाटक का नायक मनुष्य है तथा उसका लगातार दुहरा अभिनय है। चद्र-विजय के चमत्कारी नाटक में मनुष्य का एक रूप तो वह है जिसने स्विच से लेकर 'शनि' तक का निर्माण किया है और दूसरा रूप वह है जिसने स्विच से लेकर 'शनि' तक का प्रयोग किया है। अतः मशीन के संक्षिप्त परिचय के उपरात थोड़ा-बहुत परचिय उस मनुष्य का भी आवश्यक प्रतीत होता है जिसने इसमे अपना चमत्कार दिखाया है।

किंवदन्ती है कि तीन आदमियो को चांद तक पहुंचने के लिए तीन लाख से अधिक आदमियो को काम करना पड़ता है। इन लोगों में व्यवस्थापक, इंजीनियर, शिल्पिक, सुरक्षा-अधिकारियों आदि की गणना होती है जो अमरीका की 20,000 कपनियो को सेवकों के रूप मे रखने पड़ते है। इनमें शनि-निर्माता वर्नर वॉन ब्रॉन

से लेकर एक साधारण श्रमिक तक का कार्य अत्यंत आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए, कैलेफ़ोर्निया की मर्क्वार्ट कंपनी का इंजीनियर वॉवहास, जो कभी फुटबाल का खिलाड़ी था, अपोलो-यान के प्रतिक्रिया इंजनों, जिनसे यान की दिशा-परिवर्तन आदि का तथा मुख्य यान से चंद्र-कक्ष को काटने का काम लिया जाता है, का निर्माता है और 15 घंटे रोज काम करता है। उधर जीन हिचकॉक नामक इलेक्ट्रॉनिक शिल्पी उस उष्णता व्यवस्था में तार लगाने तथा टांका लगाने का काम करता है जिसके द्वारा भोजन और पेय पदार्थों के लिए गरम पानी उपलब्ध होता है।

वास्तव में, चंद्र-विजय में जो अन्य लाखों पात्र हैं, वे सब अपनी-अपनी भूमिकाएं उसी मुस्तैदी, सजगता, अध्यवसाय और लगन से निभा रहे हैं जितनी से अंतरिक्ष-यात्रीगण। वहां बड़े-छोटे का फर्क नहीं है क्योंकि 'जहां काम आवै सुई, कहा करे तलवार'। अतः अपने-अपने स्थान पर प्रत्येक वस्तु की महत्ता है। अपोलो-अभियान का सबसे बड़ा अंग वह धातु-दानव है जिसे क्रॉलर कहते हैं। क्रॉलर शायद उसकी धीमी गति के कारण ही इस नाम से जाना जाता है, यह यंत्र पचास लाख पाउंड से अधिक वज़नी है। इसका कार्य शनि-5 को क्षेपण-सोपान तक पहुंचाना है। इसकी गति एक मील प्रति घंटा है। यह एक करोड़ पाउंड से कहीं अधिक भार वहन करता है। इसका निर्माण केटरपिलर कंपनी के इंजीनियरों और श्रमिकों ने किया है। दूसरी ओर अनुस्वार के आकार के (छोटी-सी बिंदी के बराबर) मैगनेटोमीटर के जोड़ हैं जिनकी सहायता से चांद पर चहल-कदमी करते हुए वहां के चुंबकीय-क्षेत्र की नाप-तोल की जाती है।

अपोलो-अभियान में कार्य करने वाले सभी समर्पित श्रमिकों की एक ही भावना है 'पहले अंतरिक्ष-यात्रियों को चंद्रमा पर उतारने में मेरा हाथ है।'

लेकिन यह तो मनुष्य का केवल एक ही मुखड़ा है, मुखड़ा भी क्या, उस मुखड़े की एक मामूली-सी झलक है। मगर इस नाटक के नायक मनुष्य का एक और भी मुखड़ा है--इस नाटक को उपसंहार तक लाने के लिए उसके अपने अटूट श्रम, स्वावलंबन और अंधी-बावली धुन का मुखड़ा जिसके परिचय मात्र से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इसका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण चरण है अंतरिक्ष-यात्रियों का चुनाव और उनका शिक्षण-प्रशिक्षण।

उम्मीदवारों की योग्यताएं और उनके शिक्षण-प्रशिक्षण का संपूर्ण आयोजन आगे वाली स्थितियों को समक्ष रखकर किया गया है। पहले यह जानकारी प्राप्त की गई कि लक्ष्य तक पहुंचने और वापस लौटने में अंतरिक्ष यात्रियों को किन-किन समस्याओं-विपदाओं से जूझना पड़ेगा उन्हीं के अनुसार उम्मीदवारों की योग्यताएं निर्धारित की गई और जो गिने-चुने चालक उक्त श्रेणी में आ सके उनकी योग्यताओं के विकास के लिए एक समुचित कार्यक्रम रखा गया। चुने हुए लोग उस कार्यक्रम से सफलतापूर्वक निबटकर ही कुछ कर सकने की आशा कर सकते थे।

उम्मीदवारो के प्रथम चुनाव के लिए निम्नलिखित योग्यताओं की घोषणा की गई। आयु चालीस वर्ष से कम, 5 फीट 11 इंच से कम ऊंचाई, श्रेष्ठ शारीरिक स्थिति इंजीनियरिंग अथवा किसी समकक्ष विज्ञान-विषय में स्नातक की उपाधि, जेट विमान का नियमानुकूल चालक, टेस्ट पाइलट स्कूल का स्नातक और उड़ान का कम-से-कम 1,500 घंटो का रिकार्ड।

अतरिक्ष-यात्रियो के चयन की घोषणा 1959 मे की गई थी जिसके लिए लगभग 500 व्यक्ति उपलब्ध थे लेकिन उनमे से केवल सात चुने गए।

आरंभ मे इलेक्ट्रॉनिक गणकों की सहायता से 500 उम्मीदवारों में से केवल 69 छाँटे गए। इनमे से 55 व्यक्तियो ने अंतरिक्ष-यात्रा के लिए अपनी सहमति प्रकट की। इसके बाद क्षीण कर देने वाले शारीरिक और मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के बाद उनकी सख्या मात्र 7 रह गई।

भावी अंतरिक्ष यात्रियों के चुनाव के लिए जो कसौटी निर्धारित की गई, उसके अपने ही कारण थे। और कारण वे कठिनाइयां थीं जिनकी वजह से मनुष्य का आकाश-चारण का स्वप्न अभी तक स्वप्न ही बना हुआ था। सबसे पहली मंजिल तो कानों के पर्दे फाड़ने-वाले शोर-शराबे को पीछे छोड़ते हुए रॉकेट का अभूतपूर्व गति से ऊपर उठना था जिसके कारण शरीर पर गुरुत्वाकर्षण का दबाव कई गुना अधिक महसूस होता है। इसके बाद अकेलेपन की विभीषिका थी और गर्भाशय की-सी यातना। वायु-हीनता और भार-हीनता की समस्याएं थीं तथा 17-18 हजार मील की कम-से-कम गति से मुकाबला था, जिसमें खून उबलने लगता है। अनगिनत भीषण अनिश्चितताएं थीं। उल्कापातों, सौर-धूलि कणों तथा विकिरण आदि से मुकाबला था। किसी भी क्षण किसी भी दुर्घटना की आशंका थी। और इन शारीरिक व मानसिक स्थितियों मे मनुष्य को खुद पर और मशीन पर नियंत्रण रखना था। नियंत्रण ही नहीं, बल्कि उसका प्रयोग करना था तथा सफलतापूर्वक प्रचार करना था। वापस मे, उसके आगे हजारों काम थे जो उसे अपनी उक्त स्थिति में पूरे करने थे। ऐसी चुनौती शायद मनुष्य ने इससे पूर्व कभी स्वीकार नहीं की थी।

इस चुनौती को चुनने मे अनेक ऐसी स्थितियों से साक्षात्कार करना पड़ता था, जिनका वर्णन ही रोंगटे खड़े करने के लिए पर्याप्त है। उनमें कठोरतम परीक्षाएं इतनी कठोर और भयंकर थीं कि वायु-उड़ान के बड़े-बड़े सूरमा जवाब दे गए।

यह जांचने के लिए कि क्या भावी अंतरिक्ष यात्री पूर्ण एकान्त और निष्क्रियता को बरदाश्त कर सकेंगे, उन्हें एक 14 फीट लंबे, 7 फीट चौड़े एक ऐसे कक्ष में प्रवेश कराया जाता था जिसमें खिड़की-रोशनदान आदि की कोई गुंजाइश नहीं थी। अंदर ऐसी व्यवस्था थी कि किसी भी प्रकार की ध्वनि का आभास परीक्षार्थी को न हो सके। केवल प्रकाश का ऐसा नगण्य प्रबंध होता था, जिसमें मनुष्य अपना बिस्तर, कुर्सी, मेज तथा वह प्रकाश-हीन रेफ्रिजरेटर देख सके, जिसमे उनके लिए भोजन व पेय का प्रबंध रहता था।

यम-यातना जैसे परीक्षण

ज्यों ही उम्मीदवार उस बक्स मे प्रवेश करता था, वह नगण्य प्रकाश भी अदृश्य हो जाता था और तब वह व्यक्ति अपने आप को एक ऐसे ससार मे पाता था जहा ध्वनि और प्रकाश दोनो से कोई परिचय सभव नही था। उस व्यक्ति के पास ऐसा कोई साधन जैसे टॉर्च, लाइटर, अथवा दियासलाई इत्यादि भी नही हो सकती थी जिससे वे कुछ देख-परख सके। न उसके पास समय जानने का ही कोई साधन होता था। और तो और, उसके लिए यह मालूम करना भी असंभव था कि अमुक समय रात होनी चाहिए या दिन। कहने का अभिप्राय यह कि उसे एक नए ही प्रकार के एकांत मे 48 घटों तक लगातार रहना पड़ता था। हा, उसके शरीर पर इस प्रकार का एक यान्त्रिक जाल फैलाया रहता था जिससे यह मालूम हो सके कि कहीं उसकी श्वास-प्रक्रिया मे तो कोई फर्क नही पडा, उसको पसीने के कारण तो कोई तंगी नही हो रही अथवा उसको कोई और तनाव अथवा दुश्चिंता तो नही सता रही। इसके अतिरिक्त उसके ताप आदि का पता भी बाहर बैठे हुए डॉक्टरो को तुरत लग सकता था। अलबत्ता यह गुजाइश रखी गई थी कि परीक्षार्थी जिस समय भी चाहे, उस बक्से से बाहर आ सकता था। जानकार सूत्रों का कथन है कि जिन उम्मीदवारों ने इस परीक्षा मे भाग लिया था, उसमें से लगभग आधे लोग इसमें असफल हो गए।

किंतु यह तो पहला ही कदम था जिसमे साधारणत: यह जांचने की चेष्टा की गई थी कि ये लोग इस अभियान मे पूरी गंभीरता से प्रवेश कर भी रहे हैं अथवा यह उनके लिए एक शुगल मात्र है। तथा ऐसी स्थितियों में, जिन्हे असामान्य कहा जाए क्या वे लोग अपनी मन स्थिति को यथावत् रख सकेंगे तथा ऐसे उग्ग क्षणों मे से भी अपने ठडे दिमाग का परिचय देंगे।

अब 'भारहीनता' से टकराने की बारी थी। इस परीक्षण मे उम्मीदवारों को ऐसे वायुयान मे ऊपर-नीचे चक्कर लगाने थे जिसमे कुर्सी के स्थान पर झाग स्वरूप रबड लगी हुई थी। इसमे चक्कर लगाते समय अधिक-से-अधिक 15 सेकेण्ड के लिए भारहीनता का अनुभव होता था परंतु भारहीनता की अपनी ही अनुभूति होती है। हालाकि वास्तविक उड़ानों से यह ज्ञात हो गया कि भारहीनता की स्थिति आनंददायक है तथा उस स्थिति मे मनुष्य का हाथ अधिक सहजता और सरलता से कार्य कर सकता है, किंतु प्रारंभिक दिनो में एक परिक्रमा में 15 सेकेंण्ड की भारहीनता भी अर्थपूर्ण थी।

भारहीनता की स्थिति में उम्मीदवारों को फर्श और छत के बीच में पहुंच जाना पडता था, जहा कि उन्हें तरह-तरह की उछल-कूद करने का आदेश दिया जाता था।

अगला अभ्यास उस प्रवेग का मुकाबला करने के लिए था, जिससे प्रक्षेपक के भूमि-त्याग के समय सामना करना पडता था। धातु से बना एक विशाल शहतीर था जिसके एक सिरे पर डिब्बानुमा गाड़ी होती थी। जब उम्मीदवार उस गाडी मे

सवार हो जाता था तो उक्त शहतीर को पटबल घुमाया जाता था। घूमते समय जो वृत्त बनता था, उसका व्यास 40 फीट होता था। तब परीक्षार्थी निश्चित गति से उसके चारों ओर चक्कर लगाता था।

उम्मीदवार को एक तार द्वारा विद्युतीय कार्डियोग्राफ से सम्बद्ध कर दिया जाता था तथा श्वास-प्रक्रिया में परिवर्तनादि नोट करने के लिए उसके मुँह पर एक नली फिट कर दी जाती थी। तब उस व्यक्ति की टाँगें ऊपर कसकर बाँध दिया जाता था ताकि केंद्र से दूर भगा ले जाने वाली शक्ति (centrifugal force) को अधिक सीमा तक बर्दाश्त किया जा सके। उसके हाथ में अंगूठे के नीचे एक बटन रहता था जिससे सर के ऊपर लगी रोशनी ज्यों ही जले, वह उसे बुझा दे तथा बार-बार ऐसा ही करे। रोशनी बुझाने का प्रयोग मन की एकाग्रता के लिए था।

उस अवस्था में उम्मीदवार को 60,000 मील प्रति घंटा की गति से 10 मिनट तक वह भयंकर परिक्रमा करनी पड़ती थी तथा बल्ब बुझाने की क्रिया बदस्तूर जारी रखनी पड़ती थी। प्रक्षेपक छूटने के उस नकली प्रवेग में परीक्षार्थी को सामान्य गुरुत्वाकर्षण के मुकाबले में इससे 6 गुना अधिक गुरुत्वाकर्षण के दबाव को सहन करना पड़ता था। उस स्थिति में उम्मीदवार का रक्त बहुत भारी हो जाता था और श्वास की ऐसी दशा हो जाती थी जैसे उसके वक्षस्थल पर न जाने कितने मन बोझ रखा हो।

पटबल हिण्डोले के बाद फिर लम्बरूपहिण्डोला था जिसमें परीक्षार्थी लगभग 15 फीट के झटके को सहता हुआ ऊपर-नीचे घूमता था। वह चालक की पीठिका से बधा रहता था तथा उसके आगे एक छोटी-सी यन्त्र-मंजूषा रहती थी, जिस पर वह अपना ध्यान केंद्रित रखता था। इस परीक्षा की आवश्यकता इसलिए पड़ी थी कि अंतरिक्ष के खींच-खिंचाव वाले परिवेश में यात्री नियंत्रण कार्य भी कर सकेगा अथवा नहीं।

अंतरिक्ष-यात्रियों के लिए एक विकट समस्या लौटते समय वातावरण में से गुजरकर आना होता है तथा उस स्थिति में रगड़ के कारण इतनी जबरदस्त ऊष्मा उत्पन्न होती है कि उसमें यात्रियों सहित अंतरिक्ष यान के राख हो जाने का खतरा होता है और यह खतरा अनुमानित नहीं, यथार्थ होता है।

इस स्थिति से मुकाबला करने के लिए गरम वातावरण में पूर्वाभ्यास की लाचारी थी। इसके लिए एक ऐसा बक्सा तैयार किया गया था जिसमें परीक्षार्थी को घंटों झुलसते हुए वातावरण में बैठाकर रखा जाता था। परीक्षार्थी की प्राकृतिक प्रतिक्रियाओं का खाका बाहर खुद-ब-खुद तैयार होता रहता था। उसमें परीक्षार्थी के पसीने बहते रहते थे और घंटे-दो घंटे में ही उसका वजन घट जाता था।

एक अन्य समस्या उस शोर-शराबे को बर्दाश्त करने की थी जो प्रक्षेपक के छूटने के समय अंतरिक्ष-यात्रियों को सहना पड़ता है। इसके अभ्यास के लिए एक विशेष कक्ष तैयार किया गया था जिसमें एक धातु-शंकु फिट किया हुआ था। परीक्षार्थी

क कानो के पर्दे न फट जाए, इसकी सुरक्षा करने के वाद ध्वनि उत्पादक तथा विस्तारक यत्र चालू किया जाता था। वैसे ध्वनि के आधिक्य का विषम प्रभाव कान के पर्दे पर ही नही, मानवीय त्वचा पर भी पड़ता है। इसका कारण यह है कि हमारी त्वचा (और केश भी) ध्वनि को जज़्ब करती है तथा उष्णता उत्पन्न करती है।

जैसा कि अब सर्वविदित ही है कि पृथ्वी से चंद सैकडा मीलों की ऊचाई पर वायु नही है अत. ऐसे स्थान के लिए ऑक्सीजन का प्रबध रखना पडता है। यहा तक कि एवरेस्ट नामक हिमालय की चोटी पर चढ़ने वालो को भी ऑक्सीजन आवश्यक प्रतीत हुआ। परतु ज्यो-ज्यों ऊपर की ओर जाना पड़ता है, वायु-शून्यता वढ़ती जाती है। अत. अंतरिक्ष में श्वास-प्रक्रिया के लिए प्रबंध रखना पड़ता है। पर यदि केवल श्वास ही लेने का प्रश्न होता तो इसका इतजाम सरल होता। तथ्य तो यह है कि वायु-हीनता के कारण हमारे शरीर पर वायु का वह दवाब नही रहता जो हमारे रक्त को स्वाभाविक स्थिति में रखने का प्रमुख और एकमात्र साधन है। अन्यथा वायुहीनता की विशेप सीमा पर पहुचते ही खून खौलने लगता है।

इस समस्या के समाधान स्वरूप तीन उपाय किए गए : (1) अतरिक्ष-लिवास बनाया गया जो अंतरिक्ष-यात्रियों के लिए पहनना जरूरी था, (2) अंतरिक्ष-यान के कक्ष को दवाब-सहित रखा जाने का प्रबंध रखा गया और (3) पृथ्वी पर ही वायु-हीनता मे अभ्यास करने का उपाय किया गया।

अभ्यास के लिए एक ऐसा कक्ष तैयार किया गया जिसमे यंत्रो की सहायता से एक ऊंचाई विशेष तक का वातावरण मशीनो की सहायता से उत्पन्न किया जा सकता था। पृथ्वी पर बैठे हुए भी लाखों फीट की ऊंचाई का अनुभव परीक्षार्थी को कराया जा सकता था। इसके लिए परीक्षार्थी को अतरिक्ष-लिवास पहनाकर उक्त कक्ष मे बैठा दिया जाता था तथा वायु-हीनता की स्थिति को क्रमशः बढ़ाया जाता था। साथ ही परीक्षार्थी को कुछ ऐसे सवाल दे दिए जाते थे जो उसे साथ-साथ हल करने पडते थे। इससे शारीरिक और मानसिक—दोनो ही प्रकार के परीक्षण और अभ्यास का समुचित अवसर मिलता था।

अंतरिक्ष-यात्रा के लिए जिन तैयारियों का उल्लेख ऊपर किया गया है, वे इतनी कठोर थीं कि 500 उम्मीदवारों मे से ले-देकर केवल सात व्यक्ति ऐसे निकले थे, जिन्होने इन सभी परीक्षणो को सफलतापूर्वक झेला था। और आम आदमी को तो उक्त परीक्षणों का यह अत्यत सक्षिप्त उल्लेख, जिसे संकेत कहना ही अधिक उपयुक्त होगा, भी यम-यातना जैसा भीषण और असह्य प्रतीत होगा। किंतु यहां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि यह तो केवल शुरूआत थी। ये अभ्यास प्रथम अंतरिक्ष यात्रियो के लिए पर्याप्त माने गए थे जिन्हे पृथ्वी की कक्षा (तथा कक्षाओ) मे ही घूमना था। चद्रमा की परिक्रमा के लिए, वहां उतरने के लिए तथा वहा के भूमि पर कार्य करने के लिए ये अभ्यास काफी नहीं थे।

वास्तव मे अंतरिक्ष-यात्रियों के लिए एक समय-सारिणी बनी होती है जिसमे

उन्हें प्रातःकाल से लेकर अर्द्ध रात्रि तक व्यस्त रखा जाता था। [illegible] मे एक-एक हजार कार्य कराए जाते हैं। इस प्रकार के ये अभ्यास लगातार [illegible] चलते है जब तक कि ये उनके दूसरे स्वभाव ही नहीं बन जाते। [illegible] प्रकार की विपरीत-से-विपरीत स्थितियों मे रखा जाता है [illegible] को उनके अस्तित्व की अंतिम सीमा तक खींचकर देखा जाता था। [illegible] यह खींच-खिचाव उस सीमा तक चलता रहता था जब तक कि [illegible] नाडी 180 धडकनों तक न पहुच जाए। दिल और दिमाग के इम्तहान में [illegible] कडाई बरती जाती थी तथा यह जाचा जाता था कि मनुष्य किस सीमा [illegible] कर सकता है—सहन शक्ति के उस अन्तिम हाशिए पर उनका अभ्यास [illegible] है।

चन्द्र-यात्रा के लिए इससे कही अधिक अभ्यासों की आवश्यकता थी क्योंकि अभ्यास का सबंध आवश्यकता से ही है। अपोलो-अभियान के चंद्र यात्रियों के लिए अन्य भी कई प्रकार के परीक्षण थे, जैसे आदेश-कक्ष को उड़ाना, आदेश कक्ष को चद्र-कक्ष से जोड़ना, चंद्र-कक्ष को स्वतंत्र रूप से उड़ाना तथा खतरनाक दशा मे कक्ष से बाहर निकलना और स्वयं को बचाना। चंद्र-उड़ानों के लिए विशेष प्रकार के 'सिम्युलेटर' तैयार किए गए थे, जिनमें और अधिक रोंगटे खड़े करने वाले अभ्यासों की व्यवस्था थी।

इसके अतिरिक्त चंद्र-धरातल पर उतरने और वहां कार्य करने की अपनी भी समस्याएं थीं क्योंकि चद्रमा वातावरण रहित तो है ही, उसका गुरुत्वाकर्षण भी पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण का 1/6 है। फिर वहां उल्का-पातों तथा मार-धूलि-कणों के आक्रमण का खतरा भी बना रहता है। इसलिए उस नवीन परिस्थिति में कार्य करने के लिए ह्यूस्टन में अपोलो-11 के चंद्र-यात्रियों को संपूर्ण पूर्वाभ्यास कराया गया। इन्होंने चद्र-धरातल पर बाद मे जो भी कार्य किए, वे वास्तव में ह्यूस्टन में किए गए कार्यों की यथावत् पुनरावृत्ति मात्र थी।

उधर रूसी अतरिक्ष-यात्रियों को भी बड़े कठोर परीक्षणों से गुजारा गया था। हालाकि सोवियत संघ की अधिकाश सूचना उपलब्ध नहीं है, तो भी पता चला है अतरिक्ष-यात्रियों को लगातार एक वर्ष तक पृथ्वी से सम्पर्क रहित स्थान में रखा गया था, जहां उन्हें अपने मल-मूत्र से ही अनेक प्रकार के आवश्यक साधन जुटाने पड़ते थे। रूसी परीक्षार्थियों ने भारहीनता में कार्य करने का अभ्यास पानी के अंदर किया था क्योंकि ऐसा समझा जाता है कि अंतरिक्ष में वैसी ही भारहीनता से साक्षात्कार होता है, जैसा कि हम यहां पानी के अन्दर अनुभव करते हैं। अक्टूबर 1968 में सोवियत सूचना सेवा ने निम्नलिखित सूचना 'स्वतंत्र संसार' को दी थी ...

'25 से 40 वर्ष तक की आयु के चार युवकों ने पृथ्वी से अलग हुए बिना सौ से अधिक बार भारहीनता का अनुभव किया है। सोवियत वैज्ञानिकों ने ऐसा तरीका निकाल लिया जिसके द्वारा पानी की गहराई में वैसी ही भारहीनता बनाई

जा सकती है जैसी कि बाह्य अतरिक्ष मे है प्रयोग-कर्ताओ न अतरिक्ष यान का नमूना प्रयोग मे लाते हुए अनरिक्ष मे कार्य करने का अभ्यास किया।

'पानी के नीचे प्रयोगो के समय अनुसधानकर्ताओं ने सामान और सामग्री को इधर से उधर चलाया तथा उनको अतरिक्ष-यान के नमूने के अंदर रखा और बाहर निकाला। उन्होने अंतरिक्ष-यात्री को वापस लाने की क्रियाओं की भी आवृत्ति की। कुछ व्यापारो मे एक आदमी ने अपना अंतरिक्ष-यान छोड दिया और जहां तक जीवन रज्जु पहुचती थी, वहा तक चला गया। जीवन-रज्जु दुर्बोध तरीके से बांधी हुई थी। इसके बाद वह अपने यान मे लौट आया।'

वैसे भारहीनता की स्थिति ऐसी विषम ओर विपरीत नहीं निकली जैसी कि पहले समझी जाती थी। बस, उसके लिए एक ही अनिवार्यता थी और वह यह कि मनुष्यों और जंतुओं को बांधकर रखना पडता है अन्यथा वे अधर मे तैरने लगती है। भारहीनता मे तरल पदार्थो के भी छोटे-छोटे टुकड़े होकर वायुहीनता में छिटक जाते है।

फिर भी, अपोलो-अभियान मानव इतिहास का एक ऐसा विराट् अभियान है जिससे तुलना करने के लिए कोई अन्य अभियान नजर नहीं आता। जैसा कि स्पष्ट ही है, अपोलो-अभियान के तीन प्रमुख अग है—(1) मशीन, (2) मानव और (3) मशीन + मानव। ऊपरी दृष्टि से देखे तो यह कोई बहुत बडी बात लगती भी नहीं किंतु सूक्ष्मता और विराटता—दोनो ही आयाम इस अभियान के प्राण है। इस अभियान के यंत्र मे शनि-प्रक्षेपक और क्रॉलर जैसे दानवीय हिस्से भी है और ऐसे सूक्ष्म पुर्जे भी है, जिन्हें अन्य यंत्रो की सहायता के बिना देखा नहीं जा सकता और मनुष्य के करतब भी मशीन से कम चमत्कारी नहीं है।

9. कीमत–अंतरिक्ष अभियान की

एक बार ग्रिसम ने कहा था, 'यदि हम मर जाए तो हम चाहेंगे कि लोग इसे स्वीकार कर लें। हमने खतरनाक काम में हाथ डाला हुआ है और हम यह आशा करते है कि यदि हमें कुछ हो जाए तो उससे कार्यक्रम मे विलंब नहीं होगा। अंतरिक्ष-विजय जान जोखिम में डालने योग्य है।'

ग्रिसम के इस पूर्व-बोध के कारण थे। अंतरिक्ष-अभियान है ही खतरनाक काम और ऐसा खतरनाक कि खतरो की सीमा नहीं। यह कहना कठिन ही था कि कब क्या हो जाए। और आम आदमी का यह ख्याल भी हो चला था कि अंतरिक्ष-विजय का कार्यक्रम बडी सफलता से आगे बढ रहा है, अनुभव यह कहता है कि बलिदान होना चाहिए क्योंकि प्रत्येक प्रयत्न अंततः कीमत मांगता है। अन्तरिक्ष-अभियान की कीमत मानव-बलि थी।

और यह मानव-बलि चढ़ी 27 जनवरी, 1967 को जब शनि-1 प्रक्षेपक के सिर पर अंतरिक्ष-यान में बैठे तीन अंतरिक्ष-यात्रियों ग्रिसम, व्हाइट और चैफ़ी पलक झपकते भस्मीभूत हो गए।

वास्तव मे, ये तीनों यात्री अपोलो की प्रथम समानव उड़ान के लिए अभ्यास कर रहे थे। इनका कक्ष शुद्ध आयोजन के दवाब में था। बाह्य जगत से इनका संबद्ध केवल रेडियो और टेलीविज़न के ही माध्यम से था।

काउंट डाउन चला हुआ था कि अचानक रेडियो-शृंखला पर चैफ़ी की आवाज़ सुनाई दी–'अंतरिक्ष-यान में आग लग गई।'

बचाव अधिकारी तीन मिनट के अंदर उनके पास पहुंच गए, किंतु तब तक तो सब कुछ स्वाहा हो चुका था। अभी चंद मिनट पहले जो अंतरिक्ष-अभियान के तीन हृष्ट-पुष्ट नायक स्वस्थ-प्रसन्न अंतरिक्ष-विजय का पूर्वाभ्यास कर रहे थे, क्षणों मे जली हुई हड्डियों के ढाचों में बदल गए।

जैसा कि ज्ञात ही है, इन तीन वीर पुरुषों का बलिदान व्यर्थ नहीं गया। आरंभ मे ऐसा अवश्य लगा, जैसे कि इस दुर्घटना के कारण चंद्र-विजय के प्रयासो में ढील पड जाएगी किंतु इस आत्मोत्सर्ग ने अपोलो-अभियान को सफल बनाने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ पुरुषों को एक अद्भुत प्रेरणा प्रदान की

वास्तव में, यह दुर्घटना इस अभियान के आरंभ में ही घट गई थी। सन् 1961 और 1965 के मध्य कम-से-कम दस शनि-1 प्रक्षेपक छोड़े गए थे और इन उड़ानों में कोई गड़बड़ी नजर नहीं आई थी। शनि-1 के बाद शनि-1-बी को उड़ाकर देखा गया था और वह भी सफल रहा था। यह परीक्षण 26 फरवरी, 1966 को हुआ था। इसके अतिरिक्त शनि-1-बी प्रक्षेपक के अपोलो-यान सहित दो परीक्षण और सफलतापूर्वक किए जा चुके थे, जिसमें अमानव उड़ानों का आश्रय लिया गया था।

मानव बलि

क्षेपण-गद्दियों पर खड़े अपोलो की इस दुखद घटना की जांच तत्काल आरंभ की गई। जलने के बाद जो कुछ बचाया जा सका था, उसी को लेकर जांच पड़ताल की गई किंतु कोई स्पष्ट संकेत हाथ नहीं आया। अलबत्ता अटकलें अवश्य लगाई गई। समझा यह गया कि शॉर्ट सर्किट के कारण ऑक्सीजन ने आग पकड़ ली। अब यह तथ्य भली-भांति ज्ञात है कि ऑक्सीजन आग नहीं पकड़ती। पर जानकार लोगों का कथन है कि दबाव वाली विशुद्ध ओषजन न केवल स्वयं जल उठती है, बल्कि बहुत से ऐसे सामान को भी जला सकती है, जिसे साधारणतया अग्नि से रक्षण के लिए प्रयुक्त किया गया हो। इस दुर्घटना के बाद इस विषय पर भी काफी बहस-मुबाहसा चला कि अंतरिक्ष-कक्ष में विशुद्ध ऑक्सीजन का ही प्रयोग किया जाए अथवा उसमें मिलावट की जाए। यहां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा कि रूसी वैज्ञानिक ऑक्सीजन के साथ नाइट्रोजन नामक गैस का प्रयोग करते हैं।

खैर, कुछ भी कहा जाए, अभिशाप का भी एक पक्ष वरदान सिद्ध होता है। अपोलो-दुर्घटना के संबंध में भी यही सही है। वास्तव में, अमरीकी विज्ञान अपने राष्ट्रपति के वचनों को सत्य सिद्ध करने की कोशिश में आवश्यकता से अधिक उतावला हो उठा था। इस दुर्घटना ने उसे नवीन दृष्टि दी। वहां के वैज्ञानिकों ने अपने प्रयत्नों का पुनर्मूल्यांकन किया और जो सूत्र कमजोर सिद्ध हुए उन्हें बदल दिया। जैसे कि विशुद्ध ऑक्सीजन के स्थान पर ऑक्सीजन और नाइट्रोजन का मिश्रण प्रयुक्त किया जाने लगा। जिस अर्द्ध द्वार को खोलने में कम-से-कम डेढ़ मिनट लगता था, उसे ऐसा बनाया गया कि वह सेकेण्डों में खोला जा सके। आग पकड़ने वाली सभी सामग्री बदल दी तथा ऐसा सामान लगाया गया जो आग से बचाने वाला हो। अंतरिक्ष-पोशाक में भी संशोधन किया गया तथा और अनेक ऐसे ही कदम उठाए गए।

इससे भी बड़ा आश्चर्य इस बात का है कि इस दुर्घटना का तात्कालिक प्रभाव सोवियत प्रयत्नों पर भी पड़ा और ऐसे भयंकर रूप से पड़ा कि कम-से-कम चंद्र-विजय की दिशा में तो रूसी विज्ञान पिछड़ ही गया।

लौह-आवरण वाला देश कहलाने के कारण सोवियत संघ के विषय में अनेक प्रकार की किंवदंतियां आमतौर पर प्रचलित रहती हैं। इन किंवदंतियों के पीछे कौतूहल, जिज्ञासा, प्रतिस्पर्धा तथा कभी-कभी दुर्भावना का भी भाव रहता है। फिर अंतरिक्ष-

विजय की दिशा मे सोवियत यूनियन ने पहल कर सारे ससार को स्तंभित कर दिया था, अतः यह अनुमान लगाना स्वाभाविक ही था कि बिना नुकसान उठाए उस देश के विज्ञान को यह सफलता नही मिली होगी। इसीलिए 1962-67 के मध्य रूस मे अनेक प्रकार की दुर्घटनाए होने की खबरे कई देशो के पत्रो मे प्रकाशित हुई।

इन कल्पना-जनित खबरों के पक्ष-विपक्ष में कुछ कहना व्यर्थ ही होगा क्योकि जहा व्यावहारिक ज्ञान यह सोचने पर विवश करता है कि प्रत्येक प्रयत्न का मूल्य चुकाना ही पडता है, वहा चमत्कार-पक्ष की भी सर्वथा अवहेलना करना कठिन होगा। बहरहाल अतरिक्ष-विजय के निमित्त मानव-जीवन के रूप मे सोवियत सघ को अब तक जो भी मूल्य चुकाना पड़ा होगा, उसके विषय में निश्चित जानकारी कोई नही थी।

किंतु लगा ऐसा जैसे दुर्घटना के क्षेत्रो मे सोवियत विशिष्टता को स्वीकार कर ही लिया था तभी रूसी अतरिक्ष-विज्ञान घातक रूप से घायल हो गया। और बाद मे यद्यपि इस आघात से वह निकल गया, फिर भी उसके जख्म अभी तक भर नही।

हुआ यह कि 23 अप्रैल, 1967 को रूस के अंतरिक्ष अड्डे से सोयुज-1 नामक एक नया अंतरिक्ष-यान उडा जिसमे उनका अनुभवी चालक व्लादिमिर कोमारॉफ़ सवार था। इस उड़ान का लक्ष्य 'तास' ने बतलाया था—'नवीन समानव यान का परीक्षण, यान के यंत्रों की जांच-पड़ताल, वैज्ञानिक और भौतिक-प्राविधिक प्रयोगो का विस्तार तथा मानव-संयत्र पर अतरिक्ष-उडान के फलस्वरूप होने वाले ओषधि और जीव-विज्ञान संबधी अध्ययन जारी रखना।'

मॉस्को से प्रकाशित होने वाले एक बुलेटिन में तो यहा तक घोषणा की गई थी कि कोमारॉफ स्वस्थ और प्रसन्न है। परतु कुछ ही घंटों बाद मॉस्को रेडियो ने कोमारॉफ की मृत्यु की घोषणा करके सारे ससार को सुन्न कर दिया।

कोमारॉफ की मृत्यु की घोषणा इन शब्दों में की गई :—

'सी. पी. एस. यू. केंद्रीय समिति, यू. एस. एस. आर. सर्वोच्च सोवियत का प्रेजीडियम तथा मत्रिमंडल अत्यंत शोक के साथ यह घोषणा करते है कि प्रथम अतरिक्ष-अन्वेषको तथा अंतरिक्ष-यानों के प्रतिभावान परीक्षको में से एक, सी. पी. एस. यू. के सदस्य, उडाके अंतरिक्ष-यात्री तथा सोवियत संघ के नामक कर्नल, इंजीनियर व्लादिमिर कोमारॉफ़ की आज उस समय दुखान्त रूप से मृत्यु हो गई जब वे सोयूज-1 नामक अंतरिक्ष-यान की परीक्षण उड़ान पूरी कर रहे थे।'

मॉस्को रेडियो के अनुसार जब सोयुज़-1 पृथ्वी से साढ़े चार मील की दूरी पर था तो उसकी उड़न छतरियो के धागे उलझ गए जिसके कारण यान सीधा पृथ्वी पर गिर पड़ा।

भले ही सोवियत संघ मे इससे पूर्व दुर्घटनाए हुई हों किंतु इस दुर्घटना ने रूसी अतरिक्ष-विज्ञान की कमर तोड़कर रख दी और काफी समय तक—कम-से-कम 6 महीनों तक कोई समानव अतरिक्ष-यान बैकनूर के अंतरिक्ष अड्डे से नही उड़ा।

कहने का अभिप्राय यह कि इन दारुण दुर्घटनाओं ने दोनों ही देशों की 'अति' पर अर्गला लगाकर उन्हें अधिक सावधानी के साथ आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया। एक ओर इन चार उडाको ने आत्म-बलिदान द्वारा अंतरिक्ष-उडान का मार्ग प्रशस्त किया, दूसरी ओर उडानों के आयोजको ने धैर्य से कार्य करना आरभ किया जिसके कारण अतरिक्ष-विजय के आयोजन मे गभीरता तथा परिपक्वता के दर्शन हुए।

9 नवम्बर, 1967 को शनि-5 का परीक्षण किया गया। यह वास्तव मे अपोलो-4 की उड़ान थी जिस पर कोई मनुष्य सवार नहीं था। इसके बाद 22 जनवरी, 1968 को अपोलो-5 के द्वारा चंद्र-कक्ष का परीक्षण किया गया। यह उडान भी अमानव थी। 4 अप्रैल, 1968 को अपोलो-6 की अमानव उडान की गई। इसके द्वारा चंद्र-कक्ष का पुनः परीक्षण किया गया तब कहीं जाकर अपोलो-7 ने समानव उडान का साहस किया।

अपोलो-7 की उड़ान के लिए उसके अंतरिक्ष-यात्रियों वॉल्टर शिरा, वॉल्टर कनिघम और डॉन ईज़ल को 19 महीने का अतिरिक्त प्रशिक्षण अंतरिक्ष-आयोजन अधिकारियों की सतर्कता का परिणाम था।

11 अक्टूबर, 1968 का यह दिन अंतरिक्ष-यात्रियो और अधिकारियों—दोनो ही के लिए बहुत भारी था। और तो और, आम आदमी भी यही मना रहा था कि उस भीषण दुर्घटना की पुनरावृत्ति न हो। यों उस दुर्घटना के बाद यान में क्रातिकारी परिवर्तन किए गए थे और यात्रियों की सुरक्षा का हर मुमकिन प्रबध किया गया था। परिणाम यह हुआ था कि अंतरिक्ष-यान का भार बढ़ गया था और अतरिक्ष-पोशाक भी वज़नी हो गई थी पर सुरक्षा का विश्वास भी बढ़ गया था।

ग़नीमत यही रही कि 700 टन वज़न का शनि-1-बी प्रक्षेपक सही-सलामत क्षेपण गद्दियों से ऊपर उठ गया था।

बाद में शिरा ने सूचना दी थी—'अंतरिक्ष-यान स्वप्न की तरह चह रहा है।'

11 दिनों की अतरिक्ष-यात्रा के दौरान अंतरिक्ष-यात्रियो को सामान्य कार्यो के अतिरिक्त दर्जनो यंत्रों, सैकड़ों स्विचों, हजारों बटनों, नियंत्रण-यंत्रों, दिशा-निर्धारण यत्रों, संचार व्यवस्था तथा जीवन-सुरक्षा उपकरणों का परीक्षण करना था जो कि भविष्य की उड़ानों में प्रयुक्त किए जाने थे। इसके अतिरिक्त अपने प्रक्षेपक के ईधन-चुके अतिम चरण के साथ घाट लगने की क्रिया भी इन लोगों को करनी थी। अंततः यह परीक्षण मुख्य यान और चंद्र-यान को घाट लगाने और उन्हें संबद्ध करने में उपयोगी सिद्ध होना था।

घाट लगाने के क्रिया इन अंतरिक्ष-यात्रियो ने बडी सफलता के साथ की। इसके लिए शिरा को दो बार मुख्य इजन चलाना पड़ा जिसके फलस्वरूप आदेश-कक्ष और शनि-1-बी का अंतिम चरण इतने निकट आ गए कि उनमें फीटों की ही दूरी रह गई।

इस उड़ान के दौरान तीनों अतरिक्ष-यात्री जुक़ाम से इस कदर जकड़ गए कि

हालाकि उडान के दौरान गर्म कॉफी का मज़ा लेने वाले वे पहले ही यात्री थे किंतु कुछ निर्धारित टेलीविजन कार्यक्रम उन्हे रद्द कर देने पडे। फिर उन्होने टेलीविजन पर 'पृथ्वी के तथा अपने कक्ष के' बडे मनोहारी चित्र प्रदर्शित किए। इन्ही मे से एक टेलीविज़न के प्रदर्शन के दौरान भूमि के नियत्रण केंद्र से एक अन्य अतरिक्ष-यात्री टॉम स्टैफोर्ड ने उन्हे याद दिलाया था, 'इस प्रदर्शन के लिए दाढ़ी बनाना तो आप लोग भूल ही गए।'

अपोलो-7 ने पृथ्वी की 163 परिक्रमाए की थीं तथा 11 दिनो तक लगातार अतरिक्ष मे रहने के बाद 22 अक्टूबर, 1968 को समुद्र मे उतर आया था।

इस उड़ान से अधिकारीगण बड़े संतुष्ट थे क्योंकि आदेश-कक्ष का परीक्षण इसी उड़ान द्वारा किया गया था।

पर इस सफल उडान से संतुष्ट होकर बैठ जाना अमरीकी अतरिक्ष-विज्ञान के लिए पर्याप्त नहीं था। असल में प्रतियोगिता का युग गुजरा नहीं था तथा सोवियत वैज्ञानिक दिन-रात अपने कार्य मे व्यस्त थे। उनकी व्यस्तता को लेकर ही पश्चिम मे ऐसी अफवाह फैली हुई थी कि सोवियत संघ शनि-5 से भी विशाल प्रक्षेपक बना रहा है। तभी 27 अक्टूबर, 1968 को सोयुज-3 पृथ्वी की कक्षा में जा विराजा। इस यान पर जॉर्जी बर्गोई नामक अंतरिक्ष-यात्री सवार था।

सोयुज-3 की घोषणा ने विश्व को चक्कर में डाल दिया था कि तभी ज्ञात हुआ कि अमानव यान सोयुज-2 एक दिन पूर्व ही अंतरिक्ष मे पहुंच चुका था।

सोयुज़-3 के चालक ने भी टेलीविज़न चित्र पृथ्वी पर भेजे और सोयुज़-2 के साथ घाट लगने की प्रक्रिया में रुचि दिखलाई। दोनों सोयुज़ कई बार चद सैकड़ा फीट की ही दूरी तक रह गए और काफी समय तक साथ-साथ चलते रहे। हां, सम्मिलन की चेष्टा नहीं की गई। वास्तव में, सम्मिलन की प्रक्रिया अक्टूबर, 1967 में दो अमानव अंतरिक्ष-यानों द्वारा की जा चुकी थी।

बर्गोई 61 चक्कर लगाकर सोवियत भूमि पर उतरा था।

एक बड़ी नयी छलांग

जैसा कि बाद में रूसियों द्वारा स्पष्ट किया गया, सोयुज़ यान में अपने ढंग से वे सभी विशेषताएं थीं जो अपोलो यान में निर्मित की गई थीं। सोयुज़ में तीन ही कक्ष थे तथा उसमें तीन ही यात्री सवार हो सकते थे। उसका आदेश-कक्ष भी शेष भाग से कटकर हवाई छातो की सहायता से वातावरण के मध्य से सही-सलामत पृथ्वी पर उतर सकता था। उसमें भिन्न व्यवस्थाएं भी उनसे मिलती-जुलती ही थीं जैसी कि अपोलो यान पर उपलब्ध थीं। यह यान 30 दिनों तक अंतरिक्ष में रह सकता था।

सोवियत विज्ञान अकादमी के प्रधान ने बर्गोई की उड़ान को अंतरिक्ष अन्वेषण

स्पष्ट शब्दों में कहा जाए तो सोयुज़ शृखला के यान चद्रमा पर पहुचने मे समर्थ प्रतीत होते थे।

किंतु कारण चाहे कोई भी हो, सोवियत सघ की नीति मनुष्य को चंद्रमा पर उतारने की जल्दी के प्रतिकूल प्रकट हुई थी। 1968 मे ही सोवियत प्रोफेसर लियोनिड सिडॉफ ने न्यूयार्क में एक सवाददाता सम्मेलन में कहा था—

'चद्र-दौड़ मे हम सयुक्त राज्य के प्रतिद्वंद्वी नही है और न ही भविष्य मे अतरिक्ष-यात्रियो को वहां भेजने की हमारी कोई योजना है।

'अतरिक्ष-यात्रियों को चद्रमा पर भेजने की बात इस समय हमारी विषय-सूची म नही है। चंद्रमा अन्वेषण संभव है कितु वह सर्व-प्रधान बात नहीं है।

'चंद्र-अन्वेषण का कार्यक्रम इन प्रयोगों की सफलता पर निर्भर करता है। क्योंकि इन परीक्षणो के अनेक परिणाम हो सकते है, इसलिए चद्रमा पर उतरने के विषय मे इस समय निस्संदेह होना संभव नहीं है।'

प्रो. सिडॉफ़ का इशारा था कि चंद्रमा की समानव उड़ान ज़ोद प्रक्षेपक की सफलता पर निर्भर करती थी।

सोवियत संघ केवल ज़ोद की प्रतीक्षा मे ही समानव चंद्र-अन्वेषण को टालता रहा हो, ऐसा नहीं लगता। वास्तव मे लगता ऐसा है कि कोमारॉफ़ की मृत्यु के पश्चात् रूसी नीति इस तर्क पर आ टिकी थी कि पूर्ण सुरक्षा की गारटी के बिना मानव जीवन को चंद्रमा की जोखिम मे नहीं फंसाना चाहिए, तथा जो कार्य यंत्र द्वारा हो सकते है, उनको सपन्न करने के लिए यथासभव मानव-सयंत्र को नष्ट नहीं करना चाहिए। वैसे 'जोंद' की सफलता की बात वज़नदार थी।

ज़ोंद शृंखला

अब यदि सोवियत संघ के 'जोद-अभियान' पर दृष्टिपात करना हो तो हमें 1964 में लौटना पड़ेगा, जब अप्रैल मे ज़ोंद-1 छोडा गया था। इसका लक्ष्य, प्रकट रूप से चंद्रमा के फोटो लेना था।

ज़ोद-2 नवम्बर, 1964 मे छोडा गया। इसका लक्ष्य चंद्रमा का अध्ययन था।

ज़ोंद-3 जुलाई, 1965 में छोड़ा गया। इसका लक्ष्य चंद्रमा के पिछले पक्ष के फोटो-चित्र लेना था, जिसमें इसे पूरी सफलता प्राप्त हुई। यों 1959 मे लूना-3 ने चांद के पिछले पक्ष के चित्र लिये थे। जोंद-3 ने भी उसी पक्ष के चित्र लिये किंतु इनके स्थल लूना-3 द्वारा चुने गए स्थलों से भिन्न थे। ज़ोंद-3 द्वारा लिये गए चित्र लूना-3 द्वारा लिये गए चित्रों से बेहतर थे जिनके आधार पर चाद के अदृश्य पक्ष का एक नक्शा भी तैयार किया गया।

ज़ोद-4 मार्च, 1968 में छोड़ा गया। इसका लक्ष्य बताया गया था पृथ्वी के अतरिक्ष का अन्वेषण परतु सच्चाई इससे भिन्न सिद्ध हुई ' ज़ोद-4 चांद की ओर गया था तथा उसके निकट से गुजरता हुआ आगे निकल गया था।

ज़ोंद शृंखला को मात्र अंतरिक्ष-अन्वेषण का साधन मानकर चुप हो जाना बुद्धिमत्ता नहीं लगी। यह ध्यान तब पैदा हुआ जब ज़ोंद-5 छोड़ा गया तथा वह चंद्रमा की परिक्रमा करके हिंद महासागर में सकुशल उतर आया। इस शृंखला के माध्यम से एक अन्य शक्तिशाली प्रक्षेपक का परीक्षण किया जा रहा था जो एक करोड़ पाउंड का आघात उत्पन्न कर सकता था।

ज़ोंद-5 को आरंभ में उसी आसानी से लिया गया, जिससे प्रारंभिक चार ज़ोंद लिये गए थे। इस अमानव यान का महत्त्व तो तब ज्ञात हुआ, जब इंग्लैंड की जॉड्रल बेंक वेधशाला के बर्नार्ड लॉवेल ने यह रहस्योद्घाटन किया कि ज़ोंद-5 चंद्रमा की परिक्रमा करने के बाद निर्धारित स्थान पर समुद्र में उतरा है।

लॉवेल के इस रहस्योद्घाटन से पश्चिमी विज्ञान के पांवों के नीचे की ज़मीन खिसक गई। अमरीकी अंतरिक्ष-वैज्ञानिकों को यह ज्ञात था कि चंद्र-विजय की दिशा में अगला कदम अमानव यान द्वारा चंद्रमा का चक्कर लगाना तथा उसे ज्यों का त्यों पृथ्वी पर उतार लेना है किंतु 'नासा' ने यह कार्य करके नहीं दिखाया था तथा सोवियत संघ इस मामले में भी बाज़ी मार ले गया था।

ज़ोंद-5 15 दिसम्बर, 1968 को उड़ाया गया था। पहले ज़ोंद-5 पृथ्वी की ही कक्षा में घूमता रहा। जब पृथ्वी और चांद—दोनों की स्थिति उसकी उड़ान के अनुकूल हो गई तो अंतरिक्ष-यान पर लगा इंजन स्वत: चालू हो गया और उसने यान को 25,000 मील प्रति घंटा की वह गति दे दी जिससे पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति का भेदन किया जा सकता है। जैसे ही ज़ोंद-5 चांद के निकट पहुंचा, वेग घटाने वाले स्वचालित लघु प्रक्षेपकों ने उसकी गति इतनी कम कर दी कि वह चांद की कक्षा में प्रविष्ट हो गया। चंद्र-भूमि से ज़ोंद-5 की दूरी लगभग 1,200 मील थी। वापसी उड़ान में वातावरण में प्रविष्ट होते समय उसकी गति फिर स्वचालित यंत्रों द्वारा कम कर दी गई। तब हवाई छातों के सहारे वह पूर्व निर्धारित स्थान पर हिंद महासागर में उतरा।

ज़ोंद-5 की इस सफल उड़ान ने यह सिद्ध कर दिया कि सोवियत वैज्ञानिकों ने पृथ्वी-चंद्रमा-पृथ्वी की वापसी यात्रा तय करने में महारत हासिल कर ली है।

अंतरिक्ष-यात्रा की दिशा में यह सोवियत सिद्धि निश्चय ही मील का पत्थर था, जिसकी सराहना सारे संसार ने की। यह सराहना पश्चिम के लिए थोड़ी आशंका में बदल गई जब कुछ दिनों बाद 'प्रावदा' ने यह रहस्योद्घाटन किया कि ज़ोंद-5 पर कुछ जीवित प्राणी भी सवार थे जिनमें कछुवे, मक्खियां, कीड़े तथा गेहूं, जौ और चीड़ के पेड़ों के बीज शामिल थे। यह घोषणा भी प्रावदा ने की कि ज़ोंद-5 की उड़ान का एक लक्ष्य दूर-संचार व्यवस्था का भी परीक्षण करना था।

अब इस बात में अधिक संदेह नहीं रह गया था कि सोवियत संघ का अगला कदम चांद पर अथवा चांद के चारों ओर मानव भेजना ही होगा क्योंकि प्रथम तो ज़ोंद-5 ने उनकी तैयारी का आभास दे दिया था, दूसरे अंतरिक्ष-विजय में रूस बराबर

पहल करता आया था। इसी आधार पर पेरिस के एक पत्र ने ज़ाद 5 की सफलता पर निम्नलिखित टिप्पणी प्रकाशित की थी :–

'पृथ्वी का पहला उपग्रह, अतरिक्ष में पहला मानव, अंतरिक्ष में प्रथम संतरण, प्रथम चंद्र-यान, पहली बार चद्र-भूमि पर बिना झटके यान उतरना और अब पहली बार ही पृथ्वी से चलकर चंद्रमा का चक्कर लगाने के बाद यान की भूमि पर वापसी, जोद-5 की उड़ान के रूप में अंतरिक्ष-यात्रा की इस नवीन और विशाल मंज़िल तक पहुचने के लिए कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा, इसकी कल्पना करना सरल नही है।'

अमरीकी अंतरिक्ष अधिकारी इस आघात से संभले भी न थे कि 10 नवम्बर, 1968 को ज़ोद-6 ने पख फैला दिए।

यदि उडान की दृष्टि से देखें तो ज़ोंद-6 ने ज़ोंद-5 से अधिक कोई कार्य नही किया—कम-से-कम स्पष्ट रूप से नहीं। सिवाय इसके कि जोंद-5 पानी में उतरा था और जोंद-6 खुश्की पर। और तो और, जोद-6 पर प्राणी भी उसी प्रकार विद्यमान थे जैसे कि जोंद-5 पर थे। कितु जोद-6 के विषय में जानकारी देने के मामले मे रूसियो ने अपेक्षाकृत कुछ अधिक उदारता का परिचय दिया। ज़ोंद-6 के विषय मे उन्होने कई तथ्य उद्‌घाटित किए : (1) ज़ोंद-6 का उद्देश्य चंद्रमा के पथ पर तथा चद्रमा के निकट विकिरण की मात्रा मापना था तथा यह पाया गया कि वहां विकिरण की मात्रा घातक सिद्ध होने योग्य नहीं थी। (2) ज़ोद-6 का एक भाग अलग हो सकता था और पृथ्वी पर उतरा था—शेष हिस्सा ऊपर ही छूट गया था।

जोद-6 ने चद्र-भूमि के कुछ चित्र लिये थे, जिनके विषय में यह अफवाह थी कि ये चित्र चांद के धरातल के पहले लिये गए चित्रों से कहीं अधिक स्पष्ट तथा निर्भर योग्य थे किंतु उन चित्रों का प्रकाशन नहीं किया गया। अलबत्ता सोयुज़ और जोंद के चित्र प्रकाशित किए गए जिनको देखकर दोनों मे कोई मौलिक अंतर कर पाना कठिन था। लगता ऐसा था कि पृथ्वी की कक्षा में जो सोयुज़ था, थोड़े-बहुत अंतर के साथ चद्रमा की कक्षा मे वही ज़ोंद था।

प्रश्न उठता है कि जब ज़ोंद-शृंखला ने चंद्र-प्रतियोगिता में सोवियत संघ को अमरीका से आगे कर दिया था तो चांद पर मानव को भेजने में रूस क्यों पिछड गया ?

जानकार लोग इसका उत्तर भिन्न-भिन्न तर्कों पर आधारित करते हैं पर इसका एक कारण समझ में आता है वह मूल्य जो रूस को अंतरिक्ष-विजय के आरंभिक चरण में चुकाना पड़ा था। चर्चा कोमारॉफ की नहीं है—चर्चा गागरिन की है।

जी हा, गागरिन वह प्रथम मानव था जिसने सबसे पहले देवताओं के देश—अतरिक्ष मे प्रवेश किया था। गागरिन ने इस मिथक को तोडा था कि मनुष्य मरकर ही अंतरिक्ष मे पहुच सकता है। बल्कि अंतरिक्ष-विजय का प्रथम द्वार उस महामानव ने ही खोला था। सोवियत सघ को गागरिन पर बड़ा भरोसा था। जहा

तक लौह आवरण के पीछे के समाचारों में से सत्य ढूंढ निकालने की बात है, जानकार लोगों ने यही निष्कर्ष निकाला था कि गागरिन को चद्रमा पर भेजने की तैयारियां की जा रही थीं। किंतु यह संभव नहीं हुआ। 28 मार्च, 1968 को यूरी गागरिन की मृत्यु का समाचार सारे संसार में जंगली आग की तरह फैल गया। गागरिन की मृत्यु का कारण यह बतलाया गया था कि वह 27 मार्च को एक प्रशिक्षण-उड़ान के दौरान वायुयान टूटने से मारा गया। उसी के साथ एक अन्य उड़ाके सेरेजिन की भी मृत्यु हो गई थी।

गागरिन की मृत्यु

बाद में सोवियत यूनियन के एक समाचार पत्र 'त्रुद' ने उन परिस्थितियों का वर्णन प्रकाशित किया, जिनमें गागरिन और सेरेज़िन की हृदय-विदारक मृत्यु हुई थी। कहते है कि वे दोनों उड़ान के किसी अभ्यास में व्यस्त थे। उन्होंने अपना लक्ष्य पूरा भी कर लिया था परंतु न जाने कैसे उनका यान नीचे गिर गया और पृथ्वी से टकरा कर चूर-चूर हो गया।

गागरिन की मृत्यु का कारण चाहे कुछ भी रहा हो तथा उक्त कारण के मूल मे चाहे कितना बड़ा ही लक्ष्य हो किंतु इसमें कोई संदेह नही कि गागरिन की मृत्यु न केवल सोवियत संघ के लिए बल्कि समस्त संसार के लिए भी सचमुच दुखदायी थी। लोगों को गागरिन से बड़ी-बड़ी आशाएं थीं, और लगता है, सोवियत संघ के चद्र-विजय का तो बहुत कुछ दारोमदार ही गागरिन पर था। अत: उसकी अकाल मृत्यु होते ही रूसी विज्ञान को एक जबरदस्त झटका लगा। हालांकि गागरिन के अभाव मे भी सोयुज़ और ज़ोंद अभियान जारी रहे तथा सही दिशा में प्रगति करते रहे किंतु चद्रमा पर मनुष्य को भेजने की दिशा में रूसी विज्ञान ढीला पड़ गया। उनकी नीति कुछ ऐसी हो गई थी कि जहां लौह-यंत्र से काम चले, वहां मानव-यंत्र का प्रयोग नहीं करना चाहिए। इस नीति का एक परोक्ष यह भी हो सकता है कि सोवियत अतरिक्ष-विज्ञान अपने अंतरिक्ष-यात्रियों के लिए अभी उतनी सुरक्षा नहीं जुटा पाया था कि वह मनुष्य को चांद पर उतारने का दुस्साहस करे।

फिर भी अंतरिक्ष-अन्वेषण बहुत खतरनाक कार्य है—इसमें दो राय नहीं हो सकती। और प्रकृति का तो नियम ही है कि यहां प्रत्येक उपलब्धि का मूल्य चुकाना पड़ता है। प्रत्येक प्रयत्न के लिए कुछ देना पड़ता है। बिना जोखिम उठाए तो कोई भी सिद्धि नही मिलती। तभी तो किसी ने कहा है कि जितनी बड़ी जोखिम उठाइए, उतनी ही बड़ी सफलता पा लीजिए।

10. सोमदेव की घाटी

प्राणी की उत्पत्ति पानी से हुई है। इस तथ्य को हिंदुओं ने 'मत्स्य' (मच्छ) अवतार कहकर पुष्ट किया है। करोड़ों वर्ष पानी में ही बंदी रहने के पश्चात् ज्यों-ज्यों पानी घटता गया तथा खुश्की नज़र आती गई, पानी का जीव पृथ्वी पर आया तथा हिंदुओं ने उसे 'कच्छ' अवतार कहा। खुश्की में बंदी बने रहने की प्राणी की गाथा शायद और भी अधिक लंबी है। उसको हवा में पहुंचना था और उसकी यह इच्छा 'वायु-यान' के निर्माण ने पूर्ण की। किंतु वायुमंडल अपने आप में ही एक अन्य बंदीगृह सिद्ध हुआ। अतः मुक्ति की कामना वाला मनुष्य वायुमंडल तक कैसे सीमित रह सकता था ?

मनुष्य ने पहले यह पता लगाया कि मुक्ति का क्षेत्र वायुमंडल से भी बाहर है—वह अंतरिक्ष है तथा मनुष्य के अंतरिक्ष में पहुंचने में अनेक बाधाएं हैं, जिनमें गुरुत्वाकर्षण की बेडी, विकिरण की हथकड़ी और श्वासहीनता तथा भारहीनता के तौक प्रमुख हैं।

संभवतः भारतीय मस्तिष्क को यह तथ्य ज्ञात था कि यह मृत्यु-लोक एक अच्छा-खासा जेलखाना है जिससे मुक्त होना मानव जीवन का लक्ष्य है। किंतु अनेक मंत्रों तथा सूत्रों का विधाता होने के बावजूद हिंदू मस्तिष्क सशरीरी मुक्ति की दिशा में विवश सिद्ध हुआ। इसीलिए आत्मिक मुक्ति का विधान किया गया तथा शरीर को भी एक छोटी-मोटी काल-कोठरी ही मान लिया गया। इस प्रकार मुक्ति की छटपटाहट मानव-मन ने बहुत पहले से अनुभव करनी आरंभ कर दी थी। अलबत्ता उक्त बेचैनी को सार्थक शब्द मिले। सत्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ में जब पश्चिम के एक मनीषी ब्रूनो ने यह घोषणा की :

'अब तक हमने कैद की बेकारी भोगी है। अब समय आ गया है कि हम वायु की चमकीली पर्तें पार करके आकाश की गहराइयों की थाह लें।'

पर आकाश की गहराइयों की थाह लेने की तैयारी में ही शताब्दियां बीत गईं। दूरदर्शक-यंत्र (टेलीस्कोप) के निर्माण से लेकर अपोलो-8 तक पहुंचने की लंबी यात्रा में बहुत समय लगा, तब कहीं जाकर समर्थ यंत्रों का इच्छित विकास हो सका। और वह महान् दिन आया जब 12 अप्रैल, 1961 के दिन प्रथम अंतरिक्ष-यात्री गागरिन

ने पृथ्वी की पहली परिक्रमा करके एक शुभ शुरूआत की। किंतु यह मात्र शुरूआत ही थी : सोमदेव की घाटी में पहुंचने के लिए अभी भी बहुत कुछ करना शेष था।

चंद्र-कक्षा की ओर मानव

चंद्रमा पर उतरने का गुर सोवियत संघ ने बतलाया था। उनकी राय थी कि चंद्रमा पर उतरने के लिए पहले चांद की परिक्रमा कर लेना आवश्यक है। उस देश ने इस दिशा में ज़ोंद-5 और ज़ोंद-6 के द्वारा प्रारंभिक प्रयत्न किए भी थे। यद्यपि रूसियों ने यह घोषणा कर दी थी कि चंद्र-दौड़ के प्रतियोगी वे लोग नहीं हैं, फिर भी अपने ढंग से उनकी तैयारियां बदस्तूर जारी थीं। वे दो स्थानों पर अपने लगभग समान दो यानों के परीक्षण में व्यस्त थे। भूमि की कक्षा में समानव 'सोयुज' आवश्यक जांच-परख कर रहे थे तथा चांद की कक्षा में अमानव 'ज़ोंद' शांतिपूर्ण ढंग से रूस के अंतरिक्ष-विज्ञान को सामर्थ्य प्रदान कर रहे थे। इन मिले-जुले कार्य-कलापों की ओर ध्यान देने वाला कोई भी व्यक्ति रूसियों के इरादे से बेखबर नहीं रह सकता था।

इधर अमरीका अपने महान् राष्ट्रपति जॉन कैनेडी के संकल्प के प्रति प्रतिबद्ध था और उसका चंद्र-यान अभी तैयार नहीं था। वास्तव में चांद पर पहुंचने के लिए जो तरीके तय किए गए थे, उनमें से सबसे अधिक कारगर यही समझा गया था कि चंद्र-यान को मुख्य यान से संबद्ध करके चांद की भूमि पर उतारा जाए तथा मुख्य यान उसके लौटने की प्रतीक्षा में चांद के चक्कर काटता रहे। पर चंद्र-यान कदम-कदम पर समस्याएं पेश कर रहा था। अमरीकी वैज्ञानिकों की योजना पृथ्वी की कक्षा में चंद्र-यान का परीक्षण करने की थी। अपोलो-8 के अंतरिक्ष-यात्रियों को लगभग पिछले दो वर्षों से इसी उपलब्धि के लिए अभ्यास कराए जा रहे थे। उनको पृथ्वी की कक्षा में चंद्र-यान को घाट लगाने और संबद्ध करने के प्रयोग करने थे। पर सोयुज़ और ज़ोंद की सफलताओं ने अमरीकी अंतरिक्ष-विज्ञान को चौकन्ना कर दिया। उनको लगा कि शायद सोवियत संघ निकट भविष्य में ही समानव यान द्वारा चन्द्रमा की परिक्रमा करके इस क्षेत्र में भी पहल कर जाएगा। इस आशंका का परिणाम ही अपोलो-8 था।

अपोलो-8 के अंतरिक्ष-यात्रियों में लॉवेल पहले दो बार आकाश-चारण कर चुका था, बोर्मन एक बार अंतरिक्ष की सैर कर चुका था और एंडर्स के लिए यह पहला ही अनुभव था।

अपोलो-8 की उड़ान के लिए 21 दिसम्बर, 1968 का दिन निश्चित किया गया। इसके फलस्वरूप 25 दिसम्बर अर्थात् बड़ा-दिन (क्रिसमस) अंतरिक्ष-यात्रियों को चंद्र-कक्षा में ही व्यतीत करना था। बड़ा-दिन ईसाई धर्मावलंबियों के लिए बड़े महत्त्व का दिन है इसलिए तिथि को लेकर कम-से-कम पश्चिम के आम आदमी के मन में कुछ ग़लतफ़हमी-सी हो गई। उसने सोचा कि विज्ञान धर्म के आश्रय में चल

रहा है। यदि वास्तविक लक्ष्य यह भी होता तो भी यह कोई बुरी बात नहीं थी क्योंकि मानव का भविष्य विज्ञान और धर्म के सही समन्वय में ही निहित है। किंतु असलियत यह नही थी। वास्तव मे, चंद्र-यात्रियो को अपनी परिक्रमाओं के दौरान चद्र-भूमि से 69 मील की दूरी पर रहना था। अत. वहा की भूमि की विशेषताओं का अध्ययन करने के लिए चांद पर लंबी परछाइयो वाले दिन की आवश्यकता थी और वह दिन इत्तिफ़ाक से वड़ा-दिन ही बनता था। वात यह है कि चद्र-उड़ानों के लिए दिन का चुनाव सूर्य के आदेशानुसार होता है।

अपोलो-8 छोड़ने की तैयारी

ग्रहो-उपग्रहो तथा सितारों के बीच की दूरिया मस्तिष्क को विमूढ़ कर देने वाली है। उनकी गणना प्रकाश-वर्षो मे करनी पडती है। परंतु चांद पृथ्वी के बहुत निकट है—बहुत ही निकट . केवल 2,38,857 मील दूर, जवकि हमारे सूर्य से निकटतम दूसरा मूर्य लगभग 5 प्रकाश-वर्ष की दूरी पर है। किंतु वह मामूली मनुष्य, जिसने अभी पृथ्वी से एक हज़ार मील दूर जाने का साहस नही किया था, पृथ्वी से चंद्रमा की दूरी को बहुत बडा मान रहा था और साधारण से प्राणी--नश्वर-दुर्वल प्राणी मनुष्य के लिए यह दूरी सचमुच ही बहुत अधिक थी। यदि मनुष्य को लोकों-उपलोकों की यात्रा करनी थी तो उसके लिए चांद पर उतरना पहली शर्त थी तथा चाद पर उतरने के लिए चांद तक पहुचना पहली शर्त थी।

अपोलो-8 की उड़ान बहुत खतरनाक थी—बहुत ही खतरनाक क्योंकि तीन जीते-जागते मनुष्यों को बाह्य अंतरिक्ष में प्रवेश करना था। केवल प्रवेश ही नही करना था बल्कि वहा की परिस्थिति का यथासंभव श्रेष्ठतम अध्ययन करके सकुशल वापस लौटना था तथा निकट भविष्य में बाहर जाने वाले चंद्र-यात्रियो का मार्ग प्रशस्त करना था। उनको समय की शिला पर चरण-चिह्न डालने थे, जिनके ऊपर से अगले अंतरिक्ष यात्री आगे बढ़ें और होते-होते वह एक नियमित मार्ग ही बन जाए। इसलिए यह उडान जितनी अधिक जोखिम भरी थी, उतनी ही अधिक महत्त्वपूर्ण और उपयोगी थी। अभी तक चंद्रमा को यत्रो की आखों से ही देखा गया था। उसे मानवीय आखों से देखा जाना निहायत जरूरी था।

अपोलो-8 की उड़ान के द्वारा अपोलो-अभियान का अंतिम परीक्षण होना था। यह परीक्षण मनुष्य और मशीन दोनों का ही था। इससे पूर्व मशीन का परीक्षण तो बाह्य अंतरिक्ष में किसी कदर हो भी गया था किंतु मनुष्य के लिए तो यह प्रथम ही अनुभव था। मनुष्य को न केवल गुरुत्वाकर्षण की जेल से बाहर जाना था बल्कि मानव इतिहास तथा इस भूमि के इतिहास में पहली बार शरीर-सहित किसी अन्य ग्रह-उपग्रह के गुरुत्वाकर्षण में प्रवेश करना था। और उस चांद को अपनी आंखों से तो देखना ही था, जिसे अभी तक टेलीस्कोप और कैमरे की आंखों ने ही सार्थक रूप से देखा था।

एक परीक्षण और भी होना था . जैसा कि आज भली-भाति विदित है, हमारी पृथ्वी को दो विकिरण-पेटिकाओ ने घेरा हुआ है। ये 'वॉन एलन विकिरण पेटिया' कहलाती है। इनके बीच कोई मानव अभी तक नहीं गुजरा था तथा यह कहना कठिन था कि उक्त पेटिकाओ का शारीरिक-संयत्र पर क्या प्रभाव पड़ेगा। प्रथम मनुष्य क अतरिक्ष मे जाने से पहले रूसियों ने वेतेरक और यूगोल्नियक नामक दो कुत्ते अंतरिक्ष मे भेजे थे, जिन्होने इस उड़ान मे 22 दिन लगाए थे तथा 300 से अधिक परिक्रमाए पृथ्वी की की थीं। उनके यान की कक्षा ऐसी रखी गई थी कि उन दोनो कुत्तो को बार-बार उन विकिरण-पेटियों में से होकर निकलना पड़ता था। परिणाम यह निकला था कि जब उन कुत्तों को नीचे उतारा गया तो पता चला 'कि उनकी मास-पेशिया अकड़ गई है। साथ ही यह भी पता चला कि उनकी हड्डियों में स्थित कैल्शियम की मात्रा में कमी आई है।' कहा जाता है कि उन कुत्तो को अपनी स्वाभाविक अवस्था में लौटने में कुछ दिन लग गए थे।

यह ठीक है कि चाद की यात्रा मे उन विकिरण-परतो से निकलने में बहुत कम समय लगना था तथा किसी विशेष विपरीत प्रभाव की आशंका नहीं थी, तो भी मनुष्य को इस परीक्षण से गुजरना तो था।

इन तमाम लक्ष्यो के अतिरिक्त अमरीकी अंतरिक्ष-विज्ञान के समक्ष एक नवीन चुनौती तथा एक नवीन उपलब्धि का प्रलोभन था। पर उसके साथ आशाएं और आशंकाएं दोनों जुडी हुई थीं। फिर आशंका तो दुहरी थी : उनके अपने अभियान की सकुशल परिणति की आशंका और प्रतियोगियों के अचानक बाज़ी मार ले जाने की आशका। रूस ने अपनी किसी भी योजना की घोषणा करके उसे क्रियान्वित नही किया था बल्कि सदा क्रियान्वित करने के बाद घोषणा की थी। यह आशंका अब भी थी कि न जाने किस क्षण बैकनूर अंतरिक्ष-अड्डे से कोई चकोर चांद की ओर पंख फैला दे।

कुछ भी हो, अब तो अपोलो-8 शनि-5 की पीठ पर सवार था, जिसे 39-ए नामक गैण्ट्री ने अपनी फौलादी भुजाओं में जकड़ा हुआ था कि कहीं वह उत्सुकता के आवेश मे समय से पूर्व ही दौड़ न लगा दे।

एक तनाव, एक टैंशन

21 दिसंबर का उषा-काल अपने साथ जबरदस्त खींच-खिचाव लेकर आया था। यदि वातावरण शात था तो मानव-मन में असीम अशांति विराज रही थी। यह अशाति अनेक प्रकार की थी : अमरीकी राष्ट्र के मन में एक अजीब-सा आतंक उभर रहा था जिसकी चरम सीमा राष्ट्रपति जॉन्सन का वह तार था जो उन्होंने वाशिंगटन के अस्पताल से भेजा था। इस तार में अंतरिक्ष-यात्रियो की सुरक्षा को वरीयता देने का सुझाव दिया गया था। इसीलिए राष्ट्रीय उड्डयन तथा अंतरिक्ष प्रशासन (नासा) ने ऐसा प्रबंध किया था कि आम जनता को अभियान की सुरक्षा के विषय मे आश्वस्त

किया जा सके। ओर तो ओर, यात्रियो ने स्वय उन कलपुर्जो को जाच-परख लिया था, जिनके आधार पर उन्हे आगे बढना था।

एक अन्य प्रकार की अशांति अतरिक्ष अड्डे पर नजर आ रही थी, एक ओर शनि-5 प्रक्षेपक तथा अपोलो-8 मे अतिम देख-भाल हो रही थी तथा सड़कों के उस जटिल जाल पर लाखों कारें दौड़ी आ रही थी, जो अतरिक्ष अड्डे तक फैला हुआ था। दूसरी ओर ऐसे हज़ारों लोग वहा पहुंच गए थे, जिनमे अमरीकी सीनेट के सदस्य, न्याय-विभाग के गण्यमान्य व्यक्ति, पत्रो, रेडियो तथा टेलीविज़न के लोग थे। 39-ए नामक क्षेपण-सीढ़ी से कोई साढे तीन मील की दूरी पर एकत्र लोगो मे चार्ल्स लिडबर्ग भी था जिसने 1927 मे अटलांटिक महासागर के पार अकेले हवाई उडान की थी। और वहा मौजूद था भूतपूर्व राष्ट्रपति जॉन कैनेडी का छोटा भाई एडवर्ड कैनेडी।

काली धारियो वाला सफेद प्रक्षेपक एक विशाल दानव की भांति क्षेपणगद्दियो पर खड़ा था तथा शायद यह तथ्य कम ही लोगो को ज्ञात था कि तीनो अतरिक्ष-यात्री अपने कक्ष में मौजूद हैं तथा अंतिम रूप में यंत्रो की खोज-भाल कर रहे है।

वास्तव में तीनों अतरिक्ष-यात्री रात्रि समाप्त होने से पूर्व ही अंतरिक्ष-यात्रियों का परपरागत नाश्ता करके अपने कक्ष में चले गए थे तथा किसी भी विपरीत स्थिति मे उनके स्थानापन्न होने वाले तीन अन्य अंतरिक्ष-यात्री उक्त नाश्ते मे उनका साथ देकर पीछे छूट गए थे। बड़ा मोहक सवेरा खुल रहा था।

काउंट-डाउन चल रहा था। अपोलो-8 के रवाना होने में केवल एक मिनट शेष था। उस समय सभी लोग समय के वात्या चक्र में फंस गए थे। तभी केनेडी अतरिक्ष-केंद्र के कर्ता-धर्ता जैक किंग ने कहा—

'चाद पर जाने के लिए बडा बढिया दिन है।'

एक के बाद एक सेकेंड पीछे छूटते जा रहे थे। नाड़ियों की गति बढ़ती जा रही थी। दिलों की धड़कन जोर पकड़ रही थी। शनि-5 प्रक्षेपक के लाखों पुर्जे जैसे तद्रा से चौंककर जाग रहे थे।

लगभग दस सेकेड पूर्व ही भूरे-मटमैले धुएं के बादल उड़ने लगे। यह इस बात का लक्षण था कि प्रथम चरण के इजन जीवित हो उठे हैं।

लाखों पाउंड के अकल्पनीय आघात

पहले घरघराहट आरम्भ हुई। उसके बाद कानो को निश्चित रूप से फाड डालने वाला भीषण शोर मच गया। लाल, नीली, पीली, नारंगी जीभों वाली लपटें फव्वारों के रूप मे चलने लगीं। प्रथम चरण अपना पूर्ण आघात उत्पन्न कर रहा था। अतः भारतीय समय के अनुसार 6:20 साय पर पिछत्तर लाख पाउंड के अकल्पनीय आघात के साथ प्रक्षेपक शनैः-शनैः उठने लगा। एक सेकेड के कुछ अंश के लिए वह क्षेपण-गद्दियों पर अटका सा लगा तथा तभी खुले-खिले आकाश को चीरता हुआ ऊपर उठने लगा।

अपोलो-8 छः हजार मील प्रति घटा की गति से केवल 2¼ मिनट मे ही 38

मील की ऊंचाई पर पहुंच गया। शनि-5 प्रक्षेपक का पहला चरण 75 लाख पाउंड का आघात उत्पन्न करके यान को इतने समय में उक्त ऊंचाई तक पहुंचा सका।

शनि-5 का दूसरा चरण चालू होते न होते, पहला चरण अलग हो गया। तब दूसरे चरण के इंजन लगभग ग्यारह लाख पाउंड का आघात उत्पन्न करके 14,000 मील प्रति घंटा की गति से अपोलो-8 को 119 मील की ऊंचाई तक ले गया। यहां पहुंचकर दूसरा चरण भी अलग हो गया तथा तीसरे चरण ने अपना कार्य संभाल लिया।

तीसरे चरण ने करीब सवा दो लाख पाउंड आघात उत्पन्न किया। अब अपोलो-8 सत्रह हज़ार चार सौ मील प्रति घंटा के वेग से आगे बढ़ा तथा ढाई मिनट में ही पृथ्वी की कक्षा में स्थापित हो गया।

लगभग 12 मिनट के अंदर अपोलो-यान अपने परिक्रमा-पथ पर पहुंच गया।

तभी उड़ान निर्देशक क्रिस क्राफ्ट ने कहा, 'तुम लोग सचमुच अपनी मंजिल की ओर बढ़ रहे हो।'

'वाकई बढ रहे है।' बोर्मन ने उत्तर दिया।

किंतु इस वार्तालाप का यह अर्थ बिल्कुल नहीं था कि बोर्मन, लॉवेल और एंडर्स को चांद की ओर बढ़ने के लिए हरी झंडी दिखाई गई थी। वास्तव में अपोलो-8 को पृथ्वी के दो चक्कर लगाने थे, जिसके मध्य अपोलो-यान के जटिल यंत्रों की भली-भांति जांच-पड़ताल की जानी थी। यदि अंतरिक्ष-यात्री, नियंत्रण केंद्र के अधिकारी तथा गणक-गण अपोलो के लाखों पुर्जों के सही कार्य करने के विषय में आश्वस्त हो जाएं, तभी उनको आगे बढ़ने की अनुमति दी जा सकती थी। अतः पृथ्वी की दो परिक्रमाओं के दौरान अंतरिक्ष-यात्रियों ने पूर्ण दत्त-चित्तता से सभी कल-पुर्जों की जांच-परख की तथा सभी कुछ अपनी सामान्य स्थिति में पाया गया। अब अंतरिक्ष-यात्रियों को 'ट्रांसल्यूनर इंजेक्शन' की अनुमति मिल गई और उन्होंने तीसरे चरण के इंजन को फिर से चालू करके अपना वेग 24,000 मील प्रति घंटा कर लिया। बात यह है कि पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति से बाहर निकलने के लिए कम-से-कम 24,000 मील प्रति घंटा की गति अनिवार्य है। संभवतः इतनी अधिक गति से इससे पूर्व कोई मानव नहीं उड़ा था।

भूमि से रवाना होने के तीन घंटे बाद एंडर्स ने सूचना दी—'हम असंबद्ध हो गए हैं।' इसका अर्थ था कि शनि-5 का तीसरा चरण भी अपोलो यान से अलग हो गया था तथा वे लोग इस मिथक को मिथ्या सिद्ध करने में सफल हो गए थे कि अंतरिक्ष केवल देवताओं का ही देश है तथा बिना मृत्यु का मुख देखे मनुष्य वहां नहीं पहुंच सकता।

अपोलो-8 की उड़ान का पहला दिन बड़ा संतोषप्रद रहा था तथा एक-आध नगण्य गड़बड़ के अतिरिक्त सब कुछ आशा तथा आकांक्षा के अनुरूप ही चल रहा था। पर एक गड़बड़ी अवश्य हो गई थी : बोर्मन और एंडर्स अचानक अस्वस्थ हो

गए थे। लगता यह था, जैसे कि उन्हें फ्लू हो गया हो। उन दोनों मे भी बोर्मन की तबीयत अधिक खराब हुई थी (इसके विषय में बाद में बोर्मन ने बतलाया था कि सभवत नीद की गोली खा लेने से होने वाली विपरीत प्रतिक्रिया ही उनकी अस्वस्थता का कारण थी) किंतु उनकी अस्वस्थता को छुपाया बहुत ही गया। इसका कारण शायद यह था कि कही इस सूचना से आम आदमियों मे अनेक प्रकार की आशंकाए न जाग उठें। उनकी अस्वस्थता की सूचना वास्तव मे तब दी गई जब कि वे लोग स्वास्थ्य-लाभ कर चुके थे।

पहले दिन की उडान बोर्मन, लॉवेल और एंडर्स का अपनी भूमि से 50,000 मील दूर ले गई थी। किंतु यान की गति और दिशा—दोनों गणना के अनुसार थीं। अपोलो-8 इतने सही मार्ग पर आगे बढ़ रहा था कि मार्ग-संशोधन की जिस संभावना का सामना होने की आशा थी, उसकी गुजाइश तक पैदा नहीं हुई तथा अपोलो यान ऐसी खूबसूरती से आगे बढता रहा, जैसे यह रास्ता इसका कई बार का देखा-भाला हो।

अपोलो-8 की उठान और उड़ान इतनी सही रही कि सारे ससार से बधाई-संदेश दौडे आ रहे थे। बर्नार्ड लॉवेल ने अपोलो यान की उड़ान को कल्पनाजन्य तथा चमत्कृत कर देने वाली बतलाया था। फ्रांस के अंतरिक्ष-वैज्ञानिक अलक्जांद्र अनानाफ ने इस उडान के विषय मे कहा था, 'यह सफल होगी। इसके असफल होने का प्रश्न ही नही उठता।'

इसके अतिरिक्त अनेक आशाप्रद तथा उत्साहवर्धक संदेश प्राप्त हुए थे। इस विषय में दूसरा मत केवल रूसी वैज्ञानिकों का ही था, जिन्होंने इस अभियान को 'जोखिम भरा परीक्षण' कहकर इसके महत्त्व को यत्किंचित् कम करने की कोशिश की थी हालांकि अपोलो-8 जोखिम-भरा परीक्षण निश्चय ही था।

दूसरे दिन पता चला कि बोर्मन की तबीयत ठीक थी। लेकिन उस दिन एक नई मुसीबत पैदा हो गई। अपोलो-8 में पांच खिड़कियां थीं, उनमें से दो को कुहरे ने ढक लिया और तीसरी पर तुषार जम गया। परंतु 22 दिसबर का दिन एक दृष्टि से बहुत बढ़िया भी रहा : उस दिन पृथ्वी के निवासियों को टेलीविज़न देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ। ये टेलीविजन चित्र एंडर्स ने भेजे थे तथा ये सोवियत सघ सहित विश्व के 27 देशो में दिखाई पडे थे। पर किसी तकनीकी गड़बड़ी के कारण ये चित्र उच्चकोटि के नहीं बन पड़े हालांकि इन चित्रों को लगातार लगभग 15 मिनटों तक प्राप्त किया गया।

चांद की सीमा चौकी

23 दिसबर, 1968 को अपोलो-8 पृथ्वी से 1,64,000 मील की दूरी तक जा चुका था उसकी गति घटती जा रही थी तथा चंद्रमा की ओर बढ़ता हुआ अपोलो अपनी

किरणें यान के एक ही पक्ष पर न पड़ती रहें और वह जरूरत से ज्यादा उष्णता पाकर जल न जाए। घूमते रहने से सूर्य की किरणें संपूर्ण यान पर समान रूप से पड़ती हैं।

अभी तक की अपोलो यान की यात्रा बाधारहित रही थी तथा यह आशा बंधने लगी थी कि यान अपने लक्ष्य को पाने में सफल हो जाएगा। अब पृथ्वी की पकड़ कम होती जा रही थी—यान की गति कम होती जा रही थी। तीनों अंतरिक्ष-यात्री उस काल्पनिक सीमा-क्षेत्र की ओर बढ़ रहे थे जिसे हम-गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र अथवा संधि-प्रकाश-क्षेत्र (twilight zone) कहते है। यहां पृथ्वी और चांद की गुरुत्वाकर्षण शक्तियां समान रूप से विद्यमान रहती है। इसी सीमा-चौकी से आगे चांद का खिंचाव बढ़ता चला जाता है और पृथ्वी का घटता चला जाता है। यह सीमा-चौकी चांद से 30,000 मील के फासले पर है।

23 दिसंबर को उन्होंने दूसरी बार टेलीविज़न चित्र भेजे, जो कि पहले चित्रों से काफी अच्छे थे। इनमें हमारी पृथ्वी के विभिन्न भागों को प्रदर्शित किया गया था। ये चित्र 1,80,000 मील की दूरी से आ रहे थे और साथ ही आ रही थी पृथ्वी के विभिन्न वर्णों पर लॉवेल की टिप्पणी :

'अरे भई, आप लोग तो सिर के बल खड़े हुए नजर आ रहे हैं।' स्थल-नियंत्रक ने उन्हें बताया।

एंडर्स ने अपना कैमरा घुमाया और सब कुछ ठीक हो गया। तभी बोर्मन ने टिप्पणी की—'जिम भोजन की तैयारी में लगा हुआ है। देखिए, वह चॉकलेट का पैकेट निकाल रहा है।'

टेलीविज़न चित्रों के प्रदर्शन के दौरान भारहीनता का भी प्रदर्शन कराया गया।

बिल एंडर्स ने अपना टूथ-ब्रश ऊपर उछाल दिया और वह भारहीनता की स्थिति में तैरने लगा। इस पर बोर्मन ने कहा, 'ऐसा लगता है जैसे ब्रश खेल रहा हो।'

उसी समय लॉवेल कैमरे के निकट आ गया। बोर्मन ने उसकी बढ़ी हुई दाढ़ी पर टिप्पणी करते हुए कहा, 'सब दर्शकों को ज्ञात ही है कि दाढ़ी की दौड़ में लॉवेल ने हम सब को पीछे छोड़ दिया है।'

लॉवेल ने भी अपना पार्ट अदा किया और अपनी मां के 75वें जन्म-दिवस पर उन्हें सोम देवता की घाटी से बधाई दी।

बोर्मन कह रहा था, 'हम सब बहुत अच्छी अवस्था में है। विशाल शनि प्रक्षेपक की सवारी बड़ी उत्तेजनात्मक थी किंतु वह रही पूर्णतः सफल। अब तो हमारी दृष्टि आगे है—आने वाले कल पर जब हम चांद से केवल 60 मील की दूरी पर होंगे।'

शनि-5 प्रक्षेपक और अपोलो-यान बनाने वालों ने एक वास्तविक चमत्कार कर दिखाया था। तमाम कल-पुर्जे ऐसे ढंग से कार्य कर रहे थे, जैसे उस मार्ग पर वे कई बार इसका अभ्यास कर चुके हों। सब कुछ कार्यक्रम के अनुसार संपन्न हो रहा था।

बड़े दिन (क्रिसमस) की धार्मिक सुबह ने अपोलो 8 को पृथ्वी से 2 20 000 मील की दूरी पर देखा था। चाद की गुरुत्वाकर्षण शक्ति का अनुभव अब स्पष्ट रूप से हो रहा था, क्योकि यान की गति फिर बढती जा रही थी। भूमि के गुरुत्वाकर्षण का क्षेत्र अब पीछे छूट गया था तथा मानव के इतिहास मे तीन व्यक्ति पहली बार इस पृथ्वी की कैद से आजाद हो गए थे (यद्यपि वे चद्र-गुरुत्व के जेलखाने मे जा फसे थे)!

यह वह घड़ी थी जबकि उन लोगो के समक्ष एक यथार्थ समस्या मुह बाए खडी थी। उन लोगों को अपने यान की गति कम करनी थी तथा चद्रमा की कक्षा मे प्रवेश करना था। ये दोनो कार्य उस विशाल रॉकेट इजन पर निर्भर करते थे, जिसे सेवा-कक्ष मे स्थापित किया गया था।

चद्र-परिक्रमा में जो जोखिमें शामिल थीं, उनसे शायद ही कोई जानकार व्यक्ति अपरिचित हो। फिर भी सोवियत संघ ने इस खतरे को रेखांकित करके विज्ञापित किया था। जिस समय वे तीन अपूर्व साहसी अंतरिक्ष यात्री चंद्रमा की कक्षा में पविष्ट होने की तैयारी कर रहे थे, उस समय भी मृत्यु-लोक में 'प्रावदा' में रूसी वैज्ञानिक जॉर्जी पीत्रोव का एक लेख प्रकाशित हुआ था।

उसमें यह चेतावनी दी गई थी कि अंतरिक्ष यानों के स्थान-परिवर्तन आदि प्रक्रियाओं को सर्वथा मनुष्यो के हाथ में छोड़ देना ठीक नहीं है। कौन कह सकता है कि हाड़-मास के मनुष्य को कब क्या हो जाए तथा उसमें यान को संभालने की सामर्थ्य न रहे। अपने यानों के विषय में पीत्रोव ने लिखा था—'सोवियत यानो मे दुहरी व्यवस्था रहती है। मानव के अतिरिक्त यान की उड़ान के नियंत्रण के निमित्त उसमे सर्वथा स्वचालित यंत्र भी होते है।'

परंतु इस सुझाव-सकेत से सर्वथा बेखबर तीनों चंद्र-यात्री अपने गंतव्य की ओर स्वाभाविक उत्साह और उल्लास के साथ बढ़ते जा रहे थे।

चंद्र-कक्षा प्रवेश

'मजिल के लिए दो गाम चलूं और सामने मंजिल आ जाए'—मंज़िल सामने आती जा रही थी और फासला क्रमशः घटता जा रहा था।

चंद्रमा पर एक काल्पनिक विभाजन-रेखा है जो लगातार अपना स्थान बदलती रहती है तथा चद्रमा के दिन और रात को गोलार्द्धो में परिवर्तन करती रहती है। ज्यो-ज्यों अतरिक्ष-यान इस काल्पनिक रेखा की ओर बढ़ता जा रहा था, सूरज उसका मार्ग छोडता जा रहा था, जिसके परिणामस्वरूप चद्र-भूमि पर पड़ने वाली परछाइया लबी होती जा रही थीं।

अपोलो-8 चांद के निकट पहुंच गया था किंतु सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण निर्णय लिया जाना अभी शेष था : चांद के पीछे पहुंचकर उसकी कक्षा में प्रवेश किया जाए या चंद्र-भूमि का चक्कर लगाते हुए पृथ्वी की ओर लौटा जाए। इस दुविधा का

कारण रॉकेट इजन की अनिश्चितता थी यो वह इजन सेकडो बार चलाकर देखा हुआ था किंतु पूर्वाभ्यास और वास्तविक कार्य मे अंतर होता है। रॉकेट इजन के विषय में कई संभावनाएं थीं - रॉकेट इंजन बिल्कुल ही न चले, आवश्यकता से कम समय के लिए चले अथवा एक बार चले तो चलता ही जाए। आशंकाओं के दुष्परिणाम भी ऐसे ही भयकर हो सकते थे अपोलो-8 चंद्र-भूमि से टकरा सकता था अथवा चाद के परिक्रमापथ में ही फसा रह सकता था और इन विपरीत स्थितियों मे अतरिक्ष-यात्रियों को बचाने की कोई गुजाइश नहीं थी। इसीलिए ज्यों-ज्यों वह परीक्षा की घडी निकट आने लगी, नियंत्रण-केंद्र और यात्रियों के बीच का वार्तालाप छोटा पडने लगा तथा अंततः दोनों पक्ष लगभग मौन-से ही हो गए।

अपोलो-8 पश्चिमी घुमाव की ओर बढा जा रहा था तथा नियंत्रण-केंद्र क्रमश कम होते हुए फासले की घोषणा करता जा रहा था। तभी यह संक्षिप्त आदेश दिया गया, 'यह होस्टन है 68 04 पर। एल. ओ. आई (चद्र-कक्ष-प्रवेश) की अनुमति है।'

'ठीक है। अपोलो-8 प्रवेश करता है।' बोर्मन ने उत्तर दिया।

'आप लोग सर्वश्रेष्ठ उपलब्ध पक्षी पर सवार हैं।' उन्हे नियत्रण-केंद्र से आश्वासन दिया गया।

चद्र-कक्षा मे प्रवेश करने के लिए मोड़ काटने से लगभग दो मिनट पूर्व चद्र-यात्रियों को फिर नियत्रण-केंद्र से सूचना मिली :

'सभी यंत्र सही हैं—आगे यात्रा सुरक्षित है।' और साथ ही संकेतो का आदान-प्रदान समाप्त हो गया।

इसके बाद लगभग पौन घंटे तक अपोलो-8 का संपर्क इस पृथ्वी से टूटा रहा। ये 45 मिनट अंतरिक्ष-यात्रियों तथा इस पृथ्वी के लोगों के लिए बहुत भारी थे। इस दौरान यदि रॉकेट इंजन अपना कार्य करना बंद कर देता तो चद्र-विजय की तैयारी न जाने कितने वर्ष पीछे चली जाती। पर आखिर होस्टन से यह समाचार दिया गया—'हमें सकेत मिल गया है। हम इजन का डेटा जांच रहे है। हमने कर दिखाया है। अपोलो-8 चन्द्रमा की कक्षा मे है।'

अपोलो-8 की कक्षा आरम्भ में अण्डवृत्ताकार थी यानि निकटतम दूरी 69 मील और दूरतम 194 मील। लेकिन बाद मे उसको वृत्ताकार ही कर लिया गया। अब अपोलो बराबर 70 मील की दूरी पर था।

चंद्र-भूमि का रूप

चाद को निकट से देखने पर चंद्र-यात्रियों ने जो उद्गार प्रकट किए, वे इस प्रकार है :—

लॉवेल ने यह मानने से इकार कर दिया कि चाद का कोई रग है। उसने कहा, 'चांद निश्चित रूप से भूरा है—इसका कोई रंग नहीं है। यह प्लास्टर-आव्-पेरिस जैसा दीखता है। या एक प्रकार का भूरा रेत कह लीजिए। हमे काफी कुछ ब्योरेवार दिखाई

दे रहा है। लैग्रेनस बहुत बड़ा विवर है।'

एन्डर्स की राय लॉवेल से भिन्न थी। उसके मत मे चांद सफेदी लिये हुए धूसर रग का है। उसका कथन था, 'क्षितिज तो बहुत ही भारी है। आकाश गहरा काला है और चांद बिल्कुल हल्के रग का। आकाश और चंद्रमा के बीच की विभाजक रेखा स्पष्ट रूप से स्याह है।'

उधर टेलीविजन-चित्र भेजते हुए बोर्मन ने कहा, 'चांद हम सभी के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार का है। मेरे विचार से यह अभाव का विस्तृत उपेक्षा योग्य विस्तार है। यह झांवे के बादल जैसा दीखता है।' बोर्मन के विचार से चांद न तो रहने योग्य स्थान था और न काम करने योग्य।

लॉवेल के विचार भी बोर्मन से बहुत भिन्न नहीं थे। उसका कहना था, 'यहा का एकात भयप्रद है, जिससे यह पता चलता है कि हमारी पृथ्वी पर क्या कुछ है। अतरिक्ष की अनत व्यापकता मे पृथ्वी एक शानदार नखलिस्तान-सी लगती है।'

लॉवेल का ख्याल चांद के छुपे हुए चेहरे के बारे में भी अच्छा नही था। उसका कहना था, 'चांद का अधियारा पक्ष रेत का ढेर-सा लगता है जिसमें मेरे बच्चे काफी अर्से तक खेलते रहे हो। वर्णन से परे का पिटा हुआ स्थान है—टीलो और विवरो का घिराव।'

एन्डर्स ने संकट के विषय में बड़ा अनुकूल मत प्रकट किया था। उसने कहा था, 'सकट सागर क्षितिज तक आश्चर्यजनक ढंग से चिकना है।'

चंद्र-भूमि के अनेक आश्चर्यजनक दृश्यो के अतिरिक्त चद्र-यात्रियों ने अपनी पृथ्वी को एक सर्वथा नवीन ही रूप में देखा था—चाद के क्षितिज पर उदित होती हुई पृथ्वी जो स्वय चाद-सा प्रतीत होती थी।

चद्र-परिक्रमाओ के दौरान उक्त यात्रियों ने अपनी भूमि को काफी याद किया था तथा कहा था, 'चांद का चक्कर लगाने वाले मानव के लिए पृथ्वी श्यामल मखमल पर एक दैदीप्यमान नीलमणि के वर्ण की विशाल रकाबी है।'

उसकी भूमि को चद्र-तल के पार्श्व से ऊपर उठती हुई देखकर चंद्र-यात्री पुलकित हो उठे तथा कह उठे थे—

'हमने अभी-अभी भूमि-उदय देखा है।'

इन तीनों यात्रियों ने चाद के दस चक्कर लगाए थे जिनमें बीस घंटों का समय व्यतीत हुआ था। हर चक्कर में उन्हें अपनी पृथ्वी का एक नवीन ही रूप ऊपर उठता नजर आता था। तभी तो उन्होने सूचना दी थी—'भूमि न जाने कितने रूपो मे उभरकर सामने आ रही है।'

जहां तक चांद के अध्ययन का प्रश्न है, इन तीनों व्यक्तियों ने उसे पढकर रख दिया था। इन्होंने वहां की अनेक स्थितियां पहचान ली थीं तथा कितने ही अनाम विवरों के नामकरण कर दिए थे। इस दिशा में इन्होंने इतना जबरदस्त कार्य किया था कि नियंत्रण-केंद्र से इन्हें बतलाया गया था, 'जो सूचनाएं आप लोगों ने हमें दी

है, उनसे हम वहुत प्रसन्न हैं। आप लोगों ने अपने हिस्से की शत-प्रतिशत सामग्री जुटा ली है।'

अपोलो-8 की सफलता के साथ सोवियत संघ का स्वर भी अव वदलने लगा था। समानव अपोलो यान को चद्रमा की परिक्रमा के लिए भेजने के निर्णय की जिन प्रोफेसर सिडॉफ़ ने आलोचना की थी, उन्होंने अब सराहना के स्वर में कहा :—

'अंतरिक्ष-अन्वेषण की दिशा में यह एक नया तथा महत्त्वपूर्ण पग है।'

इसके अतिरिक्त रूस की ज्योतिर्विद् प्रोफ़ेसर मैसेविच ने मॉस्को रेडियो पर बोला, 'यह अद्भुत कार्य करके अमरीकी अंतरिक्ष यात्रियो ने महान् साहस का प्रदर्शन किया है। इन साहसी व्यक्तियो के प्रति मैं प्रत्येक प्रकार की सफलता की अभिलाषा करती हू। मैं उनके प्रोग्राम की पूर्ति और सकुशल वापसी की भी कामना करती हू।'

रूसी प्रोफ़ेसर की यह कामना शत-प्रतिशत सही निकलने योग्य थी।

उधर जब दसवी परिक्रमा आरभ हुई तो दोनों ओर खामोशी छा गई। नियत्रण केंद्र ने केवल यह सक्षिप्त-सी सूचना दी :

'सभी यंत्र सही हैं, अपोलो-8।'

'रोजर !' कहकर बोर्मन ने सहमति प्रकट की।

उधर अपोलो-8 चांद के पीछे चला गया, रेडियो-सपर्क टूट गया तथा समूचा ससार शुभ सूचना की प्रतीक्षा करने लगा। यह शुभ सूचना 37 मिनट के बाद लॉवेल की वाणी मे प्राप्त हुई : 'आप लोगों को सूचित किया जाता है कि 'सांता क्लॉस' मौजूद है।'

फिर पृथ्वी की ओर

हालांकि पृथ्वी पर लौटने के लिए उतना ही फासला तय करना था—2,38,857 मील किंतु अब इसे तय करना कोई भारी समस्या नही लग रही थी। इसका कारण यह था कि जाते समय मनुष्य और मशीन का परीक्षण हो चुका था तथा उस कठिन एव अपरिचित मार्ग से परिचय प्राप्त किया जा चुका था। इसलिए लौटने की यात्रा मे कोई उल्लेखनीय बात नहीं हुई। और तो और, जो दो मार्ग-संशोधन पूर्व निश्चित थे, उन्हें भी रद्द कर दिया गया। अब तो एक ही कठिनाई शेष रह गई थी—घने वातावरण मे से होकर पृथ्वी पर वापसी। वह कार्य इतनी बड़ी उपलब्धि के बाद भी बड़ा कठिन लग रहा था।

असल में जिस गति से अपोलो यान को पृथ्वी के वातावरण में प्रवेश करना था—25,000 मील प्रति घंटा—इस गति से आज तक कोई भी यान वापस नहीं लौटा था। और इस गति से वायुमंडल में प्रवेश करना दोज़ख की आग में प्रवेश करना था क्योंकि जबरदस्त घर्षण के कारण उसके जल जाने की वास्तविक जोखिम थी।

का अर्थात् ले-देकर 200 मील चौड़ा जो कि पृथ्वी से 4,00,000 फीट की दूरी पर है। इन लोगो को 6 43 डिग्री का कोण बनाते हुए उतरना था।

आशंकाएं

इस तंग द्वार में प्रवेश करने के लिए बड़ी कुशलता की जरूरत थी। इसमें दो आशंकाए रोगटे खड़े कर देने वाली थीं (1) यान ऐसी ऊचाई से उतरता कि जलकर कबाब हो जाता अथवा (2) ऐसे ढंग से आता कि उक्त द्वार में प्रवेश न पा सकता तथा यान लौटकर फिर बाह्य अतरिक्ष मे चला जाता। यो बाह्य अंतरिक्ष से दुबारा वापस लौटा जा सकता था लेकिन जब तक वे लोग दुबारा प्रविष्ट होने का प्रयत्न करते तब तक उनकी ऑक्सीजन का भडार समाप्त हो गया होता।

सफल संतरण

अपोलो-8 ने इन दोनों ही चुनौतियों को स्वीकार किया तथा सफलतापूर्वक उनका सामना किया। वातावरण में प्रवेश करते समय रॉकेट इजन सहित सेवा-कक्ष को ऊपर ही छोड दिया गया तथा प्रशांत महासागर को अपना लक्ष्य बनाया गया जहा अमरीकी जल-सेना का विमान-वाहक 'यॉर्क टाउन' अनेक अन्य जहाज़ों, हेलीकॉप्टरो तथा कई हजार नाविको व अन्य व्यक्तियों सहित तीनों अंतरिक्ष यात्रियों का स्वागत करने के लिए बेचैन था।

7.4 और 5 4 डिग्री के मध्यवर्ती पूर्व-निश्चित कोण में से निकलता हुआ अपोलो-8 कुछ समय के लिए तो जलती आग का गोला बन गया। उसी दौरान लगभग 3 मिनट के लिए नियंत्रण-केंद्र से उसका सपर्क टूट गया। वास्तव में, उष्णता-आधिक्य के कारण लौटते हुए यान के चारो ओर एक पारदर्शी लिफाफा-सा बन जाता है जिसके कारण चद मिनटों के लिए सभी प्रकार का संपर्क टूट जाता है। पूर्व निश्चित योजना के अनुसार सही क्षण पर तीनों हवाई छाते खुल गए तथा जब अपोलो-8 मथर गति से प्रशात महासागर मे उतरा तो वह विमान वाहक से तीन मील भी दूर नहीं था। जल्दी से जल्दी तीनो चंद्र-यात्रियो को विमान-वाहक पर लाया गया जहां पहले ही उनके भव्य स्वागत की तैयारिया की हुई थीं।

अब क्या था—चारो दिशाओं से इस अभूतपूर्व उपलब्धि पर बधाई-संदेश आने लगे। और तो और, इस सोवियत अतरिक्ष यात्रियो ने भी तार द्वारा अपनी सराहना व्यक्त की। उन्होंने लिखा—

'हम आपकी उडान के प्रत्येक चरण का बड़ी निकटता से अनुसरण करते रहे। हम संतोष के साथ आपके सामूहिक कार्य की सूक्ष्मता को स्वीकार करते हैं और आपके साहस को भी जिसके कारण इस महत्त्वपूर्ण परीक्षण की शानदार समाप्ति हुई।'

फिलिप्स ने दो और परीक्षण उड़ानों की घोषणा की थी। ये उड़ानें 1969 के पहले 6 महीनो के ही दौरान होनी थीं।

उधर 'नासा' के कार्यकारी प्रशासक टॉमस पेन ने कहा, 'हम लोग तो अतरिक्ष-उड़ानों को आयोजन के आरभिक चरण पर ही है। ये उड़ानें आगे आने वाली अनेक पीढ़ियों तक चलेंगी।'

अपोलो-8 की उडान, उड़ान के परिणाम तथा अनुकूल प्रतिक्रियाओं को देखते हुए यह कहना सर्वथा युक्तिसंगत होगा कि यह उडान अत्यंत महत्त्वपूर्ण रही—इतनी अधिक महत्त्वपूर्ण रही कि पहली दृष्टि मे इसके पूरे महत्त्व को समझा नहीं जा सकता।

उपलब्धि

वास्तव मे अपोलो-8 की उडान के अनेक लक्ष्य थे। इनमे से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण लक्ष्य तो अपोलो की ही व्यावहारिक जांच-पडताल थी। अपोलो की जांच-पड़ताल मे सपूर्ण अपोलो ही शामिल था—शनि-5 प्रक्षेपक सहित। साथ ही मानव तन और मन पर एक दूसरे (उप)ग्रह की घाटी मे—सर्वथा नवीन वातावरण मे (चंद्रमा तथा उसकी घाटी वातावरण-रहित है) क्या प्रभाव पडते हैं तथा मनुष्य उन्हें कहा तक झेल सकता है—उनका कहां तक सामना कर सकता है ? स्पष्ट ही शब्दों मे कहा जाए तो यह चंद्र-विजय का पूर्वाभ्यास ही था।

अपोलो-8 के समक्ष ऐसे चन्द्र-स्थल खोजने का भी कार्य था जहां अगले अपोलो मानव सहित सकुशल उतर सकें तथा सकुशल ही लौट सके। इसका अर्थ यह हुआ कि चंद्र-भूमि का बड़ा सटीक अध्ययन करना था उन लोगों को।

चंद्रमा के आस-पास के खतरों की जानकारी भी प्राप्त करनी थी ताकि आगे चलकर और सुरक्षात्मक कदम उठाए जा सकें तथा जानकारी के अनुसार ही अभ्यास आदि में जरूरी रद्दोबदल की जा सके।

अपोलो-8 का यह रिकार्ड है कि उसने अपने सभी महत्त्वपूर्ण लक्ष्य सफलतापूर्वक प्राप्त किए। इसके अतिरिक्त इन चद्र-यात्रियों ने कुछ नई बातें भी मालूम कीं जैसे कि (1) चाद के चारों ओर गुरुत्वाकर्षण का खिचाव समान नहीं है—कहीं अधिक है, कहीं कम है। हालांकि इस असमानता के कारण चंद्र-यात्रियों को कोई उल्लेखनीय कठिनाई नहीं उठानी पडी; (2) चंद्रमा के चारों ओर नगण्य-सा वायुमडल है क्योंकि लॉवेल ने सूचना दी थी कि चांद पर सूर्योदय होने से पूर्व ही क्षितिज से किरणें प्रकट होनी आरंभ हो गई। जिस स्थान पर सूर्य को प्रकट होना था, वहां समान धुध की हल्की-सी परत थी।

किंतु इन सभी उपलब्धियों में से आगे की एक उपलब्धि अपोलो-8 ने की थी। इसके यात्रियों ने अपनी भूमि का एक नवीन ही रूप देखा था। ब्रह्मांड की बात जाने दीजिए, हमारी आकाश-गंगा का जिक्र भी छोड़िए—हमारे छोटे से सौरमडल मे ही हमारी पृथ्वी बहुत छोटी-सी है। 1.80.000 मील की दूरी से एक अंतरिक्ष यात्री

ने कहा था, 'इस समय पृथ्वी मेरी खिडकी के आगे मे गुजर रही है। यह मेरे अगूठे के अग्रभाग के बराबर है।'

फिर इस ज़रा-सी पृथ्वी पर रहने वाले मानव की विराट् ब्रह्माड के समक्ष क्या सत्ता है ?

दूसरी ओर बोर्मन ने पृथ्वी के विषय मे कहा था, 'हमारी भूमि अनुपम है।'

बात ठीक भी है क्योंकि अभी जहा तक मनुष्य की रहस्य-भेदिनी दृष्टि जाती है, उसके आधार पर निस्संकोच रूप से कहा जा सकता है कि 'प्राण' नामक अनमोल तत्त्व इस भूमि की ही बपौती है। पेड़-पौधों से लेकर महापुरुषों तक के विकास की रंगशाला यह धरती ही रही है।

इन दोनों रूपो को देखकर हमारे मन में स्वाभिमान और विनयशीलता की भावनाएं जागती हैं और साथ ही जागती है यह सद्बुद्धि कि पृथ्वी रक्तपात का स्थान नहीं है, युद्ध-संघर्ष की जगह नहीं है, ईर्ष्या-द्वेष का अखाड़ा नहीं है--स्नेह, सहानुभूति और संवेदना का पावन स्थल है।

हमे अपनी मातृ-भूमि--इस धरती को किसी भी कीमत पर सुरक्षित, अक्षुण्ण तथा हरी-भरी रखना चाहिए। अतः यही कहना ठीक लगता है कि अपोलो-8 की उडान फ्रासीसी विज्ञान-कथाकार जुल्स वर्न की कल्पना से कही आगे की चीज़ सिद्ध हुई है।

11. मंज़िल—मयंक*

अपोलो-8 के शत-प्रतिशत सफल परीक्षण के उपरात चाद पर मनुष्य के [illegible] मे कोई शंका नही रह जानी चाहिए थी। पर शका थी और [illegible] यह थी कि जिस चद्र-कक्ष में बैठकर चद्र यात्रियों को चांद की भूमि पर उतरना था (तथा लौटकर आना था), उसका परीक्षण अभी पृथ्वी से बाहर नहीं हुआ था। यह ठीक है कि समानव यान ने चाद की परिक्रमा कर ली थी तथा मानवरहित यान चाद की भूमि पर उतर चुके थे किंतु अभी बीच की कड़ी गायब थी : चंद्र-कक्ष। चंद्र कक्ष के ही परीक्षण के निमित्त अपोलो-8 की उड़ान आवश्यक समझी गई।

यह सोचना गलत होगा कि अमरीकी यात्रियों द्वारा चांद के इस चक्कर लगा लेने मात्र से ही रूस ने चद्र-विजय का सेहरा अमरीकियों के लिए छोड़ दिया था। सोवियत संघ अपनी निराशाओं, सीमाओं तथा आश्वासनों के बावजूद चांद की दौड़ मे शामिल था—कम-से-कम वह प्रतियोगिता का वातावरण बनाए रखकर अप्रत्यक्ष रूप से अमरीकी अंतरिक्ष-विज्ञान की सहायता तो कर ही रहा था। और 14 जनवरी, 1969 को रूसी अंतरिक्ष-यान सोयुज़-4 पृथ्वी की कक्षा मे कूद पड़ा।

सोयुज-4 की उडान एक अन्य दृष्टि से भी बड़ी महत्वपूर्ण थी। अभी तक जो उड़ानें सोवियत भूमि से की जाती थीं। उन पर गोपनीयता का एक मोटा आवरण पडा रहता था तथा इसके दुष्परिणाम अटकलो और अफवाहों में प्रकट होते थे। इस बार संवाददाताओं को अंतरिक्ष अड्डे पर आने की इजाज़त दी गई तथा सोयुज़-4 की उड़ान को संपूर्ण योरप के टेलीविजन पर दिखाया गया।

सोयुज़-4 मे व्लादीमीर सवार था। अपने कक्ष में बैठकर उसने कहा था, 'मैं बड़े आराम में हू।'

यान के छूटने से पूर्व उसे नियंत्रण-केंद्र से सलाह दी गई कि वह किसी प्रकार की चिंता न करे, गहरी सांस ले।

उस समय सोयुज़-4 के छूटने में केवल एक मिनट शेष था।

सोयुज़' अर्थात् सम्मिलन

सोयुज-4 जब पृथ्वी की कक्षा में पहुंच गया तो वह पृथ्वी से अधिक-से-अधिक 140 मील दूर था और कम-से-कम 107 मील। स्पष्ट ही था कि यह यान किसी ऊंचाई को प्राप्त करने के लिए नहीं उड़ाया गया था बल्कि वातावरण की पकड़ में ही चक्कर काट रहा था।

आम आदमी को 'सोयुज़' का अर्थ स्पष्ट नहीं था। किन्तु जब उसी अड्डे से सोयुज-5 ने भी उड़ान भरी और वह सोयुज-4 से जा जुड़ा तो लोगों की समझ में आया कि 'सोयुज' का शाब्दिक अर्थ 'सम्मिलन' है।

सोयुज़-5 में मात्र एक यात्री नहीं था—तीन थे : खूनॉफ, वॉल्नीनॉफ और येनी स्यॉफ।

एक-दूसरे के निकट आने की क्रिया 16 जनवरी को आरंभ हुई। उन दोनों के बीच का फासला स्वतः चालित यंत्रों के द्वारा क्रमशः कम किया जाने लगा। जब वह फासला लगभग 300 फीट रह गया तो शैतेलॉफ़ ने सोयुज-4 को स्वयं चलाकर सोयुज़-5 के निकट किया तथा अंततः दोनों यान संबद्ध हो गए।

इन दोनों यानों को भली-भांति एक-दूसरे से जोड़ दिया गया तब उसी संबद्ध स्थिति में उन्होंने पृथ्वी की परिक्रमा करनी आरंभ कर दी। इस संबद्ध उड़ान को लेकर पश्चिमी वैज्ञानिक जगत् में तरह-तरह की अटकलों का बाजार गर्म हो उठा। यों यह क्रिया अंतरिक्ष-में स्टेशन-निर्माण की दिशा में ही एक महत्त्वपूर्ण कार्य था किंतु इस प्रयत्न को रूस की संभावित चंद्र-यात्रा से संबद्ध करके इसके नवीन अर्थों की तलाश होने लगी।

इन अटकलों का आधार अवश्य था। बात यह थी कि सोयुज और जोंद में जबरदस्त समानता थी। अब अमानव ज़ोंद चांद की कक्ष में सफलतापूर्वक कार्य कर चुका था। उसी कार्य की एक अगली कड़ी के रूप में समानव सोयुज के परीक्षण पृथ्वी के परिक्रमा-पथ में किए जा रहे थे।

फिर सोवियत संघ से जो टिप्पणियां इस उड़ान के विषय में की जा रही थीं, उनमें से एक से अधिक अर्थ निकाले जा सकते थे।

'सोयुज के ढंग के अंतरिक्ष यान एक सीमा तक आगामी समानव यानों के आधारभूत नमूने माने जा सकते हैं, जो कि पृथ्वी की कक्षा में विभिन्न प्रकार के वैज्ञानिक परीक्षण करने में समर्थ हो सकते हैं। इस समय दो संबद्ध घूमते यानों का कार्य विस्तृत परीक्षण करना है।' यह 'तास' के संवाददाता का कथन था। पर आगे उसने एक बात और कहकर अपना सारा कथन दुमायाना कर दिया :

'अंतरिक्ष-कार्यक्रम के इस अंश की जांच-पड़ताल के बिना उस अंतरिक्ष-अन्वेषण के लिए आगामी गंभीर योजनाएं बनाना संभव नहीं है, जिसमें विभिन्न अनुपातों में अमानव और समानव उड़ानें शामिल हैं।'

इस द्व्यर्थक कथन से कोई भी व्यक्ति यह सीधा-सादा अर्थ निकाल सकता था कि भविष्य मे वाह्य अतरिक्ष मे मानव को भेजने की सोंविचत योजना है तथा यह सब उसी की पूर्व भूमिका है।

यों आकाश-चारण—अपने यान से बाहर निकलकर आकाश-चारण इस समय तक कोई विशेष नई बात नहीं रह गई थी पर रूसियो ने इस उड़ान मे वातावरण की सैर को एक नया आयाम प्रदान किया। इस बार एक के स्थान पर दो अतरिक्ष यात्री खूर्नाफ और येलीस्यॉफ अतरिक्ष-पाशाकें पहने अतरिक्ष में साथ-साथ चहल कदमी करने के लिए सोयुज़-5 से बाहर निकल पड़े। इस कार्य मे उन्होंने एक घटा व्यय किया तथा पृथ्वी की कक्षा का आधे से अधिक चक्कर अपने यान से बाहर रहकर ही लगाया। संबद्ध यान पूरा चक्कर ८८ मिनट म लगा रहे थे।

और मजेदार बात यह कि जब वे दोनो लौटे तो वापस अपने यान मे नहीं गए वल्कि शैतेलॉफ़ से सवधित चंद चिट्ठिया उसे भेंट कीं। शैतेलॉफ़ ने भी 'स्वागतम' का फट्टा सामने रखकर अपने मित्रों का हार्दिक स्वागत किया।

धरती से डेढ सौ मील की ऊंचाई पर किए गए इस साहसिक, नवीन तथा क्रातिकारी कार्य पर 'तास' की यह टिप्पणी द्रष्टव्य है:

'यह सर्वथा प्रथम अवसर है जबकि परिक्रमा-पथ मे अतरिक्ष यात्री एक यान से दूसरे यान में गए। यह कमाल का परीक्षण वाह्य अंतरिक्ष में इसी प्रकार के कार्य करने की पूर्व स्थिति प्रस्तुत करता है जिनमें लंबी अवधि तक परिक्रमा-पथों में घूमने वाले स्टेशनों से बालकों का स्थानांतरण तथा अंतरिक्ष में फंसे यानों का बचाव सम्मिलित है।'

इस क्रिया के बाद भी दोनों सोयुज संबद्ध रूप में उडान करते रहे, अंतत दोनों यान असंबद्ध हो गए तथा आगे-पीछे उड़ते रहे।

अगली सुबह सोयुज़-4 पूर्व निर्धारित क्षेत्र में कज़ाकिस्तान में उतर गया। यह 17 जनवरी, 1969 की घटना है।

सोयुज़-5 सोयुज-4 की वापसी के वाद भी पृथ्वी के चक्कर लगाता रहा तथा आवश्यक परीक्षण करता रहा। अगले दिन एक टेलीविजन प्रदर्शन के बाद, सोयुज-5 भी अपने चालक वोल्यीनॉफ़ सहित पूर्व निर्धारित स्थान पर उतर गया।

'तास' के अनुसार इस सयुक्त उडान के अत्यधिक महत्त्वपूर्ण परिणाम निम्नलिखित हैं :

'अंतरिक्ष यानों की उलट-पलट, खोज, निकट लगना, साथ आना तथा संबद्ध होना—सारे व्यापार सफलतापूर्वक हुए,

'परिक्रमा-पथ में प्रयोगात्मक समानव अतरिक्ष-स्टेशन का निर्माण हुआ;

'एक अंतरिक्ष-यान से दूसरे अंतरिक्ष-यान मे दो यात्री गए। यह एक ऐसा परीक्षण था जिसने बाह्य अंतरिक्ष में ऐसे व्यापारों की पूर्ति के लिए मार्ग खोल दिया जिनके द्वारा सामान पहुंचाया जा सके, टूट-फूट की मरम्मत की जा सके, जोड़ने का

काम हो सके, कक्षा मे घूमते हुए समानव अतरिक्ष-स्टेशन के चालको का अदला-बदला जा सके तथा संकटपूर्ण स्थितियो मे चालको की रक्षा की जा सके,

'अलग-अलग उड़ानों तथा प्रयोगात्मक अंतरिक्ष-स्टेशन रूपी सयुक्त उड़ानो के दौरान अंतरिक्ष-यान की बनावट, उडन-व्यवस्थाओं, यान के अंग-प्रत्यगो और मूल आधारों की सागोपाग जाच-परख करना; तथा

'वैज्ञानिक-तकनीकी और औषध-जीव संबधी अनुसंधान, निरीक्षण और परीक्षण काफी बड़े पैमाने पर करना।'

इन परिणामों के आधार पर 'तास' ने इन उड़ानों का उपयोग इन शब्दो मे घोषित किया—

'सोयुज़-4 और सोयुज़-5 की उड़ान के परिणाम अंतरिक्ष प्राविधिकरण की ओर अधिक संपूर्णता के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं तथा इनका प्रयोग, भविष्य की समानव उडानो के विकास मे तथा वैज्ञानिक व आर्थिक उद्देश्यो के निमित्त परिक्रमा-पथ मे घूमने वाले समानव स्टेशनो के निर्माण में किया जाएगा।'

सोवियत सघ की इस उपलब्धि की चारों ओर से भूरि-भूरि प्रशसा की गई तथा पोलिश भाषा के त्रिब्यूना लूदू ने प्रथम परिक्रमा-पथीय स्टेशन के निर्माण की सराहना इन शब्दों में की :—

'अंतरिक्ष-विज्ञान के इतिहास की अधिकतम महत्त्वपूर्ण घटनाओं में से एक, जो कि अत्यधिक मौलिक महत्त्व की है।'

सोयुज़-अभियान के इस नए करतब ने अपोलो-अभियान को एक बार फिर आशंकाओं से हिला दिया। चद्र-विजय की दौड़ में प्रतियोगिता की जो भावना कार्य कर रही थी, उसने एक नई ऊंचाई छू ली तथा अपोलो-8 की आश्वासनों भरी उपलब्धि भी सबद्ध लोगों को खोखली-सी प्रतीत होने लगी।

इसका एक बहुत बडा कारण था : अमरीकी अतरिक्ष-यात्रियों ने मशीन और मनुष्य की सपूर्ण कुशलता का प्रदर्शन किया अवश्य था किंतु चांद की जमीन अभी भी काफी दूर थी तथा अपोलो-यान में एक अन्य कक्ष (चंद्र-कक्ष) जोड़े बिना उसे जमीन पर उतारा भी नहीं जा सकता था। यह ठीक है कि सोवियत समानव यान ने चांद का एक भी चक्कर नहीं लगाया था पर जोंद-5 और जोंद-6 की अमानव उड़ानों के बाद रूसी सामर्थ्य के विषय मे पश्चिम को भी कोई सदेह नही रह गया था। अपने चंद्र-कक्ष को लेकर जो परीक्षण अमरीका को करने थे, वे सोयुज़-4 और सोयुज़-5 की संमिलन उड़ान के द्वारा किए जा चुके थे। अतः सोयुज सफलता के बाद अमरीकी अंतरिक्ष-विज्ञान के कान खड़े होने स्वाभाविक थे।

असल मे अमरीकी विज्ञान की योजना ही कुछ ऐसी थी (तथा इसके अतिरिक्त कोई और हो भी नहीं सकती थी) जिसमें चंद्रमा के 'वातावरण' में कार्य करने योग्य एक विशेष कक्ष का निर्माण किया जाए। इस कक्ष को उन्होंने 'लम्' (एल एम) कहा जो कि Lunar module (चंद्र-कक्ष) का संक्षिप्त रूप था। बाद में बोलने की

सुविधा के लिए उन्होंने लम्' को लेम् (एल ई एम) बना लिया था

लम् अथवा लेम् का इतिहास लगभग एक दशक पुराना है। यह समस्या उसी समय उठ खड़ी हुई थी कि चांद पर उतरा कैसे जाएगा, जब मनुष्य ने गुरुत्वाकर्षण-भेदन की सामर्थ्य प्राप्त कर ली थी। अब चंद्र-कक्ष को सच्चे अर्थों में अंतरिक्ष-यान बनाने की बात थी, क्योंकि जो यान भूमि के वातावरण में भी प्रयुक्त होते रहे उन्हें 'अंतरिक्ष-यान' कैसे कहा जा सकता था, फिर इस यान को ऐसे ढंग से बनाने की जरूरत थी कि यह चांद के गुरुत्वाकर्षण (जो कि पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण का 1/6 है) में सफलतापूर्वक कार्य कर सके। इसी कारण इस कक्ष को मुख्य यान मे लादकर ले जाने की बात थी (वास्तव में चंद्र-कक्ष को शनि प्रक्षेपक में बंद करके ले जाया गया था)।

हां, अपने क्षेत्र में पहुचकर चंद्र-कक्ष सर्वे-सर्वा था अथवा हो सकता था। इसमे केवल एक ही परेशानी थी और वह यह कि चंद्र-कक्ष को चाद की कक्षा में मुख्य यान से असंबद्ध होना था तथा नीचे चंद्र-तल पर उतरना था। और चद्र-तल पर अपना कार्य संपन्न करके इसे फिर चांद के चक्कर काटते हुए मुख्य यान से संबद्ध होना था। इस प्रक्रिया में इसका अवरोह भाग चद्र-भूमि पर ही रह जाना था।

चद्र-कक्ष के मौलिक विचार का श्रेय नासा के एक इजीनियर डॉ. ह्यूबोल्ट को दिया जाता है जिसने चंद्र-कक्ष-संमिलन (lunar Orbit rendezvous) योजना 1961 मे प्रस्तुत की थी। किंतु दुर्भाग्यवश उसके विचार को किसी भी दशा में समर्थन नहीं मिला। और तो और, प्रक्षेपक विशेषज्ञ व्हॉन ब्रॉन ने भी ह्यूबोल्ट के सुझाव को स्पष्ट रूप से अस्वीकार कर दिया।

वास्तव में, नासा के शक्तिशाली अधिकारियों के समक्ष पहले से ही कुछ विकल्प मौजूद थे जिनमें एक यह भी था कि चांद पर एक प्रत्यक्ष योजना द्वारा उतरा जाए—प्रक्षेपक-यान को लेकर भूमि से उड़े तथा चंद्र-भूमि पर उतर जाए और वहा से वापस पृथ्वी पर लौट आए।

ह्यूबोल्ट को यह तरीका बडा अजीब और अव्यावहारिक लगता था। उसका कहना था कि जब एक छोटा-सा कक्ष चंद्र-तल पर उतारा जा सकता है तो पूरा-का-पूरा यान उतारने के झंझट में क्यों पड़ा जाए। उसको अन्य अधिकारियों की वैकल्पिक योजनाओं का खोखलापन स्पष्ट नजर आता था।

1961 मे ही अमरीका के तत्कालीन राष्ट्रपति ने अपने राष्ट्र के इस संकल्प की घोषणा कर दी कि 1970 तक चंद्र-लोक में मनुष्य को भेज देना है। इस प्रतिबद्धता के अंतर्गत द्विगुणित उत्साह के साथ चांद पर उतरने की योजनाओं पर कार्य होने लगा पर ह्यूबोल्ट के रचनात्मक एवं व्यावहारिक सुझाव को फिर भी किसी ने घास नहीं डाला। उसने बहुत ही हाथ-पांव मारे—शायद ही ऐसी कोई समिति हो जिसके समक्ष उसने अपना विचार ज़ोरदार शब्दों में प्रस्तुत न किया हो किंतु वहां तो ऐसा वातावरण बन चुका था कि ह्यूबोल्ट की आत्मा की आवाज मात्र नक्कारखाने मे तूती

की आवाज बनकर रह गई।

अंत मे चारो ओर से निराश होकर दृढ-प्रतिज्ञ ह्यूबोल्ट ने नासा के सहायक प्रशासनिक अधिकारी रॉबर्ट सीमेंस को इस विषय में एक पत्र लिखा। अपने पत्र मे अपनी घोर निराशा की अभिव्यक्ति के साथ-साथ उसने यह वचन भी दिया कि यदि उसे अनुमति मिल जाए तो वह बहुत जल्दी मनुष्य को चाद पर पहुचाकर दिखला देगा।

ह्यूबोल्ट का यह पत्र बड़ा महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ। रॉबर्ट सीमेंस को यह सुझाव पसद आ गया। उधर, इस बीच अन्य सभावनाओ की अव्यावहारिकता उनके निर्माताओं की समझ मे संभवतः आ चुकी थी। इसीलिए ह्यूबोल्ट के सभी विरोधी एक-एक करके क्रमशः उसके पक्ष में आते गए। अंत में बर्नर व्हॉन ब्रॉन का विचार भी 1962 मे बदल गया तथा ह्यूबोल्ट के कथनानुसार, 'मुझे लगा कि अंतिम विघ्न भी विदा हुआ।'

आगे चलकर तो ह्यूबोल्ट का इतना सम्मान हुआ कि नासा ने उसकी दूरदर्शिता के लिए उसको अपना 'विरल वैज्ञानिक-उपलब्धि पुरस्कार' प्रदान किया। पर ह्यूबाल्ट को उसका सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार तो 3 मार्च, 1969 को प्राप्त हुआ, जब उसने अपोलो-9 की उड़ान के रूप में अपने उस स्वप्न को साकार होते हुए देखा जिसके लिए उसने बड़ी तल्लीनता, साहस और परिश्रम द्वारा सतत संघर्ष किया था।

उसकी सिद्धि-कथा के संदर्भ में उस अभागे सोवियत यान्त्रिक यूरी कोंद्रयात्युक की असफलता की कहानी याद आनी स्वाभाविक है, जिसने लगभग 50 वर्ष पूर्व इस विचार को खोज निकाला था। पर रूसी विज्ञान ने उसकी एक न सुनी तथा इसका बहुत बड़ा मूल्य सोवियत विज्ञान को चुकाना पड़ा : चंद्र-दौड़ में रूस अमरीका से सदा-सदा के लिए पिछड गया। कहीं कोंद्रयात्युक वाली नियति ह्यूबोल्ट की भी हो जाती (जिसकी लगभग पूरी संभावना थी) तो चंद्र-विजय का स्वप्न कम-से-कम कुछ वर्षो के लिए तो सत्य से दूर चला ही जाता।

आखिर 3 मार्च, 1969 को अपोलो-9 ने चंद्र-कक्ष-सहित भूमि की कक्षा मे परीक्षण-हेतु प्रस्थान कर ही दिया।

असल में जिस समय अपोलो-8 अपनी अभूतपूर्व सिद्धि के उपरांत प्रशात महासागर में उतर रहा था, उसी समय अपोलो-9 अपने दैत्याकार ट्रेलर पर सवार होकर 3 मील प्रति घंटा की गति से क्षेपण-मंच की ओर बढ़ रहा था। अपोलो-9 की उड़ान की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसके साथ चंद्र-कक्ष भी ले जाया जा रहा था, जिसका संमिलन-परीक्षण पहली बार पृथ्वी की कक्षा मे किया जाना था। चंद्र-कक्ष को आदेश-कक्ष और सेवा-कक्ष से नीचे शनि-5 प्रक्षेपक के ऊर्द्ध भाग में पैवन कर दिया गया था ताकि ऊपर जाते समय वातावरण के घर्षण से उसे कोई क्षति न पहुंचे।

अपोलो-9 की महत्त्वपूर्ण यात्रा

यथार्थ में तो अपोलो-9 की उडान तीन दिन पहले आरंभ होनी थी किंतु 26 फरवरी को एक नई समस्या आ खडी हुई : तीनों अतरिक्ष-यात्री—मैकूडेविट, श्वीकार्ट और स्कॉट—अस्वस्थ हो गए। वे तीनों जुकाम व ठड से पीड़ित थे। अतः साय पाच बजे नासा की निम्नलिखित सूचना दी गई :—

'अपोलो-9 की उड़ान के चालकों ने आज अपेक्षाकृत विश्राममय अपराह्न व्यतीत किया जबकि क्षेपण-संयंत्र पर उल्टी गिनती का कार्य निर्विघ्न रूप से चल रहा है।'

बुलेटिन के अंत मे कहा गया था—'चालक-वर्ग की स्वास्थ्य-दशा तथा 28 फरवरी की क्षेपण-तिथि पर उसके संभावित प्रभाव के विषय मे कल सुबह किसी समय निर्णय किए जाने की संभावना है।'

पर 27 फरवरी की सुबह को जो निर्णय लिया गया, उसके अनुसार क्षेपण-कार्य 3 मार्च, 1969 तक के लिए स्थगित कर दिया गया।

3 मार्च, 1969 को आकाश मेघाच्छन्न था और केप कैनेडी का अंतरिक्ष-अड्डा मनुजाच्छन्न था। विशेष रूप से वहां उपस्थित व्यक्तियों में अमरीका के वर्तमान उप राष्ट्रपति एग्न्यू भी थे।

जिस समय अपोलो-9 ने अपनी उडान आरंभ की तो चारों ओर मीलों दूर तक लाखों आदमियों के कलेजे दहल गए। किंतु उड़ान का आरभ निर्दोष था। भूमि-नियंत्रण-केंद्र ने अंतरिक्ष-यात्रियो को सूचित किया, 'अपोलो-9, तुम्हारा मार्ग प्रशस्त है। सभी कुछ ठीक है।'

मैक्डेविट ने मात्र 'रोजर' कहकर अपनी स्वीकृति प्रकट की। 119 मील की ऊचाई पर अपोलो-9 पृथ्वी की प्रस्तावित कक्षा में स्थापित हो गया।

अपोलो-9 अपनी नियमित कक्षा में घूम रहा था तथा शनि-5 का वह अंतिम चरण अब भी उससे सबद्ध था जिसमें चंद्र-कक्ष संभालकर रखा गया था।

यथासमय बारूदी चटखनियों को चालित किया गया तथा परिणामस्वरूप शनि-5 प्रक्षेपक का अंतिम चरण अपोलो-9 से भिन्न हो गया। साथ ही उस गोदाम के चार द्वार पखुडियों की तरह खुल गए जिसमें 'मकड़ा' कैद था।

इसके बाद अपोलो-9 कुछ पीछे हटा तथा मुड़कर चंद्र-यान के साथ घाट लग गया। तब स्कॉट ने कहा, 'घाट लगने की क्रिया सुविधाजनक रही।' और साथ ही दोनो यानों को संबद्ध कर दिया गया तथा शनि-5 प्रक्षेपक के अंतिम चरण को सूर्य का कृत्रिम उपग्रह बनने के लिए छोड़ दिया गया।

अपोलो-9 मे एक ऐसी पतली सुरंग बनाई हुई थी जो यथासमय सिकुड़ने अथवा दबने वाली थी। उड़ान के तीसरे दिन स्कॉट ने उक्त सुरंग को खोला, दबाव-युक्त किया तथा मैक्डेविट और श्वीकार्ट उसी सुरंग मे से रेंगकर चंद्र-कक्ष मे चले गए। यह पहला अवसर था जबकि कोई अतरिक्ष-यात्री कक्षा में घूमते समय इस कक्ष में प्रविष्ट हुआ था।

चद्र-कक्ष म ये दोना लगभग 9 घटे तक रहे वहा इन्होने विभिन्न कल-पुर्जो की जांच की तथा उसके इजन को भी चलाकर देखा इसी दौरान इन्होने 5-6 मिनट की समयावधि के भीतरी भाग के टेलीविजन चित्र भी भेजे इसके बाद ये लोग आदेश-कक्ष में लाट आए।

अपोलो-9 की उडान के दौरान श्वीकार्ट के वातावरण-सतरण की योजना भी थी। पर चद्र-कक्ष मे जाते समय वह अचानक ही अस्वस्थ हो गया था इसलिए अंतरिक्ष मे सैर के प्रोग्राम को रद्द कर देने का ही विचार था। किंतु बाद मे श्वीकार्ट की तबीयत ठीक हो जाने के कारण मैक्डेविट के आग्रह पर थोड़े समय के लिए उसने अतरिक्ष में चहल-कदमी की तथा कुछ फोटोग्राफी भी की। उसने यह अभ्यास भी करके देखा कि यदि दो यान घाट लग जाएं कितु सबद्ध न हो तो एक यान के यात्री दूसरे में कैसे आ सकते है। वास्तव मे, यह परीक्षण चंद्रमा पर जाने के लिए तथा विशेष रूप से लौटने के लिए जरूरी साबित हो सकता था।

चद्र-यान को स्वतंत्र रूप से उड़ाकर देखने के लिए 7 मार्च, 1969 को मैक्डेविट और श्वीकार्ट फिर उसी दबने वाली सुरंग द्वारा चंद्र-कक्ष में जा पहुंचे। आज जो परीक्षण उनको करना था, वह सचमुच ही अनत सभावनाओं एवं आशंकाओं से भरपूर था। यदि यह परीक्षण योजनाबद्ध तरीके से सफल हो जाता तो चद्र-विजय के आसार अच्छे बनते थे और यदि किसी कारणवश असफल रह जाता तो इसका तात्कालिक दुष्परिणाम तो यह होता कि दो जीते-जागते स्वस्थ युवक लाशों के रूप में अंतरिक्ष मे घूमते हुए रह जाते। पर जैसा कि सर्वविदित ही है, चद्र-यान को मुख्य यान से अलग करने और पुनः जोडने का कार्यक्रम सफलतापूर्वक संपन्न किया गया।

चद्र-कक्ष में पहुंचकर सबसे पहले तो दोनो अंतरिक्ष-यात्रियों ने उक्त कक्ष की सागोपाग जांच की तथा यह देखा कि उसके सभी कल-पुर्जे ठीक ढंग से कार्य कर भी रहे हैं या नहीं।

अपनी तसल्ली कर लेने के बाद उन्होंने उस आघातक को दाग दिया जिसे चन्द्र-कक्ष को मुख्य यान से अलग ले जाना था। तुरंत बाद ही दोनो यान एक-दूसरे से दूर हटने लगे तथा होते-होते 100 मील की दूरी तक चले गए। तब मैक्डेविट ने वह इंजन भी दाग कर देखा जिसकी मदद से बाद में चंद्र-भूमि पर बिना झटके के उतरना था। इस परीक्षण में मैक्डेविट को कोई कठिनाई नहीं हुई।

लगभग पौन घंटे दोनों यानों को फिर से घाट लगाने की बारी आई। जैसा कि स्पष्ट ही है, परीक्षण का यही अंश सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और खतरनाक था।

कुछ समय तो दोनों यानों के चालकों ने एक-दूसरे के चित्र लेने में व्यतीत किया—इस बीच दोनों यानों के मध्य का फासला क्रमशः कम होता जा रहा था।

इसके बाद पूर्व योजना के अनुसार मुख्य यान और चंद्र-कक्ष एक-दूसरे से आ जुड़े तथा दृढ़ता मे सबद्ध हो गए।

अपोलो-9 इसके बाद भी पाच दिन तक पृथ्वी की परिक्रमाए करता रहा।

चद्र कक्ष को भूमि पर वापस लाना सभव नहीं था इसलिए उसे अतरिक्ष मे ही छाड दिया गया और फोटोग्राफी तथा अन्य अनेक प्रयोगों, परीक्षणो तथा अध्ययनो मे शेष पाच दिन व्यतीत किए गए। हालांकि इन परिक्रमाओ में आम आदमी की कोई रुचि नही रह गई थी। बल्कि लोग आश्चर्य कर रहे थे कि अपोलो-9 का उद्देश्य पूर्ण हो जाने के बाद भी उसे निरर्थक रूप से आसमान में क्यों टांगा हुआ है। परन्तु साधारण मनुष्यों की बुद्धि से यह परे की बात है कि अंतरिक्ष-यात्रियों को किसी एक प्रमुख परीक्षण के साथ अन्य सैकड़ो परीक्षण व प्रयोग भी करने पडते हैं जो कि अगली उड़ानों के लिए उपयोगी सिद्ध होते है।

आम आदमियों का ध्यान तो अब उन लोगों की सकुशल वापसी पर अटका हुआ था। उनकी वापसी का प्रश्न थोड़ा इसलिए भी रुचिकर हो गया था क्योंकि बरमूदा के दक्षिण-पश्चिम का वह क्षेत्र मौसम की खराबी के कारण खतरनाक हो गया था जहां कि तीनों अंतरिक्ष-यात्रियों को उतरना था।

खैर, मैकडेविट स्कॉट और श्वीकार्ट सही-सलामत समुद्र में उतरे तथा अपना कार्य पूर्ण रूप से संपन्न करके उतरे।

अपोलो-9 की उड़ान ने यह सिद्ध कर दिया कि मनुष्य को चांद पर उतारने मे सर्वथा समर्थ यान अब उपलब्ध है। किंतु फिर भी चंद्र-विजय के आयोजन में कोई अनावश्यक हडबड़ी नहीं दिखाई गई। इस सफलता के बाद यह सोचा गया कि चंद्र-कक्ष का परीक्षण पृथ्वी की कक्षा में सफल रहने के बाद भी पूर्ण नही हुआ। इसका कारण यह था कि पृथ्वी की कक्षा में वातावरण उपस्थित है जबकि चंद्रमा की कक्षा मे वातावरण नाम की कोई उपस्थिति नहीं है। अतः मुमकिन है, वातावरण-रहित उस क्षेत्र में चंद्र-यान की प्रतिक्रिया कुछ भिन्न हो।

फिर चंद्रमा के कुछ स्थलों पर गुरुत्वाकर्षण कम है—कुछ पर अधिक। इसलिए चद्र-यान की उड़ान चांद के परिवेश में कर लेनी अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकती थी। उक्त यान को चंद्र-तल से लगभग 10 मील की दूरी पर उडाकर न केवल गुरुत्वाकर्षण के ऊंच-नीच तथा तज्जनित प्रतिक्रियाओं को जांच लेने की सुविधा थी, बल्कि उस स्थल को भी अधिक निकट से देख लेने की गुंजाइश थी जहां अंततः मनुष्य को उतरना था।

अपोलो-10 तथा चंद्र-यान का परीक्षण

एक बात और भी थी : अपोलो-9 की उड़ान के दौरान चंद्र-कक्ष में कुछ कमिया पाई गई थीं जिनको ध्यान में रखते हुए कुछ नवीन परिवर्तन अवश्यम्भावी थे। साथ ही उन परिवर्तनो का पुनः परीक्षण भी अनिवार्य था। इसलिए यही निश्चय किया गया कि चंद्र-विजय का संपूर्ण पूर्वाभ्यास अपोलो-10 द्वारा चंद्र-कक्षा के मंच पर ही हो।

अपोलो-10 वास्तव में अपोलो-11 का पूर्वाभ्यास ही नहीं था। केवल चाद के

धरातल से 9 मील की दूरी तक पहुंचना ही वास्तविकता नहीं थी—वास्तविकता थी एक उपग्रह तक पहुच जाने की जो कि वास्तव मे अंतर्ग्रहीय यात्रा की आशाप्रद शुरूआत थी। अभी तक अधिकाश में मनुष्य ने चाद को कल्पना तथा अनुमान की ही बाहों में बाधा था। उसकी बौद्धिक अटकले उसे वहुत आगे नहीं ले गई थी। यह माना कि टेलिस्कोप ने मनुष्य को चांद का अपेक्षाकृत कुछ अधिक निकट परिचय दिया था, फिर भी आम आदमी के लिए चाद एक देवता ही था, जिसकी पूजा विभिन्न वर्गो मे विभिन्न प्रकारो से होती थी। सामान्य मनुष्य तक चाद की कठोर वास्तविकताओ को पहुंचाने का कार्य अपोलो-10 के अतरिक्ष-यात्रियों—स्टैफोर्ड, सर्नन और यग द्वारा किया गया। उन लोगों ने न केवल खुद आश्चर्य और आह्लाद उत्पन्न करने वाले रोमाचक अनुभव किए, बल्कि उनके पर्याप्त अश टेलीविज़न-चित्रो तथा साथ-साथ दी जाने वाली टिप्पणियो द्वारा साधारण मनुष्य तक भी पहुंचाए। और तो और, उस आतंक की अनुभूति भी आम आदमी तक पहुंची, जो चद्र-यात्रियों ने स्वयं सहा और झेला था। अतः यह निर्विवाद सत्य है कि अपोलो-10 की उडान ने इस पृथ्वी के मानव को चाद का वह विरल परिचय प्राप्त कराया था जिसे अपोलो-8 भी नही दे सका था। फिर अपोलो-9 ने वही तो करके दिखाया था जो 'सोयुज़' उससे कई महीने पूर्व कर चुके थे।

अपोलो-10 की उडान 18 मई, 1969 को आरंभ हुई। यह बिना किसी विघ्न-बाधा के पृथ्वी से उठा तथा स्वाभाविक ढग से पृथ्वी की पार्किंग-कक्षा में पहुच गया (पार्किंग-कक्षा पृथ्वी का वह परिक्रमा-पथ है जिसमें घूमकर यान के सभी कल-पुर्जो की अतिम रीति से जांच-परख की जाती है कि यान चद्र-यात्रा के उपयुक्त है अथवा नही)। क्योकि यान के सभी यत्र बिल्कुल ठीक कार्य कर रहे थे इसलिए चाद की ओर प्रस्थान करने में उन्हे कोई कठिनाई नही हुई। बल्कि जब उन्होंने पहले टेलीविजन-चित्र भेजने आरंभ किए तो सामान्य व्यक्ति को लगा कि तीनों चंद्र-यात्री तो अपने पथ पर रवाना भी हो चुके है।

पृथ्वी की कक्षा से निकल जाने के कुछ समय बाद चंद्र-यात्रियों ने अपने यान को शनि-5 प्रक्षेपक के तीसरे चरण से विलग कर लिया। चद्र-यान उर्फ़ 'स्नूपी' उसी तीसरे चरण की नाक मे सुरक्षित रखा हुआ था। मुख्य यान अर्थात् चार्ली ब्राउन ने अपने आप को घुमाया तथा 'स्नूपी' से सबद्ध होने की चेष्टा की। यह कार्यवाही पृथ्वी से लगभग 4,000 मील की दूरी पर चल रही थी।

जिस समय चार्ली ब्राउन और स्नूपी एक-दूसरे से मिलने के लिए निकट आते जा रहे थे तो वह रगीन कैमरा, जिसे अंतरिक्ष यात्री पहली बार अपने साथ ले जा रहे थे, अपना कार्य बडी खूबी से कर रहा था तथा स्नूपी के चित्रो के साथ पीछे छूटती हुई हमारी पृथ्वी के ऐसे आश्चर्यचकित चित्र भेज रहा था कि नियंत्रण-केंद्र के एक टिप्पणीकार को मानना पडा था, 'यह आज तक के दृश्यों में सबसे कमाल का दृश्य है।'

स्नूपी और चार्ली ब्राउन का संमिलन वड़े स्नेहपूर्ण 'वातावरण' मे हुआ तथा एक ओर शनि-प्रक्षेपक का तीसरा चरण सूर्य का कृत्रिम उपग्रह बनने की खुशी मे उधर को दौड चला—दूसरी ओर चार्ली ब्राउन (मुख्य यान) तथा स्नूपी (चद्र-यान) ने चांद की ओर संमिलित उड़ान आरभ कर दी।

पृथ्वी के रगीन चित्र 25,000 मील से अधिक की दूरी से भी भेजे गए जो कि पृथ्वी के ही निवासियो के लिए अजूबा थे। उन बेचारों को क्या पता था कि उनकी पृथ्वी का एक रूप यह भी है।

पृथ्वी को विभिन्न रूपों मे दिखाने का यह कार्य अपोलो-10 ने जारी रखा तथा विभिन्न दूरियों से टेलीविज़न सेट्स पर अपनी ही धरती के एक-से-एक नायाब चित्र देखकर मनुष्य हैरान रह गए क्योंकि पृथ्वी की यह मोहक छविया तो उनकी कल्पना से परे की बात थी। असल में नासा की आरंभ से ही यह नीति रही है कि चद्र-विजय अभियान मे मानव-मात्र अपने आपको सबद्ध और प्रतिबद्ध समझे--ऐसा न समझा जाए कि वे कोई अलग ही लोग है जो आम आदमी के पैसे से यह तमाशा कर रहे हैं, इसीलिए टेलीविज़न चित्र देखने-दिखाने पर शुरू से ही जोर रहा तथा सामान्य आदमी ने अपने आप को सचमुच ही इस अभियान से सबद्ध समझा। टेलीविजन चित्रों के महत्त्व को समझते हुए ही एक-से-एक श्रेष्ठ टेलीविजन कैमरे बनाए गए जिनमें 12 पाउड वजन का नवीनतम रगीन कैमरा अपोलो-10 के साथ था।

रंगीन कैमरे के विषय में यह जान लेना उचित है कि यह कैमरा रंगीन चित्र लेता नही, बल्कि उसके द्वारा भेजी गई किरणें एक वर्ग-चक्र में से गुजरकर तस्वीरों को स्वाभाविक रंगों का बना देती हैं।

किंतु टेलीविजन चित्रों से केवल पृथ्वी के वासियों को ही लाभ नहीं होता कि उन्हे इतनी दूर की घटनाओ मे तत्काल शामिल होने का आनद प्राप्त हो जाता है, बल्कि चंद्र-यात्री भी इससे लाभान्वित होते हैं—उन्हें इतनी दूरी पर भी पृथ्वी से सतत सपर्क के कारण ऐसा अनुभव होता रहता है जैसे अतरिक्ष के उस अनंत मार्ग पर वे अकेले नहीं हैं, बल्कि सपूर्ण पृथ्वी अपने तमाम निवासियों सहित उनके साथ है।

खैर, अपोलो-10 निर्विघ्न रूप से चद्र-कक्षा में पहुच गया। उसकी कक्षा लगभग वृत्ताकार थी तथा ले-देकर यान चद्र-तल से 69 मील दूर था। यहां पहुंचकर अपोलो-10 को यथार्थ कठिनाई का सामना करना पड़ा। वास्तव मे, हुआ यह कि उड़ान चरण मे स्नूपी को दवाबपूर्ण किया गया होगा।

इसी क्रिया के दुष्परिणाम स्वरूप चार्ली ब्राउन के सिकुड़ने वाली सुरग में जाने वाले अर्द्ध द्वार की गद्दी फट गई। नतीजा यह निकला कि सफेद रेशेदार शीशे का पृथक्करण (इंसुलेशन—जिसके बीच से विद्युत व उष्णता न गुजर सकें) टुकडे-टुकड़े होकर सुरग मे भर गया इतना ही नहीं बल्कि इस अवांछित फैलाव के कारण सुरग

जा सकता था।

अब दिक्कत यह है कि ऐसी चीज़ो में प्रतिक्रिया शृखला के रूप मे होती है। अत. इसका और आगे का बुरा फल यह निकला कि सुरग को दवाव-रहित किया जाना अत्यंत कठिन हो गया तथा यह भय पैदा हो गया कि यदि ऐसी अवस्था मे स्नूपी को चार्ली ब्राउन से असंबद्ध किया गया तो अत्यधिक दवाब के कारण उसके प्रवेग में अवाछित वृद्धि न हो जाए।

ये सारे तथ्य तब हाथ आए, जबकि रेगते हुए स्टैफ़ोर्ड ने उस पतली नाली सी सुरग में प्रवेश किया। अगले चक्करो मे तो यह स्पष्ट ही हो गया कि इस संकटपूर्ण स्थिति से उस लक्ष्य को पा लेना सरल नही है, जिसके लिए अपोलो-10 की उडान की तवालत उठाई गई है।

यह ऐसी विकट समस्या थी कि इसके विषय में भूमि-स्थित नियंत्रण-केंद्र भी चिंतित हो उठा। किंतु इसका समाधान निकाल लिया गया। पहले सुरंग की ऑक्सीजन को स्नूपी मे भेजा गया तथा स्नूपी के गवाक्ष से उसे बाहर अंतरिक्ष मे ठेला गया।

एक समस्या समाप्त नहीं हुई थी कि उसी में से दूसरी समस्या ने अपना कुरूप चेहरा निकाल लिया। सभवतः इस सारे उलट-फेर का दुष्परिणाम यह निकला कि जिस स्थान पर स्नूपी चार्ली ब्राउन से आबद्ध था, वहा उसके कोण में लगभग 3 डिग्री का अंतर आ गया। इसका दुष्परिणाम और आगे चलने वाला था : यदि यह अतर और बढ़ जाए तो संबद्ध-यंत्र को ही खतरा पैदा हो सकता था तथा उक्त यंत्र के टूट जाने अथवा तुड़-मुड जाने की अवस्था मे असंबद्ध स्नूपी को चार्ली ब्राउन से दुबारा नहीं जोड़ा जा सकता था। इसीलिए नियंत्रण-केंद्र ने यह आदेश दिया कि यदि स्नूपी के कोण में 3 डिग्री तक का फर्क पड़ जाए तो उसे असबद्ध न किया जाए। किंतु इस समस्या पर भी काबू पा लिया गया तथा चंद्रमा के पिछले पक्ष से दोनों यान अलग-अलग होकर निकले। मुख्य यान में बैठे हुए एकाकी यात्री यग ने अपने दोनो मित्रों से कहा, 'इस श्रेष्ठ कार्य को कर डालो। यह पता तुम्हे शायद ही कभी लगे कि जब मुख्य यान में एक व्यक्ति रह जाता है तो यह सारा परिवेश कितना बडा हो जाता है।'

जब स्नूपी ने सर्वथा अकेले चांद की पहली परिक्रमा की तो चंद्र यात्रियों ने रॉकेट इंजन चलाकर अपने यान की गति कम कर ली ताकि धरातल के निकट सुरक्षापूर्वक पहुंचा जा सके।

इंजन ने अपना कार्य आशा के सर्वथा अनुरूप किया और स्नूपी उस कक्षा में दाखिल हो गया जिससे वह चंद्र-तल से 9 मील से भी कम फासले पर पहुच सकता था। तब कहीं स्टैफोर्ड ने भूमि-स्थित नियंत्रण-केंद्र को बतलाया, 'चार्ली, हम नीचे पहुंच गए हैं।'

स्नूपी जब ध्वनि की गति से छह गुना अधिक गतिपूर्वक उड़ता हुआ उस स्थल के ऊपर से गुजरा जहां अपोलो-11 के यात्रियों को उतरना था तो स्टैफोर्ड ने चीखकर

कहा, ओह, वह देखो।

इस प्रकार 'शांत सागर' के ऊपर पहुंचकर तो दोनों चंद्र यात्री आवेश के मारे आपे से बाहर हो गए—

'ओह चार्ली!' नियत्रण-केंद्र के वार्ताकार को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा, 'हमने अभी-अभी भूमि-उदय देखा था जो कि बहुत ही कमाल का था। यहा इतने पत्थर है चाहे पूरी गैल्वेस्टन की खाडी भर लो। यह कल्पनातीत दृश्य है। अच्छी बात है, हम उस स्थल के ऊपर आते है। यहा बड़ी भारी सख्या में विवर है। धरातल तो सचमुच ही बडा चिकना है जैसे खूब गीली मिट्टी। हा, बडे-बड़े ज्वालामुखियो के अपवाद अवश्य हैं।'

वे भयंकर क्षण

शात सागर का पहला निरीक्षण तो शांतिपूर्वक हो गया लेकिन अगली तथा अतिम परिक्रमा मे गडबड़ी पैदा हो गई। स्नूपी के अवरोह भाग को ज्यो ही अलग किया गया, उसके आरोह भाग में जबरदस्त झटके लगने लगे जैसे अपने निचले हिस्से के कट जाने से ऊपरी हिस्सा तड़प उठा हो। उसको संभालना कठिन हो गया।

'कुतिया का बच्चा।' कहकर एक क्षण तो सर्नन ने सारे नियंत्रण-केंद्र को विचलित कर दिया। असल में चद्र यात्रियों सहित स्नूपी का आरोह विभाग जोर-जोर से चक्कर खा रहा था। एक बार तो स्टेफोर्ड भी घबरा गया किंतु उसने यान का नियंत्रण अपने हाथों में ले लिया तथा लगभग एक मिनट के बाद यान काबू मे आया।

इसमें कोई संदेह नही कि स्टैफ़ोर्ड और सर्नन के जीवन के ये क्षण बहुत ही सकटपूर्ण और जोखिम भरे थे। यदि स्नूपी कुछ अधिक समय तक यथापूर्व झटके खाता रहता तो उसके चंद्र-धरातल से टकरा जाने का खतरा था। यदि टकराने की दुर्घटना न भी घटती तो भी ऐसी स्थिति में उसका मुख्य यान चार्ली ब्राउन से सबद्ध होना असंभव था।

उस भयकर परिस्थिति मे सर्नन तो इतना घबरा गया था कि उसकी नाडी की धडकनें दुगुनी हो गई थीं तथा वह गालियों की बौछार करने लगा था किंतु स्टेफोर्ड के धैर्य और कुशलता ने उस कठिन क्षण को संभाला। यह तथ्य तो बाद मे प्रकट हुआ कि चंद्रयान पर एक स्विच्-विशेष का स्थान बदला हुआ था जिसका ज्ञान चंद्र यात्रियों को नहीं था। अब जबकि अवरोह विभाग अलग हो गया तो आरोह विभाग का 'स्वतः चालक' अपना कार्य करता रहा तथा गणक के आदेश पर तेजी से मुख्य यान को तलाश करने लगा। वह तो उस स्विच् के स्थानापन्न स्विच् पर स्टैफ़ोर्ड का हाथ जा पड़ा तथा बात बन गई।

इसके बाद स्नूपी मुख्य यान चार्ली ब्राउन से संबद्ध होने के लिए ऊपर उठने लगा तथा यथासमय बारह शृंखलाओं ने दोनों यानों को एक-दूसरे से जोड दिया। तब स्टैफ़ोर्ड ने सूचना दी—

स्नूपी और चार्ली ब्राउन एक-दूसरे का आलिंगन कर रहे हैं हम लोग लगभग लौट आए हैं

और दो घंटे के बाद ही स्टैफ़ोर्ड तथा सर्नन अपने तीसरे सह यात्री यंग से आ मिले। स्नूपी को सूर्य की परिक्रमाएं करते रहने के लिए छोड़ दिया। इसके बाद इकतीसवें चक्कर में रॉकेट को चालू करके अपोलो-10 ने अपने आपको चंद्र-गुरुत्वाकर्षण के कोमल बाहु-पाश से स्वयं को मुक्त किया और अपने घर का रास्ता पकड़ा।

जब ये लोग अपनी पृथ्वी से लगभग 40,000 मील दूर थे तो अंतिम बार रंगीन टेलीविजन चित्र भेजे गए, जिनमें पृथ्वी के आधे भाग पर रात्रि का साम्राज्य था और शेष आधी सूर्य के सातों रंगों में नहाई हुई थी। चित्र-प्रदर्शन के साथ-साथ स्टैफोर्ड ने भूमि के विभिन्न भागों का वर्णन भी किया। उसके वर्णनों से लगता है जैसे उन लोगों को अपनी पृथ्वी से अपेक्षाकृत कुछ अधिक ही प्यार हो गया था। और ऐसा होना था भी स्वाभाविक। असल में उन लोगों ने चांद की भूमि अपनी आंखों से देखी थी तथा यह पाया था कि वह भूमि बड़ी भयंकर, ऊबड़-खाबड़ और आतिथ्य-भाव से हीन है। उसके मुकाबले में उन्हें अपनी पृथ्वी आतिथ्य की भावना में पूर्ण, स्नेहमयी तथा हरी-भरी प्रतीत हुई थी। यह भी असंभव नहीं है कि इन दोनों भूमियों के इस जबरदस्त अंतर का कारण भी उन्होंने समझा हो तथा यह स्वीकार किया हो कि रहने योग्य वही स्थान बनता है जहां मनुष्य का जादू-भरा हाथ छू जाता है।

चंद घंटों के बाद ही चार्ली ब्राउन वातावरण के दो डिग्री वाले मुख्य द्वार पर पहुंच गया जहां उसे सेवा-कक्ष तथा उसमें लगे निर्भर योग्य रॉकेट इंजन को अंतिम विदा देनी थी। उधर वातावरण के घर्षण से उत्पन्न ज्वाला में सेवा-कक्ष अंतिम बार चमककर भस्म हो गया, इधर 5,000 डिग्री फॉरनहाइट की उष्णता में से गुजरते हुए आग के गोले की तरह अपोलो-10 के आदेश-कक्ष ने समुद्र-सतरण की ओर प्रस्थान किया।

यथासमय 83 फीट चौड़े तीन हवाई छाते स्वतः खुल गए तथा आदेशकक्ष धीमी गति से इस प्रकार नीचे उतरने लगा जैसे विशाल छत्र से आवृत्त कोई उड़न खटोला उतर रहा हो।

सकुशल वापसी

ये लोग अपने विमान-वाहक 'प्रिन्स्टन' से तीन मील से भी कम फासले पर सकुशल पानी में उतर आए तथा वहां की सामान्य औपचारिकताओं के बाद विमान-वाहक पर पहुंच गए।

चंद्र-यात्रियों की सकुशल वापसी के बाद 'नासा' के प्रधान टॉमस पेन ने कहा, 'आज इस क्षण जबकि अपोलो-10 के अंतरिक्ष-यात्री सकुशल इस जहाज पर उपस्थित

है, हमें मालूम है कि हम चांद पर जा सकते हैं - हम चांद पर अवश्य जाएंगे।'

हालांकि नासा का चरम लक्ष्य चंद्रमा नहीं है। इसके निदेशक थॉमस पेन ने ही स्पष्ट किया था—'अपोलो लक्ष्य तो अंतर्ग्रहीय यात्रा की सामर्थ्य का प्रदर्शन है। हम युगों-युगों के इस प्राचीन प्रश्न का अत्यंत उत्तेजनापूर्ण संभावित उत्तर प्रस्तुत कर रहे हैं कि जीवन के जिस रूप को हम देखते हैं, क्या वह चांद तथा अन्य ग्रहों पर संभव हो सकता है / उत्तर ......है। मनुष्य इस पृथ्वी के जीवन-क्षेत्र को संपूर्ण सौर-मंडल में फैलाता है।'

किंतु अन्य ग्रहों पर तो मनुष्य जब जाएगा, तब जाएगा—उन दो मनुष्यों के बारे में हमारी क्या राय है जो तैयार जान की बाज़ी लगाकर चंद्र-तल से केवल ५ मील के फासले पर रह गए—उस पर उतर नहीं सके, उसे छू नहीं सके।

चांद के प्रथम स्पर्श का आनंद लेने की उत्कट अभिलाषा उनके एक वाक्य से झलकती है—'चांद के पर्वत हमारे इतने निकट हैं, जैसे कि हम इन्हें अभी छू लेंगे।'

छू लेने की बात अलग है, किंतु जो कार्य अपोलो-10 ने किया, उसी आधार पर चंद्र-विजय का भवन खड़ा किया गया, क्योंकि जिस समय स्टैफ़ोर्ड, सर्नन और यंग समुद्र संतरण के लिए तैयार हो रहे थे, उसी समय, उनकी सफलता से आश्वस्त होकर ही, अपोलो-11 अंतरिक्ष-यान 39-ए नंबर वाले क्षेपण-मंच की ओर ले जाया जा रहा था।

12. केप कैनेडी से उठता अपोलो-11

केप कैनेडी—उचित ही नाम है यह उस अतरिक्ष-अड्डे का जहा से चंद्र-यात्रा के लिए उडान भरी जाती है।

लगभग दस वर्ष पूर्व अमरीका के एक व्यक्ति—जॉन. एफ. कैनेडी—ने उस समूचे राष्ट्र को प्रतिबद्ध किया था एक अनुपम लक्ष्य-प्राप्ति के लिए—चद्र-विजय के लिए। महापुरुषों की वाणी मे शक्ति होती है। अमरीका के तत्कालीन राष्ट्रपति के एक आह्वान पर समूचा देश जैसे अगडाई लेकर उठ खड़ा हुआ था। बीस हजार शिल्पिक सयत्र, दो सौ विश्व-विद्यालय और चार लाख आदमी पलक झपकते मन, वचन और कर्म से इस महान् कार्य पर जुट गए, जिनके दिन-रात कार्य का परिणाम था हजारो प्रकार के उन नवीन कल-पुर्जो का निर्माण जिनकी मनुष्य ने कभी कल्पना भी नही की थी।

खैर, छोड़िए इन बातों को। आइए, केप कैनेडी चले तथा अपोलो-11 की उडान अपनी आंखो से ही देखें।

यह रहा केप कैनेडी जहा से नील आर्मस्ट्रांग, एड्विन एल्ड्रिन और माइक कॉलिन्स पहली बार चद्र-तल के लिए प्रस्थान करेगे। इसी प्रस्थान के विषय में उड़ान से एक दिन पूर्व शनि-प्रक्षेपक के जन्मदाता वर्नर व्हॉन ब्रॉन ने कहा था—

'चंद्रमा पर नील आर्मस्ट्रांग का पद-पात मानव-विकास की दिशा में सर्वथा एक नया कदम होगा। जिदगी पहली-पहली बार अपनी पृथ्वी के पालने से बाहर निकलेगी तथा मानव की अंतिम नियति इन जाने-पहचाने महाद्वीपों मे बंदी नहीं रहेगी जिनसे हमारा इतना पुराना परिचय है।'

कुछ वर्षो पूर्व यह स्थान उजाड़ और जंगली था। तब यह 'मेरिट आइलैंड' के नाम से जाना जाता था। इस स्थान के भाग्योदय में अणु बम तथा प्रक्षेपणास्त्र के विकास का जबरदस्त हाथ है। वास्तव मे, उन दिनो वैज्ञानिकों के मन मे यह बात बडी प्रबलता से घूम रही थी कि पृथ्वी का अन्वेषण पृथ्वी से बाहर निकलकर ही किया जा सकता है (मानव-निर्मित कृत्रिम उपग्रहों की उड़ान का आरंभिक लक्ष्य अपनी ही पृथ्वी का अन्वेषण था)। तब अमरीकी नौ-सेना ने इस स्थान को प्रक्षेपणास्त्रो के प्रयोगों के विचार से विकसित किया था किंतु अब तो यह चंद्र-उडान-अड्डा है।

उत्तरी अमरीका महाद्वीप पर पौ फट रही है रात के गहन अंधकार का उदय होते हुए सूर्य की किरणों ने धो दिया है हालांकि भारतीय उप-महाद्वीप पर रात उतर आई है। आज 16 जुलाई है न, 1969 की 16 जुलाई, जिस दिन मनुष्य को पृथ्वी के पालने को त्याग कर बाहर की ओर पांव बढ़ाना है। आज के दिन के मौसम की सही जानकारी के लिए मौसम-विशेषज्ञ पहले से ही इस दिशा में जुट रहे है तथा उनकी भविष्यवाणी है कि मौसम साफ रहेगा। फिर भी ये बादलों के टुकड़े केप कैनेडी पर क्यों मंडराने लगे हैं ? कहीं ये भी अपोलो-11 की उड़ान देखने तो नहीं आए ? हो सकता है, ये बादल-शिशु पौ फटने का दृश्य देख रहे हो और अभी थोड़ी देर में इधर-उधर खेल में लग जाए।

अपोलो-11 छोड़ने के समय के दृश्य

केप केनेडी की भूमि पर जो दैत्यों के से आकार आप देख रहे है, ये गैंट्री कहलाती है—सीढ़ीनुमा सीधी खड़ी यांत्रिक भुजाएं जो यान सहित प्रक्षेपक को उसी प्रकार संभाल कर रखती है जैसे मां अपने बच्चे को। अरे, आप तो इस गैंट्री-गिरोह में ही पकड़ गए। जरा इधर देखिए न, गैंट्री न. 39-ए की ओर। जनाब, अपोलो-11 यहा से उडेगा—जी हां, यहीं से। देख नहीं रहे हैं, सर्च लाइटों की आंखें चौंधिया देने वाली तीखी किरणों में सफेद कबूतर-सा अपोलो-11 जो अपने वाहन के सर पर सवार है। यह वाहन ही शनि-5 प्रक्षेपक है। 363 फीट ऊंचा तथा बीस लाख हड्डियों-पसलियों वाला दैत्य जिसकी टांगे, धड़ और गर्दन साफ नजर आ रहे हैं।

आप भारतीय हैं अतः आपने कुतुबमीनार तो अवश्य देखी होगी (कम-से-कम उसकी तस्वीर ही देखी होगी)। अपोलो-यान-सहित शनि-प्रक्षेपक हमारी कुतुबमीनार से डेढ़ गुने से अधिक ऊंचा है। फिर भी फटती पौ के अंधियारे में अपोलो-11 की यह विशाल काया 10 मील की दूरी से एक छोटी-सी उज्ज्वल चीज़ दिखाई देती है जैसी इंजेक्शन लगाने की एक विशाल सिरिंज।

अपोलो-11 कुल मिलाकर 83 फीट ऊंचा है। इसमें आदेश-कक्ष, सेवा-कक्ष और चंद्र-कक्ष—ये तीनों कक्ष शामिल हैं। फिर भी शनि-प्रक्षेपक के ऊपर बैठा यह यान कितना छोटा लग रहा है !

वह देखिए, नॉर्थ अमेरिकन रॉकवैल कंपनी के लोग सफेद-चिट्टे—दाग-धब्बे रहित वस्त्रों में लिपटे यान की जांच-पड़ताल में लगे हुए है किंतु कुल मिलाकर पचास-साठ लाख पुर्जों की पड़ताल करनी है। अब देख लीजिए यह सब कार्य कैसे होगा ? शायद आपको ज्ञात हो कि इस यान में एक गुप्तचर-विभाग पहले से ही छिपा बैठा है। सुविधा के लिए उसे 'संगणक संयंत्र' कह लीजिए। यह संगणक अपने बड़े अधिकारी से बराबर संपर्क बनाए हुए हैं जो कि उड़ान-नियंत्रण-केंद्र में आसीन हैं—अर्थात् इससे भी कहीं बड़ा संगणक संयंत्र। यान में बैठा संगणक एक-एक कल-पुर्जे, स्विच-बटन आदि को हजारों सेन्सरों के हाथों से टटोल-टटोलकर देख रहा है। उनसे

पूछ-ताछ कर रहा है कि उडान से पूर्व उनकी तबीयत कैसी है साथ ही एक-ए जाच पडताल की रिपोर्ट वह अपने अधिकारी को टता जा रहा है। यान का संगणक जब भी जरा शिथिल-सा पड़ता है तो तुरत उसका अधिकारी अपनी यात्रिक भाष में पूछता है :—

'क्यो भाई, चुप क्यो हो ? खैर तो है ?' यान का संगणक उत्तर देता है, 'जर एक केबल से उलझ गया था बात-चीत मे।'

इस प्रकार प्रति क्षण यात्रिक भापा मे दोनों संगणकों में आदान-प्रदान चल रहा है।

अरे, आप मेरा मुह क्या देख रहे हैं ? क्या सब कुछ आखो से ही देखने की चीज होती है ? भले आदमी बुद्धि की आंख तो उपयोग में लाइए। संगणको के वार्तालाप को तो आप बुद्धि की आख से न सुन सकेंगे—सुनने का कार्य कान जो करते हैं। जी हां, बुद्धि के कान !

यह जानकर कि पुर्जो की जांच-पडताल पुर्जे ही करते है तथा यंत्रों की देख-भाल यत्र के ही हाथ में है, आप आश्चर्य-चकित्त होने के साथ-साथ कुछ आश्वस्त से भी नजर आ रहे है किंतु मै आपके मुख पर लिखा एक प्रश्न साफ पढ़ सकता हू

'क्या कोई पुर्जा फेल नही होता ? यदि हो जाए तब ।'

प्रश्न बहुत बढ़िया है आपका, किंतु—उत्तर इससे भी बढ़िया लीजिए .

कोई पुर्जा फेल नहीं होता। आपको मालूम है, अपोलो-8 की उडान के दौरान पचास लाख से ऊपर पुर्जो में से कितने फेल हुए थे—केवल पांच और वे भी ऐसे जिनके फेल होने का उड़ान पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नही पड सकता था।

प्रतिकूल प्रभाव न पड़ने का भी कारण है · प्रक्षेपक और यान, दोनों में ही तमाम महत्त्वपूर्ण पुर्जे एक-एक के स्थान पर दो-दो हैं। बल्कि अत्यधिक महत्त्वपूर्ण पुर्जे तो एक-एक के स्थान पर तीन-तीन भी है। यदि ईश्वर न करे, यदि कोई पुर्जा फेल हो ही जाए तो साथ के साथ दूसरा पुर्जा स्वत. चालू हो जाता है और वह बंद हुए पुर्जे का कार्यभार संभाल लेता है। यह क्रिया इतनी तेजी से तथा स्वाभाविक रूप से हो जाती है कि कई बार तो संगणक को भी इसकी सूचना सेकेंडों बाद मिलती है।

माफ कीजिए, सेकेण्ड अथवा पल समय का उतना छोटा उपविभाग नहीं है—छोटे-से-छोटा उप विभाग नहीं है जैसा कि आप समझते आए है। अब तो सेकेण्ड को एक हजार भागों में विभाजित कर लिया गया है, जिसे 'मिली सेकेण्ड' कहेगे।

अब तो आप समझ गए होंगे कि अपोलो की निष्कलंक सफलता का रहस्य क्या है ? जी नहीं, अभी समझे नहीं आप। अपोलो की निष्कलंक सफलता का रहस्य है, बीस हजार फैक्ट्रियों में काम करने वाले चार लाख कार्य-कुशल मनुष्यों का सर्वश्रेष्ठ योगदान। उन्हीं की ईमानदारी, कार्य-कुशलता और लक्ष्य-प्राप्ति की लगन अपोलो-अभियान की 99.9% रिकरिंग सफलता को सुनिश्चित करती है।

यह प्रश्न आम्स्ट्रांग से गत वर्ष जनवरी में भी पूछा गया था। उनका उत्तर था--'यह तो प्रत्येक मिशन को असफलता से बचाए रखने के यथासंभव मानवीय प्रयत्न का मामला है, और साथ ही ऐसे प्रबंध भी करने पड़ते हैं कि असफलता की अवस्था में उसके दुष्प्रभावों से बचा जा सके।

इतनी जानकारी के बाद यह मान लेने में किसी को कोई परेशानी नहीं होनी चाहिए कि अपोलो-11 मानवीय सामर्थ्य की चरम परिणति है। इसके लिए 'करिश्मा' शब्द भी कमजोर लगता है। फिर भी, यदि मानव-मस्तिष्क प्रकृति का सर्वोत्तम करिश्मा है तो अपोलो-11 उस मस्तिष्क का अनुपम करिश्मा है।

और आप अभी तक मेरा मुंह ही देख रहे हैं? उन सड़कों की ओर देखने से आपको कोई रोक रहा है जो इस उड़ान-केंद्र तक पहुंचती हैं।

इन सड़कों ने पिछले दो दिनों में कितने प्रकार की गाड़ियों से परिचय प्राप्त किया है- इसका हिसाब देना कठिन है। कहीं कार, कहीं वैन, कहीं ट्रेलर। लाखों आदमियों ने 16 जुलाई, 1969 की फटती पौ और फूटती किरणों के साथ में अपोलो-11 को चारों ओर से घेर लिया है। स्थान-स्थान पर तरह-तरह के तंबू तने लगे हुए हैं। बच्चे नींद की झपकी ले रहे हैं लटके हुए पालनों में, जबकि उनके माता-पिता मखमली घास पर ही लेट लगा रहे हैं। ऐसी चहल-पहल पिछली बीस उड़ानों को जोड़कर भी शायद ही संभव हो।

जिस समय किस्म-किस्म की रंग-बिरंगी गाड़ियों पर दृष्टि डालेंगे तो लगेगा जैसे कारों का कोई कारखाना यहां खुल गया है जो सभी प्रकार की कारें बनाता है। मनुष्यों का जमघट देखिए, जैसे ये लोग अपने जीवन का एकमात्र यही लक्ष्य लेकर उत्पन्न हुए हों कि वे प्रथम चंद्र-गमन को अपनी आंखों से देखकर ही संतुष्ट होंगे।

और यह तांता रुक थोड़े ही रहा है। उधर उल्टी गिनती (count down) चल रही है। जो घटते हुए समय और बढ़ते हुए परीक्षण की द्योतक है; और इधर तमाम सड़कों पर गाड़ियां भिड़ गई हैं। मनुष्यों के कंधे छिल रहे हैं। आप मुझसे सहमत होंगे कि यदि यह कोई मेला भी है तो अपने ही ढंग का है। यह ठीक है कि यहां रंग-बिरंगी पोशाकों की तड़क-भड़क, अर्द्ध नग्न और अधिक नग्न मूर्तियों की चहल-पहल तथा थिरकते यौवन के साथ अक्खड़ पौरुष एवं किलकारते शैशव का अद्भुत समुच्चय है किंतु दस लाख आदमियों के इस पिकनिकी उल्लास के पीछे गंभीरता को अपने गर्भ में छिपाए अपोलो-11 भी है जो प्रत्येक हर्षोल्लास को चिंता की किनारी से घेर रहा है।

यदि कोई चिंता नहीं है तो केवल उन तीन महामानवों को जिन्होंने मानव-इतिहास का नवीन अध्याय लिखने के लिए अपना सर्वस्व दांव पर लगा दिया है। उनकी मंजिल इतनी महान् है कि अनिष्ट का भय उसके समक्ष नगण्य पड़ गया है और फिर आर्मस्ट्रांग तो जीवन-भर खतरों से ही खेला है। उसका कथन है कि जिन खतरों

का सामना वह कर चुका है, उनसे अधिक बड़ा खतरा चांद पर नही हो सकता। चद्रमा पर जाने से पूर्व कम-से-कम चार बार उसने मृत्यु को बहुत निकट से देखा है—मृत्यु की आखो मे आखें डालकर देखा है और चारो बार इस साहसी युवक के रास्ते से मृत्यु हट गई है।

चंद्र-यात्रियों के जीवन-रेखा-चित्र

एक पुरानी कहावत है कि 'पूत के पाव पालने मे ही दीख जाते हैं।' आर्मस्ट्राग (और एल्ड्रिन एव कॉलिन्स के भी) के पाव सचमुच पालने में ही दीख गए थे। जब वह बच्चा था तो बार-बार एक ही स्वप्न देखा करता था वह सांस रोककर हवा में तैर रहा है।

उस स्वप्न को आर्मस्ट्राग भूला नही है। अपनी मुस्कान विशेष मे शब्दों को भिगोकर वह कहता है, 'जागने के बाद मैंने वैसा करने की कोशिश की किंतु कर न सका।'

नील आर्मस्ट्रांग के पक्ष मे एक संयोग भी है : 5 अगस्त, 1930 को वह उसी क्षेत्र में पैदा हुआ था जहां राइट बंधुओं की पैदाइश हुई थी।

इस आदमी को बचपन से ही वायुयानों से अनुराग था। बल्कि 8 साल की उम्र मे तो उसने वायुयान का नमूना बनाकर उड़ा भी दिया था। 14 साल की आयु मे उसने उड़ने का अभ्यास आरंभ भी कर दिया था और सोलह साल की आयु में उडाका बन गया था।

सौभाग्य से उसे नौ-सेना की छात्रवृत्ति मिल गई। नील ने दो वर्षों तक तो परडयू विश्वविद्यालय में ऐरोनॉटिकल इंजीनियरिंग का अध्ययन किया। इसके बाद वह नौ-सेना मे लडाकू विमान का चालक बन गया। तब तक कोरिया का युद्ध आरम्भ हो चुका था। इस युद्ध में आर्मस्ट्रांग ने हिस्सा लिया तथा 38 उड़ानें कीं। उडानों की सफलता पर उसे कई पुरस्कार मिले किंतु उनमे एक पुरस्कार बड़ा जान लेवा था उसका जहाज टूट गया और उसे हवाई छतरी के सहारे शत्रु की भूमि पर उतरना पडा जहा से अगले दिन उसे हेलीकॉप्टर द्वारा उठाया गया।

इसके बाद आर्मस्ट्रांग ने 4,000 मील प्रति घंटे की गति से एक्स-15 नामक प्रक्षेपक वायुयान उड़ाया। 1962 में उसने नौसेना की सेवा छोड़ दी तथा नासा में अंतरिक्ष-यात्री का पद स्वीकार कर लिया। अतरिक्ष-यात्री के रूप में आर्मस्ट्रांग ने जेमिनी-8 में उडान की तथा बड़े कठिन क्षणों से साक्षात्कार किया। ऐसे ही कठिन क्षणों का सामना उसे एक चंद्र-अवतरण-अन्वेषण यान उडाते समय करना पड़ा जिसके टूटने से चंद क्षण पूर्व ही आर्मस्ट्रांग उससे उतर पड़ा था इसलिए उसका कहना है—'मेरा जीवन अपेक्षाकृत अधिक जोखिम भरे व्यापारों से भरपूर रहा है।'

आर्मस्ट्रांग सचमुच ही योग्यता, अनुभव, निर्भयता तथा धैर्य की साक्षात् मूर्ति है तथा चांद पर जाने के लिए निश्चय ही सर्वश्रेष्ठ उपलब्ध व्यक्ति है। उसका

निम्नलिखित विचार उसके अपने ही व्यक्तित्व को स्पष्ट करता है :

'यदि कोई अकेली वस्तु मनुष्य को सर्वाधिक प्रसन्नता प्रदान कर सकती है तो वह है इस तथ्य का आभास कि उसने अपनी योग्यता तथा सामर्थ्य की सीमा तक कार्य किया है।'

इस आदर्श का मानने वाला आर्मस्ट्रांग चंद्र-तल पर पांव उतारने वाला पहला व्यक्ति होगा।

अरे, आप गुमसुम क्यों खड़े हैं ? यह देखने की चेष्टा क्यों नहीं करते कि इस अजीबो-गरीब दृश्य को देखने के लिए कौन महानुभाव यहां पधारे हुए हैं।

क्या फरमाया ? एल्ड्रिन और कॉलिन्स के विषय में भी कुछ कहूं। हां हां—जरूर। बिना उन दोनों महापुरुषों की चर्चा किए यह चर्चा पूर्ण भी कैसे होगी।

बज एल्ड्रिन उड़ान और विज्ञान का समन्वय है। जितने घंटों की उड़ान आर्मस्ट्रांग ने की—समझ लो, 4,000 घंटे, उतने ही घंटों की उड़ान एल्ड्रिन भी कर चुका है किंतु उड़ान के साथ-साथ उसके मस्तिष्क में विज्ञान भी है। बल्कि एक विशेषज्ञ की तो यहां तक राय है कि जितने व्यक्ति अंतरिक्ष में भेजे गए हैं, उनमें एल्ड्रिन सबसे बढ़िया वैज्ञानिक मस्तिष्क का आदमी है, अंतरिक्ष-विज्ञान का वह डॉक्टर है तथा जेमिनी शृंखला की उड़ानों में उसके शोध-प्रबंध से सहायता पहुंची है। यह शोधप्रबंध अंतरिक्ष-यात्रियों को ही समर्पित किया गया है। बज़ ने लिखा है, 'कितना श्रेष्ठ होता यदि मैं भी उनमें से एक होता।'

एल्ड्रिन की इस इच्छा-पूर्ति में देर नहीं लगी। 1969 में ही उसने जेमिनी-12 में उड़ान की और 5½ घंटे का अंतरिक्ष-संचरण उसके यश की ध्वजा उड़ाता है।

एल्ड्रिन का जन्म 20 जनवरी, 1930 को न्यूजर्सी में हुआ था। वेस्ट प्वाइंट से विज्ञान में उपाधि प्राप्त करने के बाद बज वायुसेना में भरती हो गया। आर्मस्ट्रांग की तरह उसने भी कोरिया युद्ध में भाग लिया तथा उसके बाद नासा के उड़ान-प्रांगण में प्रवेश किया।

कहा जाता है कि एल्ड्रिन के पिता कुछ समय के लिए ऑर्विल राइट के सहयोगी रहे। और राबर्ट गोडार्ड के तो वह विद्यार्थी ही थे अतः वह योग्य पिता का योग्य पुत्र सिद्ध हुआ है। अंतरिक्ष उड़ान के लिए जिस निडरता और निर्भयता की जरूरत है, उसका उसमें तनिक अभाव नहीं है। अंतरिक्ष-यात्रा के खतरे अथवा भय के विषय में उसका उत्तर है—

'जो लोग उड़ने का काफी कार्य कर चुके हैं वे जोखिम भरे क्षणों की संभावना तो रखते ही हैं। उन्हीं के लिए उन्हें प्रशिक्षण दिया जाता है। यदि वे उन व्यापारों से भयभीत हो जाएं जिनके विषय में यह संभावना है कि वे इसी प्रकार होंगे, तो ऐसे आदमियों के लिए यही मशवरा सर्वश्रेष्ठ है कि वे कोई और काम तलाश करें।'

किंतु माइकल कॉलिन्स भिन्न है। अंतरिक्ष-यात्रा अथवा चंद्र-विजय जैसे नाटक में उसका स्वरूप सचमुच ही नायक का है।

कॉलिन्स नियतिवादी है। चांद से 69 मील की दूरी तक पहुंचकर भी चद्रमा के चक्कर ही लगाकर लौट आना, उसके विचार से नियति की ही कृपा है क्योंकि वह मुख्य यान चालक है, उसका कर्तव्य वड़ा कठोर है। चद्र-भूमि के स्पर्श से वंचित तो उसे रहना ही है पर यदि उसके शेप दो साथी चद्र-कक्षा में किसी चक्कर मे फस जाएं, तो उनके बचाव का प्रयास उसे ही करना है—या फिर एक असहाय दर्शक की भाति यह सब कुछ होते हुए देखना है जिसको वह कभी भी नहीं देखना चाहेगा।

कई बार परिस्थितियां मनुष्य को नियतिवादी बना देती हैं। कॉलिन्स को यदि चद्रमा की परिक्रमा करके ही संतुष्ट होना था तो यह कार्य तो उससे अपोलो-8 की उडान के दौरान ही कर लेना था और वास्तव मे अपोलो-8 में उसे उड़ना भी था किंतु अस्वस्थता ने उसे उक्त अवसर का उपयोग नहीं करने दिया।

कॉलिन्स का जन्म 31 अक्टूबर, 1930 को रोम में हुआ था। एल्ड्रिन की तरह कॉलिन्स ने भी वेस्ट प्वाइंट नामक सैनिक स्कूल में शिक्षा प्राप्त की थी तथा वायुसेना मे शामिल हो गया। इसके बाद उसने परीक्षा-चालक के रूप मे भी कार्य किया तथा आर्मस्ट्रांग की तरह एक्स-15 नामक यान पर अभ्यास किया किंतु आर्मस्ट्रांग की तरह उसे वायुयानी सनक नहीं है।

कॉलिन्स ने यंग के साथ जेमिनी-10 मे उडान की थी। 4,000 घंटो की उडान का रिकार्ड कॉलिन्स का भी है। और निर्भयता मे भी वह अपने दोनो साथियों से पीछे नहीं है, हालांकि वह सब कुछ भाग्य को सौंपकर निश्चिंत हो जाता है। उसका कथन है —

'कार्य के समक्ष परिवेश गौण हो जाता है। आतंक और आश्चर्य दोनों ही पृष्ठ-भूमि मे चले जाते हैं तथा आपका तात्कालिक कार्य उन कार्यों को पूरा करना हो जाता है जो आपके सामने है।'

क्यों भई, तीनो अतरिक्ष-यात्रियों के रेखाचित्र घूम गए है न आपकी दृष्टि के पथ से ? भले आदमी, अब तो उन महानुभावों पर नज़र भर लो जो इस ऐतिहासिक क्षण के अंग बनकर अपने को सार्थक करने गए हैं।

क्या कहा ? तीनों चद्र यात्री इस समय कहां हैं ! क्यो, शनि (प्रक्षेपक) के सर पर—अपने आदेश-कक्ष में। अब तो सात बज रहे हैं। वे लोग तो 6.52 पर ही अपने कक्ष में प्रवेश कर गए थे। सबसे पहले आर्मस्ट्रांग ने अंदर पांव रखा, फिर एल्ड्रिन ने और सबके बाद कॉलिन्स ने। वास्तव में, मुख्य यान का चालक सबसे पीछे प्रवेश करता है। जिस समय वे क्षेपण-मंच पर पहुंचे थे तो अपनी पूरी अंतरिक्ष पोशाक में थे। उन्होंने ऑक्सीजन के वे बैग भी उठाए हुए थे जिनसे उनकी पोशाक अनुकूल रहती है।

यों तो वे लोग यहां से 7 मील की दूरी पर सोए थे, मिशन-नियंत्रण-केन्द्र के भवन मे किंतु उन्हें कई घंटे पूर्व जगा दिया गया था और उन्होंने शांत-सागर के उस नक्शे का अध्ययन किया जहां उन्हें उतरना था।

उससे भी पूर्व डॉ. चार्ल्स बेरी ने उनके स्वास्थ्य का परीक्षण किया क्योंकि अस्वस्थ यात्रियों को भेजने के पक्ष में डॉ. बेरी कभी नहीं रहे। डॉक्टर के अनुसार तीनों यात्री स्वस्थ थे तथा उन्हें चंद्रमा पर भेजने में डॉ. बेरी को कोई संकोच नहीं था। शायद आपको ज्ञात हो कि डॉ. चार्ल्स बेरी का कर्तव्य बड़ा कठोर है। तीनों अंतरिक्ष-यात्रियों के चांद पर जाने से पूर्व अमरीका के राष्ट्रपति निक्सन उन्हें भोज पर आमंत्रित करना चाहते थे पर डॉ. बेरी ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। इसके दो कारण थे—(1) अंतरिक्ष-यात्रियों के स्वास्थ्य की रक्षा करना सर्वोपरि कार्य था और (2) केवल यही प्रश्न नहीं था कि कहीं वे लोग चांद पर पृथ्वी का विषाणु न ले आएं बल्कि यह भी आशंका थी कि कहीं अंतरिक्ष यात्री चांद से कोई विषाणु न ले जाएं। इसीलिए चंद्रमा पर जाने से पूर्व से ही तीनों आदमियों को कड़ी निगरानी में रखा हुआ था।

अरे, हां ! आपने गण्यमान्य अतिथियों को तो देख लिया न ? देखिए, वे बैठे हैं लिण्डन जॉन्सन—अमरीका के भूतपूर्व राष्ट्रपति। आरंभ में जब जॉन्सन बहुमत के नेता थे तो इन्होंने चंद्र-अभियान को आगे बढ़ाया था। राष्ट्रपति कैनेडी के सहायक के रूप में भी जॉन्सन ने चंद्र-आयोजन में सक्रिय रुचि ली थी और राष्ट्रपति कैनेडी को इस महान् लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रेरित किया था। और जब वे स्वयं राष्ट्रपति बने तब तो उन्हें कई बार अंतरिक्ष-अभियान को आगे बढ़ाने के लिए जबरदस्त संघर्ष करना पड़ा था। लिण्डन जॉन्सन का कथन था कि उन्होंने अमरीका से आरंभ होने वाली अंतरिक्ष की प्रत्येक उड़ान उड़ी है।

भूतपूर्व अमरीकी राष्ट्रपति के साथ ही बैठी है लेडी बर्ड जॉन्सन—लिण्डन जॉन्सन की पत्नी और बराबर में ही हैं एग्न्यू—अमरीका के वर्तमान उपराष्ट्रपति। 200 से अधिक अमरीकी कांग्रेस के प्रतिष्ठित सदस्य हैं, 30 के लगभग सीनेट के सदस्य हैं, 20 के करीब राज्यपाल हैं, 50 से कहीं अधिक राजदूत हैं और हैं अमरीकी उच्चतम न्यायालय के निर्णायक-गण तथा मंत्रीगण।

चार हजार संवाददाता

दूसरी ओर है टेलीविज़न, रेडियो तथा समाचार-पत्रों और पत्र-पत्रिकाओं के लगभग 4,000 संवाददाताओं की भीड़। इनमें अमरीकी संवाददाताओं के अतिरिक्त विश्व के लगभग 60 देशों के संवाददाता मौजूद हैं। इन लोगों के पास एक से एक अद्‌भुत कैमरे हैं, जिन्हें लगातार उपयोग में लाया जा रहा है। ये लोग इस ऐतिहासिक क्षण को अपने चित्रों और शब्दों में कैद करने के लिए तत्पर और व्याकुल प्रतीत हो रहे हैं। इनमें एक अजीब-सी स्पर्धा की भावना इस समय कार्य कर रही है।

देखिए, व्यर्थ की जिद न करिए। क्षेपण-स्थल से तीन मील की दूरी के दायरे में कोई नहीं जा सकता। जी हां, इसे लक्ष्मण-रेखा ही समझिए। इस रेखा के भीतर अंतरिक्ष-यात्री हैं, उनकी सहायता करने वाले कर्मचारी हैं और हैं किसी भी दुर्घटना

को झेलने के लिए नियुक्त व्यक्ति इनक आतारक्त इस दायर म काइ पाव नही रख सकता राकेट के निकट जाना या भी सुरक्षित नहीं हे यदि और कुछ नही तो पृथ्वी से ऊपर उठते समय ऐसी दहाड देगा कि आपके काना क पर्दे फट जाएगे तब क्या ?

उल्टी गिनती (Count down) जारी है और साथ ही जारी है चन्द्र-यात्रियो द्वारा कल-पुर्जों की अतिम रूप से पड़ताल। जिस समय ये लोग क्षेपण-केंद्र पर पहुचे थे तो पता चला था कि हाइड्रोजन की टंकी का एक वाल्व चू रहा है किंतु अब सब ठीक है। शायद उस पुर्जे को छुट्टी दे दी गई है और उसका कार्य उसके स्थानापन्न ने सभाल लिया है।

9 बज गए है। चंद्रमा की ओर प्रस्थान करने की घडी करीब आती जा रही है। सगणक को पूरी रिपोर्ट दे दी है। अपोलो-11 को बाहरी संपर्को से मुक्त कर दिया गया है। अब वह अपनी ही शक्ति के सहारे खड़ा हे।

ज्यों-ज्यों घडी की सुई सरकती जा रही है, चेहरों पर झलकती हुई शिकने गहरी होती जा रही हैं। प्रक्षेपण का कार्य-भार संगणक ने स्वयं संभाल लिया है तथा सभी कुछ तैयार है।

लीजिए, सुनिए जैक किंग की आवाज—'यह अपोलो-11 क्षेपण-नियंत्रण है। अपोलो-11 की उलट-गणना में अब 6 मिनट की सीमा को पार कर लिया गया है। अब 5 मिनट तथा 52 सेकेंड शेष है और उल्टी गिनती बदस्तूर जारी है।'

यान छूटने में केवल दो मिनट

लो, साढ़े नौ हो गए। अब केवल दो मिनट है। एक-एक चीज़ सोलह आने सही है। अब तो मात्र एक मिनट ही शेष है। आर्मस्ट्रांग ने रेडियो-नेटवर्क पर सूचना दी है 'यह वस्तुतः निर्विघ्न काउंट-डाउन रहा है।'

दूरबीनों ने आंखों को ढक लिया है। हृदयो के स्पंदनों की गति बढ़ चली है। शिराएं चटखने लगी हैं। गैन्ट्री के यांत्रिक हाथ पीछे हट गए हैं। तथा अब प्रक्षेपक अपने ही भरोसे पर खडा है।

10. 9. 8. 7. 6.............

काउंट डाउन........

यंत्र-तख्ती पर छोटी-छोटी हरी ज्योतियां जीवित हो उठी है। क्षेपण-नियंत्रण-केन्द्र से सूचना—'प्रज्वलन हो गया।'

प्रज्वलन हो गया—अर्थात् शनि-प्रक्षेपक के पहले चरण के पांचो इंजन प्रज्ज्वलित हो गए है।

यह देखो, ज्वाला की पांच चौड़ी जबानें प्रति सेकेंड 3740 गैलन तरल ईंधन चट करती जा रही हैं और बदले में छोड़ रही हैं धुए के घने बादल जो चारों ओर

से इस तरह उमड़ घुमड़ रहे हैं कि उन्होंने प्रक्षेपक के निचले हिस्से को ओझल सा कर लिया है। नारंगी रंग की जो लपटें लगातार निकल रही हैं वे उस धुएं में बिजली की चौंधकें प्रतीत होती हैं।

5. 4. 3. 2 1... ....क्षेपण गद्दियों के फौलादी क्लंप ढीले पड़ गए हैं तथा शनि-प्रक्षेपक जैसे पाव मल रहा है।

कान फाड़ने वाला धमाका

लो, कान बंद कर लो ! उफ, कितना जबरदस्त धड़ाका है ! सारी धरती हिल गई है। दूर-दराज़ स्थानों तक कलेजे कांप गए हैं। अपोलो-11 अपनी ही मशाल लिये अपनी ही मशाल से उत्पन्न सघन धूम को चीरता हुआ मथर गति से ऊपर की ओर उठ रहा है जैसे रात्रि के सघन अंधकार को चीरकर भोर का सूरज निकल रहा हो।

अरे, कहां चला गया वह सुनहरा तीर—3,200 टन वज़न का वह तीर देखते-ही-देखते कैसे आंखों से ओझल हो गया ! वह निश्चय ही अपने लक्ष्य की ओर जा रहा है—चंद्रमा की ओर।

प्रस्थान

चमकते चेहरों, अश्रु भरी आंखों एवं बजती हुई हथेलियों को अपोलो-11 क्षणों में पीछे छोड़ गया है। लोगों को—दस लाख दर्शकों और करोड़ों टेलीविज़न दर्शकों व रेडियो श्रोताओं को ऐसा लग रहा है जैसे यह कोई स्वप्न था।

सचमुच स्वप्न ही तो था, वह स्वप्न जिसे मनुष्य तब से देखता आ रहा है, जब चंद्रमा पर उसकी पहली दृष्टि पड़ी थी। अपोलो-11 का चमत्कारिक प्रस्थान उसी स्वप्न की चरम परिणति है। बस, यहीं से वह स्थिति आरंभ होती है जब वह कल्प-कल्पांतरों का स्वप्न सत्य में बदल जाएगा।

13. चंद्रमा पर ईगल

सोवियत संघ ने बार-बार यह घोषणा की थी कि चंद्रमा की दौड में अमरीका अकेला है—वह उसका प्रतिद्वंदी नहीं है। और शायद यही सत्य था। लेकिन सत्य का एक और रूप भी होता है जो सत्य नहीं होता पर सत्य-सा लगता है। पश्चिम बराबर सत्य के उसी रूप से आक्रांत रहा। सोवियत संघ की रहस्य-राज वाली नीति के कारण अमरीकी अंतरिक्ष-विज्ञान को सदा यह शंका रही कि रूस ऐन वक्त पर चमत्कार करेगा।

आशंका अटकलों की जननी है। सोवियत प्रयत्न के विषय में भी आए दिन नई-नई अटकलें लगाई जा रही थीं। अब जबकि यह लगभग निश्चित-सा ही हो चुका था कि कम-से-कम अपोलो-11 का प्रतिस्पर्धी कोई नहीं है तो इस प्रकार की खबरें आनी शुरू हो गईं कि सोवियत संघ बिना किसी मानव जीवन को जोखिम मे डाले उस लक्ष्य की पूर्ति अपोलो-11 से पहले करके दिखाएगा जिसके लिए यह अमरीकी चंद्र-यान उड़ाया जाना था। अफवाह यह थी कि जापान की राजधानी टोक्यो मे जो अंतर्राष्ट्रीय स्तर का मेला होगा, उसमें रूसी मंडप में चांद की चट्टान और मिट्टी के नमूनों का प्रदर्शन किया जाएगा। किंतु इन अफवाहों का समर्थन वाले ठोस प्रमाण समक्ष नहीं आ रहे थे।

जिन दिनो अंतरिक्ष में सोवियत संघ का सितारा चढ़ा हुआ था तो एक मजाक विश्व-भर के अनेक पत्रो में प्रकाशित हुआ। किसी संवाददाता ने नासा के अध्यक्ष से पूछा था कि जब आपके अंतरिक्ष-यात्री चांद पर पहुचेंगे तो वहा सबसे पहले क्या देखेंगे ?

'रूसी अंतरिक्ष-यात्री !' अध्यक्ष महोदय ने उत्तर दिया था। किंतु इस बीच पासे पलट चुके थे। रूसी अंतरिक्ष-विज्ञान निश्चित रूप से चंद्रविजय की दौड़ मे पिछड़ गया था; केवल अटकलें आगे थीं।

ये अटकलें 13 जुलाई, 1969 को एक स्थूल रूप लेने मे सफल हो गई : इस तिथि को रूसी अंतरिक्ष-अड्डे से एक अमानव चंद्र-यान रवाना किया गया जिसका नाम लूना-15 था। रूस की अन्य अंतरिक्ष उड़ानों के ही अनुरूप लूना-15 भी रहस्यावरण मे लिपटा हुआ था तथा ऐसी भेदन-दृष्टि ढूंढ़ निकालनी कठिन ही थी जो यह मालूम

कर सके कि लूना-15 का वास्तविक लक्ष्य अथवा इरादा क्या हे ? रूसियो ने इसका लक्ष्य 'बाह्य अंतरिक्ष का अन्वेषण' ही बतलाया था किंतु 'स्वतन्त्र-दिवस' मे लूना-15 को लेकर अनेक नवीन अटकले लगनी शुरू हो गई थी।

क्या लूना-15 अपोलो-11 से पहले चंद्र-तल पर उतर जाएगा तथा वहा से मिट्टी पत्थर के नमूने लेकर अपोलो-11 से पहले ही पृथ्वी पर लौट आएगा ? यदि वह ऐसा कर सके तब तो अमरीकी गौरव के चंद्र में खंड ग्रहण लग सकता था। क्योकि चंद-भूमि पर चरण टिकाने के अलावा अपोलो-11 का मुख्य लक्ष्य भी नमूने लकर लौटना ही था।

क्या लूना-15 मात्र जासूस है कि जो अपोलो-11 की गतिविधियों को नोट करेगा तथा गुप्त रीति से अपने निर्माताओं को सम्पूर्ण सूचना देगा ? कही इसका उद्देश्य उस सत्य का उद्घाटन करना तो नही जिसका आशिक आश्रय अमरीकी विज्ञान द्वारा आवश्यकतानुसार लिया जा सकता है।

क्या लूना-15 अपोलो-11 के कार्यक्रम में विघ्न-बाधा उपस्थित करने के लिए छोडा गया है ताकि अमरीकी अंतरिक्ष-विज्ञान की टोपी में यह मयूर पख न लग जाए '

बहुत संभव है, लूना-15 का उद्देश्य इनमें से एक भी न हो, बल्कि यह एव सामान्य उडान ही हो जैसा कि रूसियो ने घोषित किया था।

लूना-15 का अनुसरण ब्रिटेन की जॉड्रल बैक वेधशाला कर रही थी तथा उसवे सकेतों की सूचना दे रही थी। इस विषय मे यह भी अफवाह गर्म थी कि इससे पूर्व इसी प्रकार के दो अमानव चंद्र-यान और छोडे जा चुके है जो कि सफल नही हुए।

यदि सामान्य दृष्टि से देखा जाए तो दोनों देशों के चंद्र-यानों का एक साथ उडान भरना तथा एक ही लक्ष्य की ओर दौड़ना कोई विशेष अनहोनी बात नही थी। स्वस्थ प्रतियोगिता तो दो सबल मित्रो मे भी हो सकती है। किंतु जैसा कि सर्व विदित ही है, इन दोनो देशों के मध्य लगातार अविश्वास का वातावरण रहा है। और अविश्वास तो शत्रुता क्या, मैत्री का भी मीठा काटा हे। इसी काटे के कारण अमरीकी अतरिक्ष-वैज्ञानिक चिंतित थे।

बहरहाल, एक सत्य सामने था : लूना-15 जुलाई 13 को छोड़ा गया था और अपोलो-11 जुलाई 16 को। लूना अपोलो से आगे था, आगे रह सकता था। हालाकि लूना-15 इस समय खलनायक की भूमिका पर उतर आया था—या अपोलो-11 के आगे यह भूमिका हो गई थी।

किंतु ऊपर उठता हुआ अपोलो-11 खलनायक की छलांगों से परिचित होते हुए भी निश्चित-सा था। पहले चरण के पांचो इंजनो ने मात्र 2.5 मिनटों में ही यान की गति 6,000 मील प्रति घंटा कर दी। यान मुश्किल से 1,500 फीट की ऊंचाई पर ही पहुचा था कि आदेश-कक्ष का दबाव घटने लगा और गुरुत्वाकर्षण का दबाव बढ़ने लगा।

38 मील की ऊचाई तक पहुचते-पहुचते पहले चरण के मध्य इजन ने मौन धारण कर लिया और फिर शेष चारों सहयोगियो ने भी।

दूसरे चरण के दोनों इंजन पूर्ण सतोषजनक ढंग से चलते रहे तथा 100 मील की ऊचाई पर पहुचकर उन्होंने भी सन्यास ले लिया। इस समय अपोलो-11 की गति 9,160 मील प्रतिघटा थी। दूसरे चरण के कटने की सूचना आदेश-कक्ष के एक बल्ब ने बुझकर दी।

तीसरे चरण के एकाकी इजन ने अपना कार्य-भार संभाल लिया। जिस समय यान की गति लगभग 15,000 मील प्रति घंटा थी और वह पृथ्वी से सौ मील की ऊचाई से अधिक था तो उनको नियंत्रण-केद्र से पृथ्वी के परिक्रमा-पथ में प्रवेश करने की अनुमति दी गई। लगभग पौने छह मिनट चलने के बाद तीसरे खंड के इजन को बंद कर दिया गया तथा भारहीनता की स्थिति का आनंद लेते हुए अपोलो-11 के तीनों यात्री पृथ्वी की कक्षा में प्रविष्ट हो गए। यह कक्षा वास्तव में इनके ठहराव अथवा पार्किंग के लिए थी। यों समझना चाहिए कि यान के आवश्यक कल-पुर्जों की जांच के लिए उसे पृथ्वी की वृत्ताकार कक्षा में मोड़ दिया गया। इस समय यान की गति 17,000 मील प्रति घंटा से अधिक थी।

इस समय अपोलो-यान की स्थिति इस प्रकार थी; सबसे आगे आदेशकक्ष, उसके पीछे सेवा-कक्ष, तब चद्र-कक्ष और अत में शनि-प्रक्षेपक का तीसरा चरण। किंतु यह स्थिति क्षेपण-क्रिया के लिए ही अनुकूल थी। यदि चद्रमा की ओर बढ़ना है तो इस स्थिति में परिवर्तन की आवश्यकता थी क्योकि चद्रमा पर उतरने के लिए चद्र-कक्ष मे जाना आवश्यक था और सेवा-कक्ष मे से होकर उसमें पहुंचने का कोई मार्ग नहीं था।

पृथ्वी की पहली परिक्रमा के दौरान जब अपोलो ह्यूस्टन के ऊपर से उड़ा तो चद्र-यात्री पुर्जों की जांच-पड़ताल में व्यस्त थे। लगभग डेढ परिक्रमा पूर्ण कर लेने के उपरांत वे अपने यान के संतोषजनक कार्य से आश्वस्त हो गए। उस समय वे लोग आस्ट्रेलिया के ऊपर थे। तीसरे खंड का, शक्तिशाली इंजन फिर चलाया गया जो कि लगभग पौने छह मिनट तक चलता रहा तथा उसने यान की गति 25,000 मील प्रति घंटा कर दी जो कि पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति को भेदने के लिए आवश्यक थी। इस प्रकार प्रक्षेपण के 2 घंटे चवालिस मिनट बाद उन्होंने चांद के लिए प्रस्थान किया।

चंद्रमा के मार्ग पर प्रथम मनुष्य चल अवश्य पड़ा था, उसका यान आगे बढ़ता जा रहा था तथा साथ ही लट्टू की तरह घूम भी रहा था ताकि अपोलो-11 का एक पक्ष सूर्य की लगातार गर्मी से झुलस न जाए और दूसरा पक्ष बाह्य अतरिक्ष के लगातार शीत से जम न जाए। परंतु मंज़िल बहुत दूर थी। सबसे पहले तो उसे अपने यान की व्यवस्था ही बदलनी थी।

व्यवस्था बदलने का कार्य लगभग 30 मिनट की उडान के बाद किया गया।

आदेश-कक्ष और सेवा-कक्ष द्वय का चंद्र-कक्ष तथा शान-प्रक्षेपक-तृतीय-चरण द्वय से अलग किया गया, 50 फीट की दूरी पर हटाया गया तथा घूमकर आदेश-कक्ष की नाक से चंद्र-कक्ष की नाक जोड़ दी गई तथा अच्छी तरह दोनों कक्षों को सबद्ध कर दिया गया। साथ ही उन दोनों के बीच का सम्मिलन सयंत्र हटाकर उसमे पिचकने वाली सुरंग फिट कर दी गई। उसके बाद तीसरे चरण को अलग करके उसे गुलेल के पत्थर की तरह फेंक दिया गया ताकि वह चंद्रमा से आगे निकलकर सूर्य की कक्षा मे पहुंच जाए।

यह सारा कार्य बडी कुशलता और सफाई से सपन्न हो गया, परतु इसमे एक गडबडी अवश्य हुई कि ईंधन आवश्यकता से कुछ अधिक व्यय हो गया जिसको प्रथम मार्ग-संशोधन की क्रिया को रद्द करके बराबर किया गया।

जिस समय अपोलो एकादश चाद की ओर बढ़ा जा रहा था, उस समय सारे ससार में तरह-तरह की आशाएं, कल्पना, आशकाएं तथा अटकलें लगाने के कार्य जारी थे। भारत की भूमि पर बैठे एक ज्योतिषी जी फरमा रहे थे 'ये लोग जा तो रहे हैं लेकिन लौटकर नहीं आएगे।'

उधर एक इतावली अरड पोपो का विचार था कि चांद की अछूती धरती का प्रथम स्पर्श पहले रूसी लोग करेंगे।

कुछ धार्मिक वृत्ति से आक्रांत लोग एक अन्य ही आशका से पीड़ित हो रहे थे। उनका विश्वास था कि चांद पर पृथ्वी के प्राणी का पहुंचना अत्यत अस्वाभाविक बात है (चांद पर तो मृतात्माएं ही जाया करती हैं)। देवताओं के क्षेत्र मे मानव की घुस-पैठ यों भी मानव के लिए अनिष्टकारी सिद्ध होगी। अत. चांद पर चढने की मूर्खता का मूल्य मानव मात्र को अनेक कल्पनातीत कष्ट सहकर चुकाना पड़ेगा।

इसके अतिरिक्त आम धारणा यह थी कि चांद को जीतने का प्रयास तो स्तुत्य है तथा जिन लोगो ने इस आयोजन में सक्रिय सहयोग किया है, उनके मन और मस्तिष्क का लोहा मानना पड़ता है परंतु उनका यह प्रयास सफल नही होगा—मनुष्य चाद पर पहुंच नहीं सकेगा।

अबाध गति से चंद्रमा की ओर अपोलो-11

और अपोलो-11 था कि अपने मार्ग पर ऐसे पूर्व निर्धारित ढंग से बढ़ा जा रहा था कि प्रथम मार्ग-संशोधन की जरूरत ही नहीं पड़ी थी।

किंतु जैसा कि विदित ही है, 'चद्र-विजय' नाटक का नायक अपने संघर्ष पथ पर अकेला नहीं था। उसके साथ खलनायक भी था—लूना-15, जो कि अपोलो-11 से आगे था। लूना-15 इतना अधिक आगे था कि जब अमरीकी अतरिक्ष-यात्री आधी दूरी तय कर पाए थे तो लूना चंद्र कक्षा में प्रवेश कर चुका था लेकिन उसकी कक्षा इतनी नीची—एक स्थान पर चंद्र-भूमि से केवल 10 मील दूर—कि यह अनुमान लगाना बहुत कठिन नहीं लगता था कि इसका इरादा क्या है।

उधर तीनो अमरीकी चद्र-यात्री अपने कक्ष मे बैठे अपने भाग्य को सराह रहे थे यदि 'भाग्य' नाम की कोई शक्ति है तो वह आर्मस्ट्राग, एल्ड्रिन और कौलिन्स के अत्यंत अनुकूल रही थी। वास्तव में ये तीनो यात्री अपोलो-11 के चालक तो अवश्य बनने थे किंतु चंद्रमा पर पहली बार उतरना अपोलो-10 के यात्रियो का कार्य था। लेकिन बिल्ली के भाग्य से छीका टूट गया। जिस समय अपोलो-10 चाद की सेर के लिए गया तो उस समय तक चद्र-कक्ष का अतिम परीक्षण नहीं हो सका था। इसी कारण स्टैफोर्ड और सर्नन को चाद की छाई छुए बिना ही वापस लौटना पड़ा था।

इन यात्रियो के भाग्य मे एक कार्य और भी था अन्यथा संभव था रूसी चद्र-यात्री सचमुच ही चाद पर इनका आतिथ्य करते। ये लोग अपने साथ यूरी गागरिन ओर कोमारॉफ के मेडल ले जा रहे थे, जो उनको चांद की भूमि पर छोड़ने थे। असल मे अपोलो-8 के आदेशक फ्रैन्क बोर्मन ने जिस समय सोवियत सघ की सद्भाव यात्रा की थी तो दोनो रूसी खलाबाज़ो की विधवाओं ने वे मेडल चाद पर पहुंचाने के लिए उन्हे दिए थे।

और फिर जब इनके सौभाग्य को सराहने की ही बात उठ पड़ी है तो तनिक उस दृश्य का ध्यान करिए जो ये लोग—केवल ये ही लोग देख सकते हैं और आनद ले सकते है : जब ये लोग खिड़की से बाहर झांकते है तो लगता है जेसे पृथ्वी पीछे छूट रही है, चद्रमा गले मिलने के लिए आगे बढ़ा आ रहा है और सितारे घूम-घूम कर उनकी परिक्रमा कर रहे हैं जबकि वे स्वय ऐसा अनुभव कर रहे हैं जैसे कि एक इंच भी न हिल रहे हों—निश्चल निश्चेष्ट अपने स्थान पर ही बैठे हों।

अपोलो यान चंद्रमा की ओर इस प्रकार उड़ा जा रहा था जैसे कोई बिना पंखो वाला विशाल चकोर हो जिसमें उड़ने की स्वत. शक्ति हो किंतु चकोर एक नहीं—दो थे। दूसरा चकोर चांद के प्रदक्षिणा-पथ मे पहुंच चुका था तथा चक्कर काट रहा था। चांद को चूमना चाहता था पर उसके पास पख नहीं थे जिन्हे बद करके नीचे चद्र-भूमि पर उतर पड़े।

फ्रैंक बोर्मन ने टेलीफ़ोन पर लूना-15 का लक्ष्य जानना चाहा था। जिसके उत्तर में रूसी विज्ञान अकादमी के अध्यक्ष केल्डिश ने तार द्वारा आश्वासन दिया था कि वह अपोलो की राह का रोड़ा नहीं बनेगा।

जिस समय अपोलो-11 पृथ्वी से लगभग सवा लाख मील दूर था तो उसकी गति 24,182 मील प्रति घंटा से घटकर केवल 3,422 मील प्रति घंटा रह गई थी। चाद गुरुत्वाकर्षण ने अभी अपना कार्य आरंभ नहीं किया था क्योंकि चांद की कशिश उस समय पृथ्वी की कशिश से अधिक शक्तिशाली होने लगती है जब यान चंद्र-भूमि से 30,000 मील दूर रह जाता है।

थोडा आगे बढ़ने के बाद एल्ड्रिन ने नियंत्रण-केंद्र से पूछा, 'कितनी दूरी पर हैं हम लोग ?'

ह्यूस्टन—'ठहरो, मैं ठीक-ठाक बताता हूं ...बिलकुल सही दूरी है 1, 43, 980 मील और आप लोग 4, 186 फीट प्रति सेकेंड की गति से आगे बढ रहे हैं।' इसका अर्थ हुआ 3,050 मील प्रति घंटा।

एल्ड्रिन—'बहुत दूर और बहुत धीमे। आधे-मार्ग से कुछ आगे। लूना 15 के विषय में नवीनतम क्या समाचार है ?'

ह्यूस्टन—'ठहरो, मैं पूरी बात बताता हू ..हलो, अपोलो-11, लूना-15 के विषय मे नवीनतम समाचार यह है कि आज सुबह तास ने यह सूचना दी है कि अंतरिक्ष-यान चद्र-तल की निकट-कक्षा मे स्थापित कर दिया गया है तथा यान पर सभी कार्य सामान्य ढग से चल रहा प्रतीत होता है। सर बर्नार्ड लावेल का कथन है कि यान लगभग 62 नौटिकल-मीलों वाली कक्षा मे मालूम पड़ता है।'

एल्ड्रिन—'अच्छी बात है। धन्यवाद।'

अपोलो-यान तथा नियंत्रण-केंद्र के मध्य हुए इस वार्तालापांश से स्पष्ट है कि लूना—15 चंद्र-यात्रियों के मस्तिष्क की कक्षा में भी घूम रहा था।

इसके बाद अंतरिक्ष-यात्रियों ने टेलीविजन का प्रदर्शन किया जिसमे चद्र-कक्षा का अंदरूनी भाग भी दिखाया गया। तो भी मानना यही पड़ेगा कि अपोलो-11 की यह चंद्र-यात्रा अभी तक निर्विघ्न थी तथा उसमें कोई विशेष उल्लेखनीय घटना नही घटी।

अतत अपोलो-11 समगुरुत्वाकर्षण क्षेत्र मे प्रवेश कर गया, जहां हमारी भूमि के खिंचाव की अपेक्षा चंद्रमा के गुरुत्वाकर्षण का खिंचाव अधिक था। परिणाम यह निकला कि जो गति घटकर 3,000 मील प्रति घटा तक आ गई थी, वह फिर स्वत बढने लगी तथा बढ़ते-बढ़ते 5,000 मील प्रति घंटा की सीमा को लाघ गई।

आखिर 19 जुलाई, 1969 का दिन आ ही गया तथा साझ के चार बज गए। तीनो चद्र-यात्री जो अभी तक सामान्य वस्त्रों मे बैठे थे, अपनी अंतरिक्ष पोशाकों में सज गए क्योंकि अब उन्हें चंद्र-कक्षा मे प्रवेश करना था।

जैसा कि पिछले अवसरों पर हुआ था, सेवा-कक्ष में लगे रॉकेट इंजन को यान की गति प्रति घंटा लगभग 2; 000 मील (1988) कम करनी थी। ताकि अपोलो-11 चद्रमा की अपेक्षित कक्षा मे प्रवेश कर सके।

जिस क्षण अपोलो-11 चंद्रमा के क्षितिज की छाया में था तो नियंत्रण केंद्र ने आश्वासनात्मक लहजे में तीनों चद्र-यात्रियों को सूचित किया, 'अपोलो-11, यह ह्यूस्टन है। चक्कर मे जाने के लिए अपनी सभी (यांत्रिक) व्यवस्थाएं बिल्कुल ठीक दीख रही हैं। अब आप लोगों से चांद के दूसरी ओर मुलाकात होगी।'

आर्मस्ट्रांग ने उत्तर दिया, 'रोजर, यहा सब कुछ ठीक मालूम दे रहा है।'

अपोलो-11 मोड़ घूम गया और चांद के अंधेरे हिस्से की ओर चला गया। सेवा-कक्ष का रॉकेट इंजन 5 मिनट, 59 सेकेंड तक चला तथा उसके द्वारा यान की गति घटकर 3,224 मील प्रति घंटा रह गई। किंतु इसकी सूचना संसार को लगभग

आधे घटे बाद मिली जब आदेश कक्ष के मुह से मुह जोडे चद्र कक्ष महित अपोलो यान चाद के चक्कर से बाहर निकला।

ह्यूस्टन के द्वारा इजन के दागने के विषय में पूछने पर आर्मस्ट्रांग ने उत्तर दिया, 'बिल्कुल ठीक था।'

ज्यों ही अपोलो-11 ने चाद का अडवृत्ताकार चक्कर शुरू किया तो यान की खिडकियो से चद्र-तल साफ नजर आने लगा तथा वे लोग उस स्थान का वर्णन करने लगे, जिसके ऊपर से वे उस समय गुजर रहे थे। एक विंदु पर एल्ड्रिन ने सूचित किया—'हम अभी अंतरिक्ष-यान के अधकार में चले गए थे। अब पृथ्वी के प्रकाश से सब चीजे साफ-साफ दीखने लगी है।'

इसके बाद अंडवृत्ताकार को वृत्ताकार का-सा रूप देने के लिए रॉकेट इजन को एक बार फिर दागा गया। (वास्तव मे यह इजन कम-से-कम 11 बार दागा जाने मे समर्थ है—आवश्यकता पडने पर अधिक बार भी प्रयोग में लाया जा सकता है)। असल में चंद्रमा का गुरुत्वाकर्षण सभी स्थानों पर समान नहीं है—यह जानकारी पिछली उडानों से प्राप्त हुई थी। अत. अधिक खिंचाव वाले स्थलों से यान सुरक्षित रखने के लिए परिक्रमा-पथ को थोड़ा अधिक वृत्ताकार बनाना आवश्यक था।

अगली परिक्रमा मे आर्मस्ट्रांग ने चाद की भूमि के रंगीन टेलीविज़न चित्र भेजने आरभ कर दिए। चंद्रमा का जो चित्र ह्यूस्टन के नियंत्रण-केंद्र को प्राप्त हुआ, उसको देखकर वे लोग उछल पडे, 'बढ़िया तस्वीर है। चाद कत्थई-भूरा-सा नजर आता है।'

अब चद्र-यात्रियों के निद्रामग्न होने का समय आ रहा था, वे लोग काफी थक भी गए थे। लेकिन अभी एक वडा महत्वपूर्ण कार्य करना शेष था : आर्मस्ट्रांग और एल्ड्रिन को पिचकने वाली सुरंग में से रेगकर चद्र-कक्ष मे जाना था तथा सभी आवश्यक कल-पुर्जो की नए सिर से जाच-पडताल करनी थी कि लगभग ढाई लाख मील की यात्रा के बाद चद्र-कक्ष का क्या हाल है ?

यह जांच-पडताल सरल व सामान्य नहीं थी क्योकि इस सपूर्ण आयोजन का भार अतत· चंद्र-कक्ष पर ही था और उसी पर निर्भर करती थी दो व्यक्तियो की जिदगी। इस जांच-परख में दो घंटे लग गए किंतु उसका परिणाम उत्साहवर्धक निकला चद्र-कक्ष अर्थात् ईगल की सभी व्यवस्थाए संतोषजनक थी तथा उस पर सवार होकर चद्र-तल पर उतरा जा सकता था।

चद्र-कक्ष जो कि सच्चे अर्थो मे अंतरिक्ष-यान था, 'ईगल' नाम से अभिहित किया गया था तथा मुख्य यान को जिसमें आदेश-कक्ष ओर सेवा-कक्ष शामिल थे 'कोलम्बिया' कहकर पुकारा गया था। मोटे तौर पर तो ये नाम इसलिए निश्चित किए गए थे ताकि संकेत भेजने-मांगने मे कोई गडबड़ न हो किंतु अप्रत्यक्ष रूप से देखा जाए तो ये दोनो शब्द 'ईगल' और 'कोलम्बिया' अर्थपूर्ण थे। ईगल (गरुड़) तो अमरीका का राष्ट्रीय पक्षी है और 'कोलम्बिया' उस अंतरिक्ष-यान का नाम था जिसमें 100 वर्ष पूर्व विज्ञान-कथा-लेखक जुल्स वर्न के अंतरिक्ष-यात्री सवार होकर

चांद की कक्षा में पहुंचे थे। (हालांकि वे लोग चंद्रमा पर उतरे नहीं थे क्योंकि उनके यान में कुछ प्रतिकूल स्थिति पैदा हो गई थी। वे लोग मात्र चांद की परिक्रमा करके ही वापस लौट आए थे)।

अपोलो-11 प्रति दो घंटे की अवधि में चांद के चक्कर लगा रहा था।

20 जुलाई का खुला-खिला दिन चढ़ा हुआ था तथा वे कठोर क्षण तेजी से सरकते आ रहे थे जबकि ईगल को कोलम्बिया से असंबद्ध होना था। उधर इस नाटक का खलनायक भी अपने अभिनय में व्यस्त था। उसने चांद के 37 घेरे पूरे कर लिये थे तथा उसी गति से चलता जा रहा था। यह कहना इस समय भी कठिन था कि लूना-15 का वास्तविक लक्ष्य क्या था।

लगभग दो सप्ताह की अंधियारी रात के बाद चांद पर सूर्योदय हो रहा था तथा शांत-सागर जो चंद्र-यात्रियों का गंतव्य था अंधकार की चादर उतारकर आंखें मल रहा था जैसे पहली बार दूर-दराज पृथ्वी के दो प्राणियों का स्वागत करने की तैयारी कर रहा हो। तैयारी आर्मस्ट्रांग और एल्ड्रिन भी कर रहे थे। उन्होंने अपनी अंतरिक्ष पोशाकें पहन ली थीं और चंद्र कक्ष अर्थात ईगल को दबाव-सहित कर दिया था क्योंकि इससे पूर्व कि ईगल कोलम्बिया से आ जुड़े, वही छोटा-सा चंद्र-कक्ष उनका आवास होना था।

तभी ह्यूस्टन के नियंत्रण-केंद्र में सूचना मिली कि वे असंबद्ध हो सकते हैं।

ईगल चन्द्र-तल की ओर

और तेरहवें चक्कर में जब अपोलो-11 घूमकर आया तो ईगल और कोलम्बिया अलग-अलग उड़ रहे थे। तभी तो आर्मस्ट्रांग ने नियन्त्रण-केन्द्र को सूचित किया था—'ईगल अपने पंखों पर है।' वास्तव में कॉलिन्स ने उन बारूदी चटखनियों को उड़ा दिया था जिनके द्वारा चन्द्र-यान मुख्य यान से जुड़ा हुआ था। और साथ ही ईगल ने अपने चारों पंख भी फैला दिए थे जो अभी तक सिकोड़े हुए थे।

अभी ईगल और कोलम्बिया—दोनों यान स्वतंत्र रूप से साथ-साथ ही उड़ रहे थे। ज्यों ही उन्हें भूमि से यह अनुमति मिली कि वे अपनी दूरी बढ़ा सकते हैं त्यों ही उन्होंने एक-दूसरे से परे हटना शुरू कर दिया। ये दोनों यान ज्यों-ज्यों अपने मध्य की दूरी में वृद्धि करते जा रहे थे, त्यों-त्यों उन क्षणों में कमी होती जा रही थी जो मनुष्य को चन्द्रमा का स्पर्श करने से रोके हुए थे।

इस बार ईगल जब चांद के पीछे गया तो उसने अपना इंजन लगभग आधे मिनट के लिए चलाया ताकि चन्द्र-तल पर उतरने के लिए यान की गति में कमी की जा सके।

जैसा कि ज्ञात ही है, ईगल में बैठने के लिए पीठिकाएं नहीं थीं अतः आर्मस्ट्रांग और एल्ड्रिन दोनों अपने-अपने स्थानों पर खड़े थे तथा उनके शरीर तस्मों के द्वारा

ईगल इस समय स्वत: चालित था किन्तु इसमें ऐसी व्यवस्था थी कि जिस समय भी आवश्यक हो उसे मानव-चालित बनाया जा सके। वैसे आर्मस्ट्रांग के समक्ष अब भी दोनो सम्भावनाए थी। वह यदि चाहता तो वापस कोलम्बिया के पास लोट सकता था और यदि चाहता तो पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार चन्द्र-तल पर उतर सकता था। लेकिन विश्व का सर्वश्रेष्ठ चालक अपने कर्तव्य को भली-भाति जानता था। उसने चन्द क्षणो मे ही निर्णय कर लिया और वह बटन दबा दिया जिससे यान को नीचे उतारने वाला इजन चालू होता था।

इंजन चलता रहा और ईगल को धीरे-धीरे नीचे की ओर ले जाता रहा। जिस समय ईगल लगभग 40,000 फीट की ऊंचाई पर था तो नियन्त्रण-केन्द्र ने कहा, 'ईगल, बढते जाओ।'

अब ईगल लगभग 30,000 फीट की ऊंचाई पर था तथा ऐसी स्थिति मे था कि उसका बिना एक बार चन्द्र-तल को छुए वापस लौटना सम्भव नहीं था क्योकि नीचे उतारने वाले इजन में इतना ईधन नही रह गया था कि वह ईगल को कोलम्बिया की ऊचाई पर पहुचा सके। अब तो यदि उन्हे लौटना हो तो केवल एक ही मार्ग था और वह था अवरोह विभाग को ही काट देना और आरोह विभाग वाले इजन की सहायता से ऊपर उठ आना। अवरोह विभाग को काटना कठिन नहीं था · उसका बटन आर्मस्ट्राग के हाथ के साथ ही था तथा उस पर एक दबाव ही इच्छित परिणाम पेदा कर सकता था।

घटते फासले

क्रमशः चंद्र-धरातल और ईगल के बीच का फासला घटता जा रहा था। वह 132 फीट प्रति सेकेंड के हिसाब से नीचे उतर रहा था और उसके साथ उतर रहे थे आर्मस्ट्राग और एल्ड्रिन जो इस समय किसी भी परिस्थिति से निबटने के लिए तैयार थे।

फासला घटते-घटते 8,000 फीट पर आ गया था। इस समय ईगल अपने गन्तव्य से पांच मील की दूरी पर था। ईगल इस सयम 370 मील प्रति घटे की रफ्तार से उतर रहा था।

जिस समय चाद की ऊची-नीची धरती ऊपर की ओर उठती आ रही थी तथा फासला क्रमशः घट रहा था तो ईगल के कंट्रोल पैनल पर खतरे की सूचना देने वाली लाल बत्ती बार-बार क्यों जल रही थी ? क्या नीचे खतरा था ? आर्मस्ट्रांग और एल्ड्रिन एक-दूसरे को निहार रहे थे, जिसका अर्थ था कि अब क्या किया जाए ?

इस समय पृथ्वी का नियत्रण-केंद्र उनके आड़े आया तथा उसने बतलाया कि लाल बत्ती खतरे की सूचना नहीं है, बल्कि इस बात की सूचक है कि सगणक से बहुत अधिक काम लिया जा रहा है।

चंद्र-यात्री इस शुभ सूचना से आश्वस्त अवश्य हुए, किंतु आर्मस्ट्रांग ने ईगल का संचालन अब पूरी तरह अपने हाथ में ले लिया तथा उन्हें शीघ्र ही समझ मे

आ गया कि लाल बत्ती खतरे का संकेत क्यों दे रही थी।

खिडकी मे से आर्मस्ट्रांग ने देखा कि उनका यान एक विशाल ज्वालामुखी पर उतर रहा है जो कि आर्मस्ट्राग के ही कथनानुसार 'फुटबाल के मैदान से तीन गुना बडा था। उसकी कुछ चट्टानें 10-10 फीट से भी अधिक ऊची थी।'

क्या यही वह स्थान था जो ईगल का गतव्य था ? शात-सागर के जिस बिंदु पर ईगल को उतरना था उसके लाखो चित्र पहले ही लिये जा चुके थे तथा यह निश्चय ही था कि यह ऊबड़-खाबड़ स्थान चांद पर उतरने के लिए किसी हालत मे भी नहीं चुना गया होगा। वैसे भी यह स्थान निश्चित स्थान से दो मील के अतर पर था। लगता यह है कि ईगल के इस गलत स्थान पर खिच आने का कारण उक्त स्थान पर गुरुत्वाकर्षण की सघनता थी तथा कम्प्यूटर चंद्र यात्रियों का लाल बल्ब के द्वारा ठीक ही पथ-प्रदर्शन कर रहा था।

उसके कुछ ही आगे छोटा-सा एक साफ-सुथरा मैदान था। जिसकी खोज 500 फीट की ऊंचाई मे ही हो गई थी।

इसके बाद चंद्र-धरातल और चंद्र-यान के बीच की दूरी क्रमशः घटती चली गई . 100 फीट.. 50 फीट...25 फीट...10 फीट और अत में पांच फीट। तुरत ही उस अछूती धरती को छूने वाले ईगल का इजन बद कर दिया गया। जिसके कारण उस वातावरणहीन वातावरण में धूल का कुछ अश उड़ा। चद्रमा के जीवन मे जैसे यह पहला स्पदन था।

चंद्रमा की धरती पर

5 फीट की ऊचाई से ईगल अपनी चारों टागों के तलुवे मे लगी गद्दियों के सहारे चंद्र-भूमि पर गिर-सा पड़ा तथा साथ ही प्रथम चंद्र-मानव आर्मस्ट्रांग के माथे पर नीली रोशनी का प्रकाश थिरकने लगा। नीली रोशनी यान के चंद्र-तल से स्पर्श की सूचक थी।

आर्मस्ट्राग ने ऊची आवाज़ में कहा, 'ह्यूस्टन, यह शांत-सागर का अड्डा है।' यह 21 जुलाई, सोमवार था—यानि सोम (चांद) का दिन !

स्पष्ट ही है कि यह नायक की आवाज़ थी। नायक पृथ्वी पर—चांद की कुआरी पृथ्वी पर उतर गया था और खलनायक अभी चक्कर ही लगा रहा था।

लूना—15 तीन सौ मील की गति से चाद के निकट जाने की चेष्टा करता रहा तथा लदन की जॉड्रल बैंक वेधशाला के अनुसार, जब वह चंद्र-सुंदरी को प्राप्त करने में असफल रहा तो उसने चाद के ही संकट-सागर मे छलांग लगाकर जान दे दी।

14. वे ऐतिहासिक क्षण

चाद की भूमि पर ईगल के उतरने की बात ! 'चमत्कार' शब्द भी पर्याप्त नहीं लगता आश्चर्यजनक के भाव को प्रकट करने के लिए। इसका कारण यह है कि 'भूमि' का प्रयोग तो हम केवल उसी ग्रह के लिए करते आए हैं, जिस पर हम रहते है। हमारी भूमि के अतिरिक्त कोई और भी भूमि है--यह सूचना ही हमारे लिए घोर आश्चर्य का विषय है।

और फिर चांद की भूमि जिसे हम 'चंद्रलोक' कहते और मानते आए हैं। चन्द्रमा को देवता समझकर उसकी पूजा-अर्चना करते आए हैं। किन्तु उसी चंद्र-भूमि पर मानव-निर्मित ईगल दो मानवो सहित उतर गया तथा मनुष्य और मशीन--दोनो ही स्वस्थ और सही-सलामत है। चाद की कुआरी धरती पर ईगल ओस का आंसू-सा पडा है और इधर मानवता की आखें लगभग ढाई लाख मीलों के अंतराल को भेद कर आर्मस्ट्रांग और एल्ड्रिन के आस-पास मंडरा रही हैं।

इन दोनों महा मानवों के पास अभी भी यह गुजाइश है कि यदि वे लोग चंद्र-भूमि पर पांव रखना हितकर न समझें तो हर्गिज न रखे तथा जिन पावों वहा पहुचे है, उन्ही पावों वापस लौट चले। इस निर्णय के विषय में ह्यूस्टन स्थित नियत्रण-केंद्र इन्हीं दोनों व्यक्तियों पर निर्भर करेगा।

और ये दोनों हैं कि अपने यान का पुनर्परीक्षण कर रहे हैं, देख रहे हैं कि उनका वाहन वापस ले जाएगा भी या नहीं।

ईगल पूर्व निर्धारित स्थल से चार मील के अंतर पर उतरा था पर इस अतर से बीस गुना अधिक बड़ा साया शांत-सागर के शात भू-खड पर डाल रहा था, दूसरी ओर लगभग 111 किलोमीटर की ऊंचाई पर मातृयान (कोलम्बिया) चाद के गोले के सार्थक चक्कर लगा रहा था, जैसे उसका पुत्रयान कहीं भटक गया हो। फिर भी कोलम्बिया के चालक कॉलिन्स की धीरता और विशाल हृदयता पर चकित हो जाना पडता है। जबकि चंद्र-विजय तथा चद्र-भूमि पर चरण-स्पर्श का यश मुख्यतः उसके दोनों सहयोगियों के हिस्से मे आ रहा था, कॉलिन्स सोमदेव की घाटी में जिस एकाकीपन का अनुभव कर रहा था, उसकी कोई मिसाल नही है। और तो और, उस समय दुनिया भी कॉलिन्स को भूल गई थी; उसकी जबान पर आर्मस्ट्राग और एल्ड्रिन ही

चढ हुए थे इसीलिए तब उड़ान नियंत्रक ने नियंत्रण केंद्र से कहा यहां तथा समस्त संसार में अनेक मुस्कराते हुए चेहरे हैं।'

और आर्मस्ट्रांग ने उत्तर दिया 'दो यहां भी हैं।'

तो कॉलिन्स को स्वयं ही स्मरण कराना पड़ा, 'तीसरे को मत भुला दीजिएगा।'

आर्मस्ट्रांग और एल्ड्रिन चकित दृष्टि से उस तल को निहार रहे थे जिस पर किसी मानव की दृष्टि पहली बार पड़ी थी। अपनी खिड़कियों से झांककर दोनों चंद्र-यात्री अधिक-से-अधिक विस्तृत जानकारी प्राप्त कर लेना चाहते थे। आर्मस्ट्रांग कह रहा था, 'हमें ऐसे स्थान की खोज थी जो अपेक्षाकृत सपाट हो। किंतु यहां भी सभी आकारों-प्रकारों के पत्थर है। उनके वर्णों मे भी काफी भेद है तथा आपके दृष्टिपात के ढंग पर निर्भर करता है।

चंद्र-यात्री एक साथ तीन कार्य कर रहे थे · (1) निरीक्षण, (2) प्रकथन और (3) छायांकन। उनका विचार वहां ठहरने का हो गया था। योजना यह थी कि पहले कुछ खा-पीकर थोड़ा सुस्ता लिया जाए ताकि चंद्र-तल पर अधिक-से-अधिक कार्य करने का सुअवसर मिले। लेकिन इससे पूर्व उन्होंने अपने यान का भली-भांति परीक्षण किया क्योंकि कई कारणों से ईगल की व्यवस्थाओं में गड़बड़ का अंदेशा था। पर चांद के परिवेश मे लगभग 5 फीट की ऊंचाई से गिरने के बावजूद ईगल पूर्ववत् स्वस्थ और तरोताज़ा था।

कुछ तो सभी व्यवस्थाओ के योजनाबद्ध ढंग से कार्य करने के कारण और कुछ उत्साह, उल्लास व कौतूहल के कारण चंद्र-यात्री चंद्र-भूमि पर उतरने के लिए उतावले हो रहे थे। इसलिए उन्होंने ह्यूस्टन-नियंत्रण-केंद्र से समय से पूर्व उतरने की अनुमति मांगी ·

शांत-सागर-शिविर—'इस स्थिति में एक सुझाव है। हम लोग आपकी अनुमति से अब से तीन घंटे बाद ही चंद्र-भूमि पर कार्यक्रम आरंभ करना चाहते हैं।'

नियंत्रण-केंद्र—'हमारी सहमति है।'

भोजन और आराम के बाद चंद्र-तल पर उतरने के लिए पहला तथा टेढा कार्य था उस विशेष चंद्र-पोशाक को धारण करना जो कम-से-कम पांच लाख रुपयों की लागत से बनाई गई थी। यह सोलह तहो वाली पोशाक थी तथा इसे चांद के परिवेश और वहां की जोखिमों को पूरी प्रकार ध्यान में रखकर तैयार किया गया था।

इस पोशाक के विषय में सोचकर ही दांतों तले उंगली दबानी पड़ती है। सुपर बीटा, फाइबर ग्लास तथा प्लास्टिक की विभिन्न प्रकारों से बनाया गया यह सूट अपने आप में एक अजूबा ही था। इसकी व्यवस्था ऐसी रखी गई थी कि इसकी प्रत्येक तह में अनेक छोटे छेद होने के कारण पूरी पोशाक में ऑक्सीजन का भली-भांति संचरण हो सकता था। हालांकि यह ध्यान रखा गया था कि एक सूराख दूसरे पर न पड़े ताकि किसी प्रकार का सौर-धूलि-कण अथवा उल्का-कण शरीर को किसी तरह का आघात न पंहुंचा सके।

चाद का ताप भी अपने ही ढग का है गर्मी जाए तो अति और सर्द पडे तो अति। इन दोनो अवस्थाओ मे ही शरीर की पूरी सुरक्षा की व्यवस्था चंद्र-पोशाक मे की गई थी। जहा आवश्यकतानुसार शरीर को उष्ण रखने की व्यवस्था थी, वहां छोटी-छोटी नालियो द्वारा त्वचा के निकट से पानी के प्रवाह की भी व्यवस्था थी ताकि बहुत अधिक गर्मी मे शरीर अपनी स्वाभाविक स्थिति मे रहे। आपस मे, कोलम्बिया के साथ तथा ह्यूस्टन से सपर्क स्थापित रखने के सभी सचार-साधन उक्त पोशाक मे मौजूद थ।

इसी पोशाक के अग विशेष दस्ताने, जूते और मुख की विशेष शीशे के आवरण से रक्षा करने वाला शिरस्त्राण था। और था 80 पौण्ड से अधिक वज़न का पीठ-भार जिसमे ऑक्सीजन तथा नलकियों मे घूमने वाले पानी का प्रबध था।

यह सारा साज-बाज पृथ्वी के वातावरण की दृष्टि से तो बहुत ही अधिक था तथा इसे धारण करके कुछ कार्य कर सकना असभव ही प्रतीत होता था। पर चद्र-तल पर इसका भार 1/6 रह जाने के बावजूद इसको पहनकर कार्य करना कठिन था। बहरहाल चांद के परिवेश में जहां उल्कापातों, सौर-धूलि-कणों एव सौरज्वालाओं का खतरा प्रतिक्षण बना रहता है तथा जहा का ताप सैकड़ों डिग्री फॉरनहाइट पर पहुंच जाता है, यह पोशाक एक अनिवार्यता थी।

बाहर निकलने के लिए अर्द्ध द्वार खोलने की घडी आ गई थी तथा भूमिस्थित नियत्रण-केंद्र की अनुमति से ईगल के कक्ष को दबाव रहित कर दिया गया तथा द्वार खोल दिया गया। यह क्षण बडे महत्त्व और जोखिम का था। पृथ्वी के प्राणी ने पहली बार किसी अन्य ग्रह के परिवेश से साक्षात्कार किया था। यदि सच पूछा जाय तो आर्मस्ट्रांग अपने यान से बाहर नही निकल रहा था, बल्कि इतिहास में प्रवेश कर रहा था। और इसकी घोषणा उसने स्वय की थी -

'अच्छा, ह्यूस्टन ! मै पोर्च के ऊपर हूं।'

आर्मस्ट्रांग अर्द्ध द्वार से बाहर निकलकर आगे के पोर्च पर खड़ा हो गया तथा 9 डण्डों वाली अलम्यूनियम की सीढ़ी को पाव से टटोलने लगा और अतत. दूसरे नबर के डडे पर खड़ा हो गया।

ईगल के अवरोह उप विभाग में, सीढ़ी के बाईं ओर, एक छोटा-सा स्टोर था जिसका द्वार कडे के शक्ल की जजीर खींचकर आर्मस्ट्रांग ने खोल दिया तथा उसके आगे का फट्टा खुलते ही उतरते हुए आर्मस्ट्रांग तथा सामने फैले हुए चंद्र-तल पर टेलीविज़न कैमरे की आंख फिसलने लगी। और साथ ही ह्यूस्टन से सूचना मिली, 'टेलीविजन चित्र प्राप्त होने शुरू हो गए हैं।'

ह्यूस्टन ने फिर सूचना दी—'नील, हम तुम्हें सीढ़ी से नीचे उतरते हुए देख रहे है।'

चंद्र-तल पर मानव का पहला कदम

आर्मस्ट्रांग—'अब में सीढ़ी के सबसे नीचे वाले डडे पर हू...अब में ईगल से नीचे उतर रहा हूं।'

भार के 3 बजकर 56 मिनट और 20 सेकण्ड हुए थे जब मनुष्य का पहला चरण चांद पर पड़ा आर्मस्ट्रांग चंद क्षणों के लिए मौन हो गया जैसे इन ऐतिहासिक क्षण को व्यक्त करने के लिए शब्द ढूंढ़ रहा हो तब उसने कहा

मनुष्य का यह छोटा-सा कदम मानवता की बहुत बड़ी छलांग है।

मनुष्य के शक्तिभर प्रयत्नों के बावजूद बाह्य अंतरिक्ष की व्यापकता और अनंतता के समक्ष यह एक छोटा-सा प्रयत्न ही कहा जा सकता था। किंतु मानवता के लिए यह सचमुच ही एक महान् उपलब्धि थी, क्योंकि अपने लाखों-करोड़ों वर्षों के अस्तित्व के उपरांत मानव अपने पृथ्वी के पालने को त्याग कर वास्तविक भूमि पर पांव टिकाने में सफल हुआ था।

इस समय आर्मस्ट्रांग का मौन रहना मुश्किल था। वह बराबर बोलता जा रहा था, 'धरातल अत्यंत बारीक कणों वाला तथा पाउडर जैसा है। इसके सूक्ष्म से कणों को जूते के पंजे पर उठाया जा सकता है। बहुत ही पतली तहों के रूप में यह मेरे बूटों के तले और बगलों से चिपट रहा है।...अपने पांवों के निशान मैं बहुत बारीक रेतीले कणों पर पड़े देख रहा हूं। जैसा कि संदेह था, इधर-उधर घूमने में कोई कठिनाई नहीं प्रतीत होती है।'

जिस समय आर्मस्ट्रांग अपनी कमेंट्री दे रहा था तो एल्ड्रिन खिड़की में से उसके चित्र लेता जा रहा था।

लगता है, नियंत्रण-केंद्र को इस समय सबसे अधिक चट्टानों व मिट्टी के नमूने एकत्र करने की चिंता थी। इसका कारण यह था कि अपोलो-11 की उड़ान मुख्य रूप से इसी हेतु से संबद्ध थी और चांद की धरती पर प्रथम मानवों की चहल कदमी की अवधि बहुत ही सीमित थी। इसलिए ह्यूस्टन ने आर्मस्ट्रांग को याद दिलाया—

'नील, यह ह्यूस्टन है। नमूने एकत्र करने के लिए भी कुछ काम किया।'

आर्मस्ट्रांग ने बाईं टांग वाली जेब से नमूने एकत्र करने का सामान निकाला और अपने कार्य में जुट गया तथा बोला, 'यह भी बड़ी मजेदार बात है। ऊपरी तल तो मुलायम है किंतु जहां-जहां मैं नमूने एकत्र करने का प्रयोग करता हूं तो बड़ी सख्त धरातल से पाला पड़ता है।'

और उसने थैला भर वापस जेब में रख लिया।

अब एल्ड्रिन के भी बाहर निकलने की बारी थी। आर्मस्ट्रांग उसका पथ-प्रदर्शन कर रहा था, 'बस तीन डंडे और हैं और तब एक लंबा कदम।'

आर्मस्ट्रांग और एल्ड्रिन दोनों ही गुड्डे से उस विशाल विस्तार में एक विशेष प्रकार की चाल से घूम रहे थे। इस प्रकार चलने का अभ्यास उन्होंने ह्यूस्टन के परीक्षण-केंद्र पर काफी किया था जहां कृत्रिम चंद्र-वातावरण का निर्माण करके इन दोनों को नियमित रूप से 1/6 गुरुत्वाकर्षण में चलाया गया था।

जिस समय आर्मस्ट्रांग सीढ़ी से उतरा था तो टेलीविज़न पर भूत-सा नज़र आता था क्योंकि ईगल की छाया के कारण वहां काफी अंधेरा था किंतु अब धूप में घूमते

हुए ये दोना चद्र-यात्री सचमुच चाद के ही प्राणी लग रहे थे इनकी विशेष पोशाको ने इनका रूप ही बदल दिया था तथा यदि कोई ऐसी सभ्यता इनके चित्रो को देखे जिसे चांद के विषय में पूरी जानकारी न हो तथा यह भी ज्ञात न हो कि पृथ्वी के प्राणी ने चाद पर विजय पाई थी तो वह यही निष्कर्ष निकालेगी कि चद्रमा आवाद है अथवा कभी आवाद था और उस पर प्राणी विशेष का वास था।

एल्ड्रिन ने 4 बजकर 16 मिनट पर चद्र-भूमि पर पदार्पण किया था तथा कहा था, 'शोभामई शून्यता—श्रेष्ठ सुदर !' उसका विचार था कि पाउडर जैसे पदार्थ के इच-इच पर फैले होने के कारण चट्टानो पर फिसलन थी।

उन दोनो ने चट्टानो के कुछ टुकडे इधर-उधर फेंककर भी देखे तथा आर्मस्ट्राग ने पूछा, 'बैंजनी चट्टाने मिलीं ?'

'हां' एल्ड्रिन ने उत्तर दिया, 'ये छोटे-छोटे टुकडे वड़े भड़कीले से हे।'

एक पत्थर को उठाते समय उन्होंने सूचना दी कि वह गीला है तथा जहा से उठाया गया है, वह स्थान भी चिपचिपा-सा है।

गीलेपन की बात वैज्ञानिको के वडे ही काम की थी। वास्तव मे चंद्रमा पर पानी को लेकर एक पूरा वाद-विवाद ही चल रहा था तथा साधारण मत यह था कि चांद पर पानी नहीं है हालाकि वहां के अनेक स्थलो को प्राचीन लोगों ने 'समुद्रों' की संज्ञा दी थी।

चंद्र-विजय

योजना के अनुसार अव उस तख्ती का अनावरण किया जाना था जिसे ये लोग अपने साथ ले गए थे। यह तख्ती सीढ़ी के पांचवें और छठे डंडे के बीच लगी हुई थी तथा ढक्कन से ढकी हुई थी। स्टेनलैस स्टील की बनी उस तख्ती का अनावरण करते हुए आर्मस्ट्रांग ने कहा—

'चद्र-कक्ष-भूमि-अवतरण-उपकरण पर लगी इस तख्ती को हम उन लोगों के लिए पढ़ेंगे, जिन्होंने इसे नहीं पढ़ा है। सबसे ऊपर तो दोनों गोलार्द्ध हैं—उनके नीचे लिखा है—'जुलाई, 1969 ईस्वी में पृथ्वी के मनुष्यों ने यहां पहली वार पदार्पण किया। हम यहां मानव-मात्र की शाति-कामना लेकर आए।' इस पर तीनो चंद्र-यात्रियों और सयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति के हस्ताक्षर है।'

इसके बाद उन्होंने चंद्र-तल पर वैज्ञानिक परीक्षण-यंत्र स्थापित करने आरंभ किए। इन यंत्रों के द्वारा न केवल चांद से सूचनाएं मिलती रह सकती थीं बल्कि दोनों पृथ्वियों का संपर्क भी बना रह सकता था।

एल्ड्रिन ने सौर-वायु-एकत्रक को चंद्र-मिट्टी में स्थापित कर दिया इसके द्वारा सौर-वायु को एकत्र करने का कार्य होना था। यह वायु हीलियम, ऑर्गान, निऑन, जेनान आदि गैसों की बौछार है।

इसके बाद दोनों यात्रियों ने अमरीका का राष्ट्रीय झंडा फहराया जो कि आठ

फीट ऊंचे अलम्यूनियम के डडे पर शात मौन खडा था

झडा चढ़ाने के कार्य के साथ ही नासा ने घोषणा की 'झडा चढाने की क्रिया इस तथ्य का प्रतीक " कि मनुष्य पहली बार किसी अन्य धरती पर उतरा इसके द्वारा चाद की भूमि पर अमरीका का दावा स्थापित नही होता।'

वैसे दोनों यात्रियो के पास सयुक्त राष्ट्र संघ का झडा भी था तथा 136 देशो का भी जिनमे भारत का तिरगा भी था। पर ये ध्वजाएं वहा छोडी नही गई, वापस पृथ्वी पर लाई गई। छोड़े गए केवल गागरिन और कोमारॉफ के पदक जिन्हें पहन कर उनको स्वयं चाद की भूमि पर उतरना था। और उनके साथ ही समर्पित किए ग्रिसम, व्हाइट और चैफी के बिल्ले जिन्हे, सभव था, वे लोग स्वय ही लगाकर वहा जाते। जैसे की ज्ञात ही है, ये तीनो खलाबाज अपोलो-अभियान को सफल बनाने के कार्यक्रम में ही बलिदान हो गए थे।

इस दौरान कॉलिन्स काफी बोर हो चुका था। यश और ख्याति से वंचित वह व्यक्ति अपनी ही धुन में चांद की परिक्रमा कर रहा था। वह अपनी ओर से अपने दोनों मित्रो को चाद की धरती पर ढूंढ़ने की भी चेष्टा कर रहा था पर यह सभव नहीं हो पा रहा था। और मज़ा यह था कि जबकि दुनिया का पांचवां हिस्सा चद्र-तल पर चलने वाले कार्य-व्यापारों को टलीविज़न पर देख रहा था, कॉलिन्स के लिए यह भी सभव नहीं था—उसके पास टेलीविज़न सेट नहीं था।

जब वे लोग चंद्र-यान के आस-पास घूम रहे थे तो ऐसा लगता था जैसे बच्चे हो और उछल रहे हों। तभी एल्ड्रिन ने कहा, 'जिस दिशा मे जाना चाहो वहा झुकने के लिए जबरदस्त सावधानी की जरूरत है अन्यथा आदमी शराबी-सा झूमता दिखाई देगा। लेकिन डरने की कोई बात नहीं क्योकि चलते समय चौथाई इंच से अधिक नही धसेगा।'

चद्र-विजय के ऐतिहासिक क्षणों में चंद्र-यात्रियों को राष्ट्रपति निक्सन का बधाई सदेश भी मिला। ह्यूस्टन ने उन्हें सूचित किया—'नील और बज ! हम चाहते हैं कि आप दोनो एक मिनट के लिए कैमरे के दृष्टि-पथ मे आएं। अमरीका के राष्ट्रपति इस समय अपने कार्यालय मे है तथा आप तक चंद शब्द पहुंचाना चाहते है।'

आर्मस्ट्रांग—'यह तो हमारे लिए गौरव की बात होगी।'

'मिस्टर प्रेजिडेंट। बात शुरू करिए।'

निक्सन के संदेश को सुनने के लिए चंद्र-यात्री 'सावधान' की मुद्रा में खडे थे।

राष्ट्रपति निक्शन—'नील और बज़ !...मेरे द्वारा किए गए टेलीफोन-वार्तालापों मे यह सर्वाधिक ऐतिहासिक वार्तालाप है। मैं वर्णन नहीं कर सकता कि आप लोगो द्वारा की गई उपलब्धि से हम लोग कितने अधिक गौरवान्वित हुए है।...क्योकि जो कुछ आपने किया है उससे व्योम लोक मानवीय दुनिया के अंग बन गए हैं। और जिस समय आप लोग शांत-सागर से बोल रहे हैं तो इस पृथ्वी पर शाति और स्थिरता

स्थापित करने के प्रयत्नों को दुगुना करने के लिए हमें प्रेरणा मिल रही है मानव के संपूर्ण इतिहास में इस अनमोल क्षण के दौरान इस पृथ्वी के सभी लोग सचमुच एक हो गए हैं। वे उस गौरव को अनुभव करने में भी एक हैं जिसके निमित्त आप लोगों ने यह महान् कार्य किया है और इस प्रार्थना में भी कि आप लोग सकुशल वापस लौटेंगे।'

आर्मस्ट्रांग--'धन्यवाद, मिस्टर प्रेजिडेंट। यह हमारे लिए बड़े गौरव की बात है कि हम यहां न केवल संयुक्त राज्य अमरीका का अपितु सभी राष्ट्रों के शांति-प्रिय व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।...आज यहां इस कार्य में सम्मिलित होकर हम लोग गौरवान्वित हुए हैं।'

किंतु चंद्रमा पर पहुंचने का मुख्य लक्ष्य अभी भी अपूर्ण था--चंद्र-यात्रियों को चट्टान और मिट्टी के काफी नमूने उस सीमित समयावधि में ही एकत्र करने थे। और अब वे लोग कार्य में जुट गए। एक लंबे डंडे वाले मिट्टी-पत्थर उठाने वाले यन्त्र से उन्होंने काफी कुछ मिट्टी-पत्थर खोद डाले तथा उन्हें प्लास्टिक के 15 थैलों में भर लिये। इसके बाद उन थैलों को अल्म्यूनियम के उन दो बक्सों में बंद कर लिया जो विशेष रूप से इसी कार्य के लिए बनाए गए थे।

मिट्टी-पत्थर के नमूने एकत्र करने तथा भरने का कार्य अधिकांश में आर्मस्ट्रांग के जिम्मे था, जिसे वह सहर्ष करता रहा और एल्ड्रिन आवश्यक फ़ोटोग्राफी में व्यस्त रहा।

चंद्रमा पर कुछ यंत्रों की स्थापना

नमूने एकत्र करने के बाद अब चंद्र-भूमि पर अन्य यंत्र लगाने का समय आ गया था। इनमें एक कंपन-मापी यंत्र था जिसे चंद्र-यात्री अपने साथ ले गए थे। यह यंत्र उन्होंने चंद्रमा की सतह पर लगा दिया तथा वापस आते समय भी उठाया नहीं--वहीं छोड़ दिया। वास्तव में, ऐसा विश्वास किया जाता है कि चंद्र-तल पर उल्काओं की वर्षा हुआ करती है जिसके कारण वहां की धरती में कंपन होता है।

इसके अतिरिक्त कुछ वैज्ञानिकों का यह भी विश्वास है कि चांद पर भूगर्भिक आन्तरिक क्रियाएं अभी भी चली हुई हैं तथा ज्वालामुखीय आन्दोलन उक्त धरती में हो रहे हैं। इन्हीं के परिणामस्वरूप वहां की भूमि में बराबर कम्पन होते रहते हैं।

बहरहाल यदि कंपन-मापी-यंत्र बाद में भी कंपनों को ग्रहण करके पृथ्वी पर भेजता रहे तो चंद्र-धरा के विषय में कुछ अंतिम निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

तो भी जो कंपन-मापी-यंत्र चंद्र-यात्रियों ने वहां स्थापित किया, वह इतना संवेदनशील था कि चंद्रमा के धरातल पर चलने वाले व्यक्तियों के पांवों से उत्पन्न कंपनों को भी उसने पकड़ लिया और भूमि को भेज दिया। (पर ऐसी खबर है कि 100 पाउंड के इस यंत्र ने अत्यधिक उष्णता के कारण दिनों बाद ही कार्य बंद कर दिया)।

इसके अतिरिक्त चंद्र-यात्रियों ने 24 इंच का एक लेजर-परावर्तक यंत्र भी स्थापित किया जिसकी जीवन-अवधि तीन वर्ष थी। यह यंत्र पृथ्वी से चांद पर भेजी गई लेजर-किरणों को परावर्तित करके पुनः पृथ्वी पर भेजने में सक्षम था। जैसा कि विदित ही है, लेज़र-किरणों के परावर्तन द्वारा दो स्थानों की ठीक-ठीक दूरी निकाली जा सकती है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य लाभ भी इस यंत्र से हो सकते है, जैसे कि यह ज्ञात किया जा सकता है कि क्या चांद पृथ्वी से परे हट रहा है, अथवा क्या उसके निकट आ रहा है ? फिर क्या हमारे महाद्वीप अनुगमन कर रहे हैं ?

लेजर-किरणों की सहायता से भू-गर्भ मे होने वाले कंपन की भी पूर्व सूचना मिल सकती है। इसके अतिरिक्त लेजर-किरणें पृथ्वी के घूमने की रफ्तार के घटने-बढने की भी जानकारी दे सकती है तथा यह स्पष्ट कर सकती है कि उत्तरी ध्रुव गतिशील क्यो है ?

इसके बाद एल्ड्रिन ने चंद्र-भूमि के अंतमार्ग का नमूना लेने की कोशिश की तथा नियंत्रण केंद्र से कहा—

'आशा है, आप लोग यह देख रहे होंगे कि लगभग पांच इंच की गहराई तक पहुंचने के लिए कितनी सख्त चोट मारनी पड़ती है। ह्यूस्टन, यहां तो बिल्कुल गीला नजर आता है।'

अब चंद्र-यात्रियों के ईगल में वापस आने का समय करीब आ रहा था। नियंत्रण-केंद्र को उन्हें बार-बार स्मरण कराना पड़ रहा था कि उन्हे अपना कार्य समाप्त कर लेना चाहिए किंतु लगता है, चंद्र-यात्रियो का दिल अभी नही भरा था तथा वे थोडा और समय चंद्र-तल पर बिताना तथा अनेक अन्य नमूने इकट्ठे करना चाहते थे।

सबसे पहले तो सौर-वायु-एकत्रक को इकट्ठा किया गया तथा बक्स मे बंद किया गया। इसके बाद दोनों यात्रियों ने ईगल में सामान लाना आरंभ किया। इस सामान मे सौर-वायु-एकत्रक, मिट्टी और चट्टानो के टुकड़ो से भरे दो बक्से तथा कैमरा इत्यादि थे।

इसके बाद अपने यान का द्वार बंद करने से पूर्व उन्होंने वह सारा सामान बाहर ही डाल दिया जिसकी कोई आवश्यकता उन्हें महसूस नहीं हो रही थी। इस सामान में अनेक प्रकार की वस्तुएं थीं जैसे सौर-वायु-एकत्रक का डंडा, टेलीविजन कैमरा और उसका स्टैण्ड, मिट्टी-पत्थर आदि खोदने और उठाने के औजार, पीठ-भार इत्यादि। इनमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण ईगल का अवरोह विभाग था जिसे आरोह उपविभाग के लिए क्षेपण-मंच का कार्य करना था।

जिस समय वापसी यात्रा के लिए आर्मस्ट्रांग और एल्ड्रिन अपने यंत्रों की जांच-पड़ताल कर रहे थे, उनका तीसरा मित्र माइकल कॉलिन्स उस समय भी चांद के चक्कर काट रहा था तथा उन दोनो के लिए उस घूमते हुए अड्डे को तैयार रखे हुए था। माइकल की दयनीय अवस्था के विषय मे नासा के एक अधिकारी

८२। ९ा२८ ॱ कहा था।

आदम के बाद किसी आदमी ने ऐसे एकात का अनुभव नहीं किया जैसा कि प्रत्येक चद्र-परिक्रमा क दौरान 47 मिनट तक माइक कॉलिन्स कर रहा है, जिस समय वह चंद्रमा के पीछे होता है तथा एक टेप रिकार्ड के अतिरिक्त बात-चीत के लिए अन्य कोई उसके पास नही होता।'

ईगल उडने के लिए तैयार है कि नही—इस विषय में आश्वस्त होकर दोनो चद्र-यात्री भोजन करने बैठ गए। अपनी भारी चद्र-पोशाके उन्होने उतार दीं तथा ब्रश इत्यादि करके साफ-सफाई कर ली। अब आराम करने की बारी थी क्योकि दोनों प्रथम चद्र-यात्रियो ने चद्र-तल पर बिना दम लिये लगातार कार्य किया था। आर्मस्ट्रांग 2 घटे 31 मिनट तक चंद्र-धरातल पर रहा था और एल्ड्रिन 2 घंटे 11 मिनट तक परंतु आवेश के उन क्षणों मे जितना कार्य उन्होंने किया था, उतना साधारण मनःस्थिति में उससे दुगुने समय मे नही हो सकता था।

भोजन करके दोनों चांद के विशाल शात-सागर मे निद्रा के लिए लेट गए किंतु अभी कठिन घडियों की समाप्ति नही हुई थी। इस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे चांद पर पहुचना सरल हो और वापस लौटना कठिन। क्योकि आज तक चाद के धरातल पर उतरकर कोई यान वापस नहीं लौटा—जितने मानव-रहित यान वहा उतरे थे, सब वही रह गए थे तथा ईगल का वहीं रह जाना सर्वथा असंभव नहीं समझा जा सकता था।

अब तो सब कुछ 78 किलोग्राम के इंजन पर निर्भर करता था, जिसने ईगल के आरोह उपविभाग को चंद्र-तल से ऊपर उठकर कोलम्बिया के सन्निकट लाना था। वैसे इस इंजन को हजारों बार चलाकर देखा जा चुका था—इसके 3,000 से भी अधिक परीक्षण किए गए थे जो कि सफल रहे थे किंतु चांद से सचमुच वापस उडना परीक्षण नहीं था—एक वास्तविकता थी।

15. परिणति एक आधुनिक अश्वमेध की

ससार की सृष्टि अपने आप मे एक महानतम घटना थी। जड़ में चैतन्य का प्रादुर्भाव दूसरी महानतम घटना और प्राणियो मे मानव का उदय तीसरी महानतम घटना। बल्कि कहना यों उचित होगा कि संपूर्ण सृष्टि-शृंखला घटनाओं की ही क्रिया-प्रतिक्रिया है। किंतु यदि यह तलाश करने की कोशिश की जाए कि वह महत्त्वपूर्ण घटना कौन-सी है जिसमे विश्व के अधिकतम लोगों ने भाग लिया तो यह निश्चय ही अपालो-11 की उड़ान कही जाएगी जिसके फलस्वरूप चाद पर विजय पाई गई थी।

चद्र-विजय के उपरांत तो यह कहना और भी अधिक व्यर्थ लगता है कि अपोलो-यान और शनि प्रक्षेपक मानव-अस्तित्व के अन्यतम करिश्मे हैं। अपोलो-11 के विषय में वर्नर व्हॉन ब्रॉन ने कहा था '—

'उस पक्षी के लिए कोई भी एक व्यक्ति श्रेय का दावेदार नहीं हो सकता।'

शायद इसीलिए यह अभूतपूर्व घटना सार्वभौमिक हो गई थी तथा इसकी सफलता के श्रेय का दावा मानवता मात्र कर सकती है। इस दावे की सर्वप्रथम अभिव्यक्ति तो अमरीकी राष्ट्रपति के इन शब्दों में ही मिलती है :—

'अपोलो-11 चंद्रमा के मार्ग पर है। इसमें तीन बहादुर अंतरिक्ष-यात्री हैं। उसके साथ इस पृथ्वी के असंख्य व्यक्तियो की आशाएं और अर्चनाएं हैं।' पर अपोलो की उडान और विजय का मात्र यही एक पक्ष नहीं था।

ईसाइयों के धर्म गुरु पोप पॉल ने आकाश की ओर हाथ उठाकर कहा, 'सर्वोच्च आकाश पर आसीन प्रभु को गौरव तथा पृथ्वी पर सद्भावनापूर्ण व्यक्तियो को शांति।'

चंद्र-विजय पर विभिन्न प्रतिक्रियाएं

अपोलो-11 की सफलता पर खुदा को याद करने वाले तुर्की निवासी मुस्तफा एल्गिन भी थे। उन्होने केवल इतना कहा, 'हे खुदा ! दुनिया का ओड आ गया।' और इस दुनिया से कूच कर गए।

मृत्यु के अलावा चंद्र-विजय ने आत्महत्याओं को भी प्रेरणा दी : पीरू देश के निवासी काल्डरोन ने छुरा मारकर इसलिए आत्महत्या कर ली क्योंकि अमरीका और रूस इस प्रकार के कार्यों से भगवान के पूर्व निर्धारित मार्ग में रोडे अटका रहे थे।

घाना के एक कस्बे में नागाई कासा नामक व्यक्ति रात के दो बजे ही उठ कर बैठ गया वह इस भय के अंतर्गत रेडियो सुन रहा था कि झटके में चांद पर से कहीं दोनों यात्री नीचे न लुढ़क आएं।

अपोलो-11 की सफलता के साथ नए नामकरणों की होड़-सी लग गई 'अपोलो', 'ईगल' तथा 'कोलम्बिया' जैसे शब्दों का तुरंत हुए बच्चों के नामकरण के लिए खासा प्रयोग किया गया। बल्कि कुछ बच्चों ने तो (बेशक तात्कालिक तरीके पर ही) अपने पुराने नामों का त्याग कर इन्हीं लोकप्रिय शब्दों में से अपने नाम चुन लिये। पाकिस्तान के ढाका नामक नगर के एक अस्पताल में उत्पन्न हुए बच्चे का नाम अपोलो रखा गया।

चंद्र-यात्रियों के नामों का भी उपयोग किया गया। भारत के बंगलौर नगर में तीन पुष्प-जातियों के नाम आर्मस्ट्रांग, ऐल्ड्रिन और कॉलिन्स निश्चित किए गए।

उधर 'न्यूयॉर्क टाइम्स' ने लगभग 50 वर्ष पुरानी अपनी भूल सुधारने की घोषणा की . 13 जनवरी, 1920 के अंक में रॉकेट के जनक गोडार्ड की इस मान्यता की खिल्ली उड़ाई गई थी कि शून्य में रॉकेट अपना कार्य कर सकता है। लेख में लिखा था, 'प्रो. गोडार्ड को उतनी भी जानकारी नहीं जितनी प्रतिदिन उच्च स्कूलों में बच्चों को दी जाती है।' पर अपोलो-11 की उड़ान के बाद 'न्यूयॉर्क टाइम्स' में खेद प्रकाशन के साथ लिखा गया, 'अब यह पूर्णतः सिद्ध हो गया है कि प्रक्षेपक शून्य में सक्रिय रह सकता है।'

लंदन के डेविड थ्रेलकाल ने चंद्र-विजय से संबद्ध एक शर्त ही जीत ली। उसने 1964 में एक प्रकाशक से यह शर्त बदी थी कि 1 जनवरी, 1971 से पूर्व मनुष्य चांद पर उतर जाएगा परंतु हारे हुए प्रकाशक ने शर्त की धनराशि बढ़ाते हुए कहा यदि 1 जनवरी, 1971 तक रूसी भी चांद पर उतर गए तो वह और बड़ी रकम हार जाने को तैयार है।

फिलीपीन्स ने चंद्र-विजय के उत्सव को एक और ही ढंग से मनाया : वहां टेलीविज़न पर यह घोषणा की गई कि चंद्रमा पर चरणार्पण के समय जो प्रथम 11 बच्चे उक्तदेश में उत्पन्न होंगे, उन्हें पुरस्कृत किया जाएगा।

भारत में चंद्र-विजय की महान् घटना का स्वागत बड़े अजीबोगरीब ढंग से किया गया। देहरादून के एक मुसलमान सज्जन अब्दुल रशीद ने दुःखी स्वर में कहा, 'उन्होंने हमारा चांद नापाक कर दिया है।'

उधर दिल्ली के एक हिंदू सत्यदर्शी ने अपनी चांद घुटवाकर चांद पर की गई जीत का उल्लास प्रकट किया। वे 1961 से अपने बाल इसी महान् दिन के लिए पाल रहे थे।

उल्लास

चंद-विजय के कारण उस रात चोरी-डकैती के दुष्कर्मों में भी काफी कमी आ गई। बतलाते हैं कि इटली की राजधानी रोम के अधिकांश चोर-डाकू उस रात

टलीविजन ही देखते रह गए तथा चोरी डकैती की वारदात एक-तिहाई से भी कम रह गई

जापान की सबसे ऊची 36 मंजिली इमारत की 113 खिड़कियों म प्रकाश करके 'अपोलो । बधाई' को जापानी शब्दों में प्रकट किया गया।

परतु इस प्रतिक्रियाओं का एक और पक्ष भी था · वारसा (पोलैंड) के एक पत्रकार ने लिखा, 'ये तीन शूर-वीर व्यक्ति जो कि शताब्दियों की अभिलाषाए ले कर जा रहे है, मानव-मात्र के प्रतिनिधि है।'

उधर मेक्सिको के एक समाचार पत्र ने प्रकाशित किया, 'पत्थर के औजार से लेकर अणु के विभाजन तक की सपूर्ण मानवीय उपलब्धि इस भंगुर यान में चाद पर ले जाई जा रही है।'

इस विषय मे पेरिस के एक पत्र ने बड़ी महत्त्वपूर्ण टिप्पणी की · 'आज से 15 लाख वर्ष पूर्व जब इस पृथ्वी नामक ग्रह पर इंसान नमूदार हुआ था, तब से आज तक का यह सर्वाधिक उत्साहवर्धक कार्य है।'

पृथ्वी पर हो रही तमाम प्रतिक्रियाओं मे सबसे अधिक चौंका देने वाली प्रतिक्रिया साम्यवादी चीन मे हुई—वहां कोई प्रतिक्रिया ही नही हुई।

बहरहाल, इस समय क्रिया की आवश्यकता थी क्योंकि अश्वमेध का आधुनिक सस्करण अभी अपनी पूर्ण परिणति पर नही पहुंचा था। एक अन्य 'ग्रह' (उपग्रह) की विजय के लिए जो अपोलो-11 नामक अश्व छोड़ा गया था, वह अभी घर नही लौटा था। उसका एक भाग अभी चंद्रमा पर ही था जिसको अलग से ईगल की सज्ञा दी गई थी। दूसरा भाग चांद की परिक्रमाए कर रहा था जो कोलम्बिया के नाम से जाना जाता था। चाद पर विजय प्राप्त कर ली गई थी लेकिन यह उपलब्धि अधूरी थी तथा तब तक अधूरी ही रहनी थी, जब तक कि तीनों चंद्र यात्री अपने अश्व की गर्दन पर सवार होकर सकुशल अपने ग्रह पर न लौट आए।

नई धरती के ऊपर तथा नए आसमान के नीचे दोनो यात्री सो कर उठ चुके थे तथा नियत्रण-केंद्र से पूछताछ चल रही थी :

'शिविर शांत सागर । आराम पूरा हो गया न ?'

इस पर एल्ड्रिन ने उत्तर दिया, 'नील ने तो सोने के लिए बड़ा अच्छा झूलना बना लिया था। वह इजन के आवरण पर पड़ा रहा और मै फर्श पर।'

यह पड़े रहने का समय नहीं था। ईगल के आरोह विभाग को ऊपर उठाकर कोलम्बिया तक ले जाना था तथा दोनो को संबद्ध करना था। इसी तैयारी में दोनो चद्र-यात्री अपने वाहन का निरीक्षण-परीक्षण कर रहे थे।

चंद्र-तल से ईगल की विदा-वेला

आखिर वह क्षण आ पहुंचा जबकि शात-सागर के उस शांत वातावरण से विदा होना था। एल्ड्रिन ने उडने से पूर्व अत्यंत शांत स्वर में उल्टी गिनती (काउंट डाउन) आरभ

की तथा नियत्रण केंद्र से अनुमाति मिलते ही ऊपर उठाने वाले इजन को दाग दिया

चाद की भूमि पर किसी इजन के दागे जाने की यह सर्वप्रथम घटना थी तथा इसके विषय म सशय बना ही हुआ था हालाकि आरोह उपविभाग का यह इजन सभी दृष्टियो से सपूर्ण बनाया गया था इतना सपूर्ण जितना कि मनुष्य बना सकता था। उसमे किसी भी प्रकार की गुंजाइश छोडने का तो प्रश्न ही नहीं था। फिर परीक्षणों मे यह इंजन सदा ही पूरा उतरा था पर अति ताप और अति शीत वाला चांद का परिवेश फिर भी अनिश्चितता का आवास था।

आरोह इजन बिलकुल सही ढंग से चला। अवरोह उपविभाग ने क्षेपण मच का कार्य किया जिसके घनिष्ठ संबध आरोह उपविभाग से पहले ही तोडे जा चुके थे। आर्मस्ट्राग और एल्ड्रिन का कक्ष बिना झटके के सीधा ऊपर की ओर उठा तथा 250 फीट की ऊचाई तक ऐसे उठता चला गया जैसे हेलीकॉप्टर उठता है। इसके बाद वह झुकने लगा तथा अंततः चंद्र-कक्षा में प्रवेश कर गया। इस प्रकार चाद की धरती से ऊपर उठने का कार्य पूर्व निर्धारित ढग से पूरा हो गया पर पृथ्वी से उठ जाना ही पर्याप्त नही था। असली समस्या यह थी कि ईगल को उसी कक्षा मे लाया जाए जिसमे कोलम्बिया घूम रहा था।

आरभ में ईगल एक बिंदु जैसा प्रकट हुआ जैसे कि कोई मच्छर उड रहा हो। उस पर चमकने वाली रोशनी कोलम्बिया के लिए यह संकेत थी कि ईगल उडा आ रहा है। यह आधा चंद्र-कक्ष ज्यों-ज्यो निकट आता गया, इसका आकार बढ़ता गया तथा अंत में यह अपने पूरे (वास्तव में आधे, क्योंकि आधा उपविभाग तो चंद्र-तल पर ही पडा रह गया था) रूप में प्रकट हुआ।

अब उन अनेक मार्ग संशोधनो की बारी थी जिनके परिणामस्वरूप दोनों यान एक-दूसरे से चंद फीट के ही फासले पर रह गए।

कोलम्बिया से पुनः मिलन

दोनो यान बहुत करीब आ गए थे पर इसी समय ईगल कुछ क्रुद्ध-सा प्रतीत हुआ और विपरीत चेष्टाएं करने लगा जिसके कारण दोनों यानो को थोड़ा पीछे हटना पडा। अब दोनों ही यानों को स्वतः चालित यत्रों पर छोड़ दिया गया तथा अंततः दोनो का पुनः मिलन हो गया।

अब चंद्र-यात्रियों के लिए पृथ्वी की ओर प्रस्थान करने से पूर्व एक कार्य और रह गया था और वह था उसी पिचकने वाली सुरग मे से होकर स्वयं मुख्य यान मे आना तथा आवश्यक सामान भी लाना जिसमें कि अनमोल चांद के नमूने भी शामिल थे। लेकिन इससे पहले उन्होंने अपने वस्त्रों तथा सभी सामान की झाड़-पोंछ की ताकि यदि चांद पर कोई जीवाणु हो भी तो वह किसी प्रकार पृथ्वी पर न आ जाए, यद्यपि चांद पर जीवन की सत्ता की संभावना सर्वथा नगण्य थी।

पिचकने वाली सुरंग में दबाव पैदा करके दोनों यात्री अपने कीमती सामान सहित

मुख्य यान मे लौट आए। मुख्य यान में पुनः प्रवेश करते समय आर्मस्ट्रांग ने कहा—

'बैठने का स्थान पा लेना बड़ा अच्छा लगता है।' फिर अकेले मित्र कॉलिन्स ने कहा, 'एकाकीपन की समाप्ति अच्छी लगती है।'

उसके थोड़े समय बाद ही ईगल को स्वतन्त्र रूप से उड़ने के लिए एक अन्य ही परिक्रमा-पथ पर छोड़ दिया गया। यह आधुनिक अश्वमेध जो अपोलो-11 की उडान के साथ आरंभ किया गया था, एक बड़े लंबे क्रम मे से गुजर रहा था। उस विशाल अश्व का एक अंग चंद्र-तल पर रह गया था। (तीन अंग उड़ते समय ही स्वाहा हो चुके थे) तथा अब दूसरा अंग चांद के निकट ही छोड़ दिया गया था। अब तो उक्त अश्व को ले-देकर दो विभाग रह गए थे—आदेश-कक्ष और सेवा-कक्ष। इन्हीं दोनों के जुड़े हुए रूप का नाम मुख्य यान था।

अब अपनी पृथ्वी पर लौटने की तैयारी हो रही थी। जिस समय कोलम्बिया इकतीसवीं परिक्रमा कर रहा था तो कल-पुर्जों की जांच-पड़ताल जारी थी।

घर की ओर

वापसी यात्रा 22 जुलाई, 1969 को आरम्भ हुई। पहले की भांति चांद के पीछे की ओर जाकर 2½ मिनट तक रॉकेट इंजन को दागा गया। इसका फल यह हुआ कि यान की गति, 9,500 किलोमीटर प्रति घंटा हो गई जो कि चांद की गुरुत्वाकर्षण को भेदकर बाहर निकलने के लिए अनिवार्य थी।

लौटते समय सबसे पहला आयोजन तो नींद पूरी करने का किया गया। वास्तव में आर्मस्ट्रांग और एल्ड्रिन काफी उनींदे और थके हुए थे। उन्हें कार्य बहुत अधिक करना पड़ा था और नींद वे ले नहीं सके थे। अतः वे दोनो तो लौटते समय ऐसे पड़कर सोए जैसे पुराने ज़माने में सौदागर घोड़े बेचकर सोया करते थे।

अगले दिन अर्थात् 23 जुलाई को आदेश-कक्ष से टेलीविज़न चित्र भेजे गए। अपोलो-11 द्वारा भेजी गई यह अंतिम चित्र-शृंखला थी जिसके साथ तीन यात्रियों ने उक्त ऐतिहासिक उड़ान के विषय मे अपने-अपने विचार व्यक्त किए।

आर्मस्ट्रांग ने कहा, 'सौ वर्ष पूर्व जुल्स वर्न ने चंद्र-यात्रा के विषय में एक पुस्तक लिखी थी। उसका अंतरिक्ष यान—कोलम्बिया फ्लोरिडा से उड़ा था तथा चांद तक की यात्रा पूरी करके प्रशांत महासागर में उतरा था। अब जबकि आधुनिक कोलम्बिया कल प्रशांत महासागर मे उतरने वाला है, अंतरिक्ष-यात्रियों के विचारों से आप लोगों को परिचित कराना उचित ही लगता है। इस उड़ान का उत्तरदायित्व प्रथम तो इतिहास पर है और दूसरे उन महान् वैज्ञानिकों पर जो इस घटना से पूर्व हुए।'

महान् उपलब्धि पर चंद्र-यात्रियों के विचार

एल्ड्रिन ने भी अपने विचार व्यक्त किए, 'पिछले दो-तीन दिनो मे इस अंतरिक्ष-यान में जो घटनाएं घटित हुई हैं, उन पर विचार-विमर्श करते हुए हम लोग इस

निष्कर्ष पर पहुचे है कि यह तीन व्यक्तियों की चंद्र-यात्रा से अधिक बड़ी बात थी। एक राष्ट्र के प्रयत्नो मे तो यह कही अधिक बड़ी बात नही है। हम लोग अनुभव करते हैं कि यह मानवता के अज्ञात के अन्वेषण के अतृप्त कौतूहल का प्रतीक है।'

कॉलिन्स ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा, 'सम्भव है हमारी यह चंद्र-यात्रा आप लोगो को सीधी व सरल प्रतीत हुइ हो पर मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हू कि मामला ऐसा नही था। शनि-5 प्रक्षेपक, जिसने हमे कक्षा मे पहुंचाया, अविश्वसनीय रूप से जटिल सयत्र है, जिसके प्रत्येक पुर्जे ने अपना कार्य पूरी तरह निभाया।'

वापसी यात्रा मे टेलीविज़न-चित्र-शृंखला के अतिरिक्त और कोई उल्लेखनीय घटना नही हुई। अलबत्ता जहा इन लोगो को 24 जुलाई को उतरना था, वहा जबरदस्त हलचल मची हुई थी। अंतरिक्ष-नायक लक्ष्य-पूर्ति के बाद अपने घर वापस आ रहे थे, इसलिए उनका अभूतपूर्व अभिनदन होना स्वाभाविक ही था।

समुद्र-संतरण के स्थान पर जबरदस्त हलचल का एकमात्र कारण यही नही था बल्कि यह भी था कि जबकि अपोलो-11 की वापसी यात्रा निर्दोष तथा घटना-रहित थी, उनके उतरने के स्थान पर मौसम ने विपरीत रूप धारण कर लिया था। लगता ऐसा था जैसे समुद्र भी उनकी विजय पर खुश था तथा उनकी गर्म जोशी से अगवानी करना चाहता था। हवा अलग आनद से नाच रही थी जिसकी प्रतियोगिता नाचने वाली समुद्री लहरों से थी।

प्रकृति का यह उल्लसित रूप अपने आप में सुदर प्रतीत हो सकता था पर पाच लाख मील की यात्रा पूरी करके लौटने वाले विजेताओं के पक्ष किसी भी दृष्टि से अनुकूल नही था। इसीलिए चारों ओर भगदड़ मची हुई थी तथा जल्दी-जल्दी म अतरिक्ष यात्रियो की उतरने की योजना मे रद्दो-बदल की जा रही थी।

अतरिक्ष यात्रियों को सकुशल उतारने वाले विमान-वाहक हॉर्नेट को सतो-रात पूर्व-निर्धारित स्थल से नवीन स्थल की ओर दौड़ाया गया हालांकि पानी तब भी शात नही था। प्रशात महासागर पर उषा उतर रही थी मानों विजय अंतरिक्ष यात्रियो के स्वागत के लिए उपस्थित हो रही हो।

उधर पृथ्वी के वातावरण में प्रवेश करने से पूर्व सेवा-कक्ष तथा उसके निर्भय योग्य रॉकेट इंजन को भी अंतरिक्ष में ही छोड़ दिया गया जिसके कारण मात्र आदेश-कक्ष ही शेष रह गया जिसको सागर में सतरण करना था।

24,000 मील प्रति घटे की गति से उतरते हुए अपोलो-11 ने दो डिग्री वाले परिचित कोण में से होकर वातावरण में प्रवेश किया। यद्यपि घर्षण के कारण आदेश-कक्ष आग का गोला बन रहा था क्योंकि वातावरण में 5,000 डिग्री फरिनहाइट उष्णता थी, फिर भी प्रबन्ध इतना सुदृढ़ था कि यान की गति घटती चली गई और कक्ष मे बैठे यात्रियो को उस उष्णता का कोई परिचय नहीं मिला।

भाव-भीनी अगवानी

ठीक समय पर तीनों विशाल छतरियां खुल गईं तथा अपोलो-11 का आदेश-कक्ष अपने गंतव्य की ओर उतरने लगा। उधर विमान-वाहक हॉर्नेट पर अन्य लोगों के अतिरिक्त अमरीका के राष्ट्रपति निक्सन विजयी नायकों की भाव-भीनी अगवानी के लिए उपस्थित थे।

'वह रहा ! वह रहा !' की ध्वनि के साथ ही सितारे जैसा अपोलो-11 प्रशांत महासागर के बादली आकाश में चमक उठा।

अपोलो-11 हॉर्नेट से 10 मील की दूरी पर उतरा। साथ ही अंतरिक्ष यात्रियों ने सूचना दी, 'हम तीनों बिल्कुल ठीक हैं।'

अपोलो यान के पानी में उतरते ही हेलीकॉप्टर उसके ऊपर मंडराने लगे। क्योंकि तरंगें बहुत तेज थीं। इसलिए, गोताखोरों ने यान को चक्र डालकर स्थिर कर दिया।

बात यहीं समाप्त होने वाली नहीं थी। अपोलो-11 के यात्री सीधे चंद्र तल से चले आ रहे थे। हालांकि पूर्ण सावधानी बरती गई थी फिर भी यह आशंका अभी भी बनी हुई थी कि कहीं कोई जीवाणु अथवा विषाणु उनके साथ हमारी पृथ्वी पर न चला आए तथा हमारी दुनिया तबाह कर दे।

इस खतरे से बचने के लिए पहले ही व्यापक उपाय किए हुए थे। समानव-अंतरिक्ष-यात्रा-केंद्र ह्यूस्टन में एक इमारत विशेष रूप से इसीलिए निर्मित की गई थी कि उसमें चंद्र यात्रियों को 21 दिनों की क्वारण्टीन के तहत रखा जाए तथा पूरी जांच-पड़ताल के बाद ही उन्हें बाहर आने दिया जाए। इसलिए जिस समय अंतरिक्ष यात्री अपने यान में ही थे तो उन्हें औषधि-छिड़की पोशाकें दी गईं। जिन्हें पहनकर वे आदेश-कक्ष से बाहर निकल सकते थे।

जिस समय तीनों विजेताओं को लेकर हेलीकॉप्टर हॉर्नेट के डेक पर उतरा तो लाखों लोग टेलीविजन पर यह दृश्य देख रहे थे।

इन तीनों के लिए हॉर्नेट पर ही तमाम सुविधाओं वाला एक कक्ष तैयार किया हुआ था जिसमें उनको लगभग तीन दिन व्यतीत करने थे।

वह अलगाव-कक्ष चलता-फिरता था। जिस समय चंद्र-यात्रियों ने नीले रंग की पृथकत्व-पोशाकों में उस अस्थिर कक्ष में प्रवेश किया तो वहां एक डॉक्टर तथा चंद वैज्ञानिक पहले से ही मौजूद थे। ये वे लोग थे जिनको चंद्र-यात्रियों के साथ 21 दिनों तक क्वारण्टीन में ही रहना था।

चंद्र-यात्रियों से समुद्र-संतरण के उपरांत भी राष्ट्रपति निक्सन को उनके साथ वार्तालाप करने के लिए लगभग एक घंटे तक प्रतीक्षा करनी पड़ी थी। अब राष्ट्रपति को पारदर्शक खिड़की में से तीनों चंद्र-यात्री नजर आ रहे थे जो कि स्वस्थ और प्रसन्न थे।

राष्ट्रपति उनसे अनेक विषयों पर विचार-विमर्श करते रहे : अचानक उनको ख्याल आया कि सबसे पहले तो उन्हें उनके स्वास्थ्य के विषय में पूछना चाहिए था।

उन्होने पूछा, आप लोग वैसा ही अच्छा अनुभव भी कर रहे है न जैसे कि दिखाइ पड रहे हैं ?'

इस पर आर्मस्ट्रांग ने उत्तर दिया, 'मिस्टर प्रेजीडेण्ट, हम लोग स्वय को सर्वथा स्वस्थ अनुभव कर रहे हैं।'

तब राष्ट्रपति ने सराहना के स्वर में कहा, 'जब से ससार की सृष्टि हुई, उसके इतिहास मे यह महानतम सप्ताह है। आप लोगो की उपलब्धि के परिणामस्वरूप आज के समान सन्निकट यह संसार कभी नही रहा और इसके लिए हम लोग आपके आभारी हैं।'

इसके बाद अपोलो-11 की शत-प्रतिशत सफल उडान तथा अभूतपूर्व उपलब्धि का नासा के समानव-अतरिक्ष-उड़ान के अध्यक्ष डॉ. म्यूलर ने एक संवाददाता सम्मेलन मे निम्नलिखित शब्दो मे निष्कर्ष अभिव्यक्त किया :—

महानतम निर्णायक बिंदु पर खड़ी मानवता

'आज हम निस्संदेह इस ग्रह के इतिहास में महानतम निर्णायक बिंदु पर खड़े है। 4 अरब वर्ष पूर्व पृथ्वी का निर्माण हुआ था। 40 करोड वर्ष पूर्व जीवन पृथ्वी पर जन्मा। 40 लाख वर्ष पूर्व मनुष्य पृथ्वी पर प्रकट हुआ। एक सौ वर्ष पूर्व वह तकनीकी क्राति आरभ हुई जिसका परिणाम आज का दिन है। वे सभी घटनाएं महत्त्वपूर्ण थी तो भी उनमें से एक में भी मनुष्य ने जान-बूझकर उस मार्ग पर चलने का निर्णय नहीं किया जिससे कि मानव मात्र का भविष्य बदले।'

डॉक्टर जॉर्ज म्यूलर ने आगे कहा, 'वह अवसर और चुनौती आज हमारे सामने है। क्योंकि आज ह्यूस्टन के समय के अनुसार 11.49 पर प्रशात महासागर के मध्य हमने निर्णयात्मक रूप से यह सिद्ध कर दिया है कि अब मनुष्य उस ग्रह की सीमाओ से बधा हुआ नहीं है, जिस पर वह इतने लबे अर्से तक रहा है।'

विमान-वाहक हर्नेट को हवाई द्वीप लाया गया जहां से उन्हें हवाई जहाज़ द्वारा चद्र-सत्कार-विज्ञानशाला में पहुंचाया गया, जहां वे लोग 10 अगस्त तक 21 दिन की क्वारण्टीन की अवधि पूर्ण करते रहे।

इसके बाद 13 अगस्त, 1969 को इन तीनों चंद्र-यात्रियो ने न्यूयार्क, शिकागो तथा लॉस एंजल्स का दौरा किया जहां इन्हें राष्ट्रीय उत्सवों मे स्वागत-सत्कार से विभूषित किया गया। इसके बाद चद्र-मानवों ने विश्व के देशों का भ्रमण किया। इस सद्भावना भ्रमण में तीनों चंद्र-यात्रियों की पत्निया उनके साथ थीं।

इस प्रकार एक आधुनिक अश्वमेध अर्थात् अपोलो-11 का अभियान पूर्ण हुआ। हालाकि अश्वमेध और अपोलो-11 की प्रक्रियाओं में जमीन-आसमान का अंतर रहा, तो भी परिणाम समान ही निकला।

यों यदि व्यापक दृष्टि से देखा जाए तो तीनों चंद्र-मानवो के सकुशल अपने घर लौट आने से ही यह अभियान संपूर्ण नहीं हुआ। प्रश्न यह है कि इस अभियान

का मुख्य लक्ष्य क्या था क्या यह कि तीन व्यक्ति उडते हुए वहा पहुचे हडबडी में जो पत्थर मिट्टी हाथ लगे उसे उठाए और पत्ता तोड वापस भागे अथवा यह कि वे व्यक्ति मात्र साधन मात्र थे तथा साध्य थे वे चद्र-नमूने जिनके गर्भ में अनेक महत्त्वपूण प्रश्नों के उत्तर छुपे हुए है ?

समापन नहीं–आरंभ !

चाद के विषय में आरभ से ही कुछ ऐसे प्रश्न चले आ रहे है जिनको पहले कौतूहल के धरातल पर स्वीकार किया जाता रहा तथा बाद मे वे चितन का विषय बन गए। उनमे से कुछ प्रश्न इस प्रकार है (1) चंद्रमा की उत्पत्ति कैसे हुई ? (2) चंद्रमा की आयु कितनी है ? (3) चंद्रमा उष्ण या शीतल ? (4) क्या वहां जीवन है ? (5) क्या वहा पानी है ? (6) क्या चद्रमा पर वातावरण है ? (7) चंद्रमा पर 'सागरों' का निर्माण कैसे हुआ ? (8) चद्रमा पर अपना प्रकाश भी है क्या ? (9) वहां विवरों का निर्माण कैसे हुआ ? (10) क्या चद्र-भूमि पर बस्तियां बसाई जा सकती है ? तथा और ऐसे ही अनेक प्रश्न जिनके उत्तर मनुष्य की उत्तरोत्तर प्रगति से जुड़े हुए हैं।

यदि मनुष्य को और उन्नति करनी है तो चंद्र-विजय को समापन नही–आरभ मात्र माना जाएगा। यह आरंभ उस शृखला-बद्ध विकास का बनेगा जिसके अतर्गत नक्षत्रों की विजय आती है। यह पहली पैड़ी बनेगी उस सोपान की जिसकी अंतिम पैड़ी तक पहुचते-पहुंचते मनुष्य को यह याद रखना कठिन हो जाएगा कि वह कहां से चला था।

सभव है, एक दिन उसे अपने सौर-मंडल से आगे अपनी आकाश गगा के नक्शे में हमारे इस 'मामूली' से ग्रह पृथ्वी को ढूढ़ना पड़े तथा पुराण-कथाओं के मलवे में उस इतिहास को तलाशना पड़े जिसका निर्माण आर्मस्ट्राग, एल्ड्रिन और कॉलिन्स नामक तीन इतिहास-पुरुषो ने किया।

16. चद्रमा प्राचीन, नवीन तथा नवीनतम

जिस समय हम अपोलो-11 की चमत्कृत करने और चौंधियाने वाली उपलब्धियों एव सिद्धियों के अजस्र प्रकाश मे सराबोर हुए बैठे हैं, उस समय लाखों वर्ष गहरी उस बुनियाद का विस्मृत हो जाना स्वाभाविक है, जिस पर चंद्र-विजय का चौंका देने वाला भवन निर्मित हुआ है। संभव है, इन क्षणों में प्रागैतिहासिक युग की धारणाएं और उनका उल्लेख भ्रामक व अविश्वसनीय लगे लेकिन यह एक ठोस सत्य है कि वैदिक मानव ने (तथा उससे पूर्व के मानव ने भी) ब्रह्मांड एवं उसके अनेक पक्षों पर विचार किया था।

नक्षत्र-लोक के विषय मे हमारे ज्ञान मे किस प्रकार क्रमिक विकास हुआ है इसके उदाहरणों की कमी नहीं है। यदि कृत्तिका-नक्षत्र-समूह की सहायता से ही इस बात को समझने की चेष्टा की जाए तो 'तैत्तिरीय ब्राह्मण' में इससे सम्बद्ध उल्लेख को टटोला जा सकता है। उक्त ग्रथ के अनुसार कृत्तिका-नक्षत्र-समूह में मात्र सात तारे थे। वे ही सात तारे गैलीलियो के अनगढ़ टेलिस्कोप में 36 बन गए। होते-होते उक्त नक्षत्र-पुज में जितने तारे ढूंढ़ लिये गए उनकी सख्या आज 200 से भी अधिक है।

यही हाल 'अंतरिक्ष' का है। ऋग्वेद की एक ऋचा के अनुसार 'विराट् पुरुष की नाभि से अंतरिक्ष, मस्तक से द्यो और चरणों से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई'—

'नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णोदयौः समवर्तत पदभ्याम् भूमिः'

गुणाकर मुले के अनुसार 'तैत्तिरीय संहिता मे एक स्थान पर कहा गया है कि अग्नि का निवास पृथ्वी पर है, वायु अंतरिक्ष के आश्रय मे रहता है, सूर्य द्युलोक में परिक्रमा करता है और चंद्रमा नक्षत्र-मंडल में सचार करता है।'

आज 'अंतरिक्ष' के विषय में यह मान्यता शेष नहीं है। अब तो अंतरिक्ष 'स्पेस' (Space) का पर्याय है तथा ब्रह्माण्ड के सपूर्ण भौतिक पिंड अतरिक्ष के ही अंतगत आते हैं तथा आज ऐसे आकाश की कल्पना भी करना कठिन है जहा पदार्थहीनता हो, हालांकि हम एक जमाने तक आकाश को शून्य कहते तथा मानते चले आए हैं।

संस्कृत साहित्य में चंद्रमा

चद्रमा के विषय में भी वैदिक मानव की अपनी जानकारी और मान्यता रही है इसका कारण शायद यह है कि (सूर्य के बाद) चांद ही एक ऐसा ग्रह (उपग्रह) रहा है जिसे मनुष्य अपनी आंखों से देख सकता है। इसका मुख उज्ज्वल और आकर्षक तो है ही, इसके अतिरिक्त यह इतना निकट भी है कि इसके विषय में कुछ बातें अपेक्षाकृत अधिक सरलता से जानी जा सकती हैं। इसकी ज्योति शीतल एवं आनंद दायिनी है। इसकी ओर टकटकी बांधकर घंटों देखा जा सकता है। इसके घटने-बढ़ने की प्रक्रिया में न केवल 'मास' का स्थूल बोध होता है अपितु जीवन के दार्शनिक पहलू की ओर भी बरबस ध्यान जाता है। दूज से लेकर पूर्णिमा तक बढ़ते तथा इसके उपरांत क्रमशः घटकर अमावस को अदृश्य हो जाने एवं पुन: शैशव रूप में प्रकट होने के पीछे मानव ने, हो सकता है, अपने ही जीवन का आरोहण-अवरोहण देखा हो और पुनर्जन्म की कल्पना यहीं से की हो। (ऋ. सं. 10 । 92 । 12) में चांद का एक पर्याय 'मास' भी आया है : **'सूर्य मासा विचरन्ता दिवि'**। (अर्थात् सूर्य और चांद आकाश में विचरते हैं।) बहरहाल आदि काल से चांद के प्रति कौतूहलमय आकर्षण रहा है तथा उक्त कौतूहल के शमन के निमित्त चांद के विषय में सतत रूप से विचार होता रहा है।

संस्कृत साहित्य में सर्वप्रथम स्थान वेदों का है। चांद की उत्पत्ति का वर्णन यजुर्वेद में दैविक दृष्टि से किया गया है :

'चंद्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।'

शुक्ल यजु. संहिता 31/12

अर्थात् चंद्रमा (ब्रह्म के) मन से उत्पन्न हुआ और सूर्य की उत्पत्ति नेत्रों से हुई।

ऋग्वेद में चांद को एक स्वतंत्र देवता तथा इंद्र का मित्र माना गया है। सुख-संपत्ति-वृद्धि, शत्रु-नाश, ओषधि-विकास तथा सोमरस की वृद्धि के निमित्त अनेक स्तुतियां सोम (चांद) तथा इंद्र की की गई हैं। तैत्तिरीय संहिता (3 । 4 । 7 । 1) में चंद्रमा को सूर्य रश्मि द्वारा प्रकाश प्राप्त करने वाला कहा गया है :

'सूर्यरश्मिश्चंद्रमा गन्धर्व :।'

'चंद्र पर सोमरस के 3 सरोवर होने की सूचना दी गई है। (ऋग्वेद 4-29-7)। इसी प्रकार सोम को तृपृष्ठ कहा गया है (8-7-10)। समुद्रों का राजा भी माना है, परमाणु-बिंदु ध्रुव लोक से और अंतरिक्ष से पृथ्वी के शिखर पर पड़ते हैं (9-2-9)। इस तरह की कल्पनाओं से लगता है कि पृथ्वी के जलवर्षण से चंद्र के वातावरण का गहरा संबंध होना चाहिए।'

—सूर्यनारायण व्यास

गीता में चंद्रमा को विराट-पुरुष का नेत्र माना गया है : **'अनंत बाहुं शशिसूर्यनेत्रं।'** अर्थात् अनंत भुजाओं और चांद-सूर्य के नेत्रों वाला।

उपनिषदों में भी चंद्रमा का वर्णन भरा पड़ा है। मुण्डक उपनिषद् में लिखा है—

तस्मादग्नि समिधा यस्य सूय सोमरत्पर्जन्य ओषधय पृथिव्याम्

अर्थात् उस (परब्रह्म पुरुषोत्तम) स अग्नि उत्पन्न हुई जिसकी समिधा सूय हे। फिर अग्नि से चद्रमा, चद्रमा से मेघ और मेघ से पृथ्वी मे ओषधियां उत्पन्न हुई।

इस प्रकार चांद की उत्पत्ति सूर्य से मानी गई। (2-1-5)

एतरेय उपनिषद् मे यजुर्वेद के स्वर से स्वर मिलाकर कहा गया ह

'हृदयऽन्मतो मनसश्चंद्रमा निर्मिंधत।'

इसका अर्थ हुआ कि (उस विराट् पुरुष के) हृदय से मन और मन से चद्रमा प्रकट हुआ।

प्रश्नोपनिषद् में चंद्रमा क प्रभाव का वर्णन है। उसमें सूर्य को प्राण ओर चद्रमा को रयि (स्थूल भूत समुदाय) कहा गया है · **'आदित्यो हवै प्राणो रयिदेव चंद्रमा।'**

(अर्थात् सूर्य ही प्राण है और चद्रमा रयि।) ऐसा कहने का कारण यह है कि महर्षि पिप्लाद के अनुसार प्राणी-मात्र का शारीरिक पोषण चद्रमा के द्वारा ही होता है।

उपनिषदो के अतिरिक्त पुराणों में भी सृष्टि-क्रम की विभिन्न व्याख्याए दी गई हैं। भागवत पुराण मे चद्रमा की स्थिति सूर्य से ऊपर बतलाई गई है ·

'एवं चंद्रमा अर्क गभस्तिभ्य उपरिष्टाल्लक्ष योजनत।'

अर्थात् चद्रमा सूर्य से एक लाख योजन (पांच लाख मील) ऊपर स्थित है।

ऋ. सं. (10। 85। 2) में भी कहा गया है कि नक्षत्रों में सोम रखा है

'अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः।'

कहना न होगा कि नक्षत्रों की स्थिति द्युलोक से ऊपर मानी गई हे और सूर्य का आक्रमण द्युलोक मे स्वीकार किया गया है।

किंतु इस अल्पज्ञता का निराकरण बहुत पहले ही हो गया था। भास्कराचार्य ने 'सिद्धात शिरोमणि' (गोलाध्याय) में लिखा है–**'सूर्यादधः स्वस्य विधोरधस्थमर्द्धनृ दृश्यं सकलासितंस्यात्'** अर्थात् सूर्य से नीचे स्थित चंद्रमा का आधा निचला भाग पूरी तरह काला दिखाई देता है।

भारतीय ज्योतिर्विदों की वैज्ञानिक दृष्टि

यद्यपि भास्कराचार्य यहां अमावस के दिन चांद का वर्णन कर रहे हे परतु उसमें चाद की स्थिति का उल्लेख स्वत· ही आ गया है।

चांद की उत्पत्ति के विषय में लिंग पुराण में चांद को अत्रि मुनि का पुत्र बतलाया गया है। ब्रह्मांड पुराण में चंद्र को जलमय कहा गया है। हरिवंशपुराण में चंद्रमा के कलक का कारण निश्चित किया गया है। लिखा है कि दर्पण में मुख की भांति चद्र मे पृथ्वी का प्रतिबिंब लक्षित होता है। कालिका पुराण मे चंद्र-कलाओं के घटने-बढने का कारण स्पष्ट करते हुए बतलाया गया है कि दक्ष के शाप से चाद की कलाए क्रमश· क्षीण होती हैं (तैत्तिरीय सहिता–2। 4। 14–में कलाएं क्षीण होने का कारण

सूय द्वारा चाद का प्राशन बतलाया गया है आदित्य चद्रमा को तजस्वी करते है तथा पूर्ण हो जान के बाद उसका प्राशन करत हैं') 'यमादित्या अंशुमाप्याययन्ति यमक्षितम क्षितय- पिवन्ति'। स्कंद पुराण के अनुसार ब्रह्मा के आदेश स शापदाता दक्ष ने 15 कला-क्षय के पश्चात् पुनः उनके कमशः बढ़ने का नियम किया।

पर भारतीय ज्योतिर्विद् पुराणों के ऊहा-पोह मे आस्था नही रखते। उनके विचार से चंद्र एक ग्रह ह (वास्तव मे उपग्रह है, क्योंकि यह पृथ्वी की परिकमा करता है जो कि स्वयं एक ग्रह है) जिसका अपना आलोक नहीं है। इस विषय में भास्कराचार्य लिखते हैं—

'तरणिकिरण संगादेषपीयूषपिण्डो दिनकर दिशि चन्द्रश्चन्द्रिकाभिश्चकास्ति।'

—गोलाध्याय

अथात् अमृत-पिंड चंद्र सूर्य की किरण के संयोग से पूर्व दिशा मे चादनी से चमकता है।

प्राचीन ज्योतिर्विद वराहमिहिर, श्रीपत, ज्ञान राज आदि चांद को जलमय मानते है। सूर्य की किरण प्रतिफलित होने का कारण चाद में जल की स्थिति ही है।

चंद्रमा पर पितृगण रहते हैं—इस विश्वास के समानांतर ही प्राचीन-कालीन विद्वान् ने इस जानकारी को भी प्रकट किया है कि चाद का दिन हमारे पक्ष के बराबर होता है।

सकृदुद्गतमब्दार्धं पश्यन्त्यर्कं सुरासुराः।।
पितरः शशिगाः पक्षं स्वदिनं च नराभुवि।।

—सूर्य सिद्धांत

देवता और असुर लोग जैसे एक बार उदय हुए सूर्य को 6 मास पर्यन्त देखते है। पितृगण चद्रास्थित होने के कारण पक्ष भर तक और पृथ्वी के लोग सारे दिन सूर्य को देखते हैं।

भारतीय खगोल शास्त्रियों का मत है कि दूसरे ग्रहों की भांति चंद्रमा भी पृथ्वी को समांतराल में रखकर लगातार भ्रमण करता है। इसकी अपनी कक्षा है। 'सूर्य सिद्धांत' मे इस तथ्य की ओर संकेत है कि दूर स्थित अन्योन्याश्रित ग्रहगण अपनी-अपनी कक्षाओं में परिभ्रमण करते हैं :

भावभावाय लोकानां कल्पनेयं प्रदर्शिता।
स्वमार्गगाः प्रयान्त्येते दूरमन्योन्यमाश्रिताः।।

सूर्य सिद्धांत के अनुसार सूर्य की अपेक्षा चंद्र की गति अधिक है। (वास्तव म चंद्र मे संबद्ध सूर्य की कोई गति नहीं है, न अपने किसी और ग्रह-उपग्रह से सबद्ध उसकी कोई गति है। वैसे सूर्य की दो गतियां हैं . प्रथम तो वह जिसमें वह अपनी धुरी पर ही घूमता है और दूसरी वह जिसमे वह अपने 9 ग्रहों, 31 उपग्रहों आदि सहित आकाशगंगा नामक नीहारिका की परिक्रमा करता है किंतु यह परिक्रमा संपूर्ण सौर मंडल करता है—अकेला सूर्य नहीं) क्योंकि वह सूर्य की अपेक्षा छोटा है। चांद

सूर्य से जितना अधिक दूर जाता है सूर्य की किरण उसमे उतनी ही अधिक प्रतिफलित होती हैं अमावस के दिन चद्र-सूर्य के सम सत्र में अवस्थित होने के कारण सूर्य की किरण प्रतिफलित नहीं होती।

चद्रमा की चाल अधिक होने का एक कारण यह भी बतलाया गया है कि वह पृथ्वी के अधिक निकट है। जिस कक्षा में यह पृथ्वी की परिक्रमा करता है उसका परिमाण 32, 400 योजन (लगभग 1,62, 000 मील) बतलाया गया है। हमारे यहा पृथ्वी से चंद्रमा की दूरी सबसे पहले आर्यभट्ट प्रथम (जन्म शके 398) ने निकाली थी।

भारतीय खगोल शास्त्र मे 'ग्रहण' पर भी पर्याप्त विचार किया गया है। ग्रहण के विषय मे लिखा है कि सूर्य का छादक नीचे रहने वाले चंद्रमा पर बादल के समान होता है। पृथ्वी की छाया में चंद्रमा जो पूर्वमुख बैठता है इससे चद्र की छादक वह छाया होती है :

छादको भास्करस्येन्दुरधःस्थे घनवद्भवेत्।
भूच्छायां पाङ्.मुखश्चन्द्रो विश्त्यस्य भवेदसो।।

—सूर्य-सिद्धात

वास्तव में भारतीय दृष्टिकोण आरंभ से ही आध्यात्मिक रहा है : अन' विद्वानो ने चद्रमा के भौतिक पक्ष को आमतौर पर नजरअदाज़ किया है। भौतिक पक्ष पर उस समय के अनुसार जितना विचार हुआ भी है, उसी को ज्ञान की चरम सीमा मानकर सतोष कर लिया गया क्योंकि यह मार्ग बडा सुविधाजनक था कि ऋषि-मुनियों पर दिव्य दृष्टि का आरोप कर लिया जाए तथा उनके अनुसंधानों को अंतिम मानकर सुख की नींद सोया जाए। इस विषय में स्वर्गीय शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने बिल्कुल ठीक कहा है कि 'हमारे प्राचीन ग्रंथ अपौरुषेय हैं और सर्वांगपूर्ण हैं, यह विश्वास ज्योतिष शास्त्र की उन्नति के लिए बड़ा घातक सिद्ध हुआ।'

ज्योतिष और चंद्रमा

हमारे यहां चाद की उपयोगिता ज्योतिष के क्षेत्र मे अधिक काम की सिद्ध की गई। 'फलित ज्योतिष में चंद्रमा वायुकोण का अधिपति, स्त्री ग्रह, सत्त्वगुण, लवण का अधीश्वर, वैश्य जाति, यजुर्वेदाधिष्ठाता और सूर्य तथा बुध का मित्र है।' कर्कट राशि (केकड़ा) चांद का क्षेत्र माना गया है।

वास्तव मे हमारे यहा चांद के प्रभावों का अध्ययन अधिक मनोयोग से किया गया। इस दिशा में बतलाया गया है कि चांद द्वारा पृथ्वी पर स्थित वायु और जल की गति बदलती है। ज्वार-भाटा आता है। पूर्णिमा और अमावस को वायु-परिवर्तन होता है। नाविक और भौगोलिक चांद की गति के अनुसार अक्षांतर निरूपित करते हैं। पागलपन से भी चांद को संबद्ध किया जाता है। तिथि विशेष को खाद्य विशेष

का भक्षण निषिद्ध है, राशि के साथ स्थान-भेद से जन्म, विवाहादि का शुभाशुभ फल निश्चित किया जाता है। वनस्पतियां तथा ओषधियां चांद के द्वारा रस से परिपूर्ण की जाती हैं। चंद्र-कलाओं के घटने-बढ़ने के अनुसार काम (sex) के क्षेत्र मे भी परिवर्तन की बात कही गई।

भारतीय दृष्टि से चाद की ओर केवल स्त्री-पुरुष ही आकर्षित नहीं रहते, पशु-पक्षी भी चाद के दीवाने देखे गए है। कुत्तों के विषय में यह प्रसिद्ध है कि वे चाद की ओर देख-देखकर भूंका करते हैं। चकोर का तो चांद से बहुत ही निकट का संबंध समझा जाता है तथा कहा जाता है कि चकोर चांद के विरह मे ही अंगारे खाता है। चकोरी जो बार-बार उडती है तो वह चांद तक ही पहुंचने की चेष्टा करती है।

चद्रमा के पौराणिक पक्ष पर जर्मन विद्वान् हीनरिख ज़िमर ने अपनी पुस्तक '*Myths and Symbols in Indian Art and Civilisation*' में विचार किया है। उसके अनुसार 'चांद जीवन-स्रोत है। यह जल का शासक है और यही जल संपूर्ण सृष्टि में सचरण करके समस्त प्राणियों का पालन-पोषण करता है।'

चांद दो दिनो मे सूर्य का एक मास और एक दिन में सूर्य का एक पक्ष भोगता है। जब चद्र मडल की कलाएं बढ़ती हैं तो देवताओ का दिन होता है और जब घटती है तो पितरो का दिन होता है। चद्रमा अन्नमय और अमृतमय माना गया है इसीलिए उसे जीवन का प्राण कहते हैं। चांद देव; पितर, मनुज, भूत, पशु, पक्षी, लता, गुल्म आदि को स्वस्थ-पुष्ट करने वाला कहा जाता है।

डॉ. शिवप्रसाद सिंह ने चंद्रमा के पर्यायवाची शब्दों पर विचार करते हुए लिखा है—'चंद्रमा या सोम तत्त्व की दार्शनिक व्याख्या में न जाकर हम उसके कुछ पर्यायवाची शब्दो पर विचार कर ले तो चंद्र तत्त्व का काफी स्पष्टीकरण हो जाएगा। अमरकोष में चंद्रमा के निम्नलिखित पर्याय दिए गए हैं। हिमांशु यानि शीतलता देने वाला, चंद्रमा अर्थात् जो आह्लाद का मानदण्ड हो। इंदु जो आर्द्र करे। विधु, जिससे ज्ञान प्रेरित हो। सुधांशु, जो अमृत किरणो वाला है। शुभ्रांशु, जो प्रकाशपूर्ण है। ओषधीष, जो वनस्पतियो का स्वामी हे। जैवातृक, वह जो जीवन देता है। सोम, वह है जो अमृत स्वरूप है या जो नित नूतन (सूयते जायते नवो नवो भवति) होता रहता है। कलानिधि, स्पष्टतः ही कलाओं की महत् राशि का नाम है। नक्षत्रेश, शब्द उपर्युक्त गुणो वाले नक्षत्र के लिए सहज ही अभिधेय है।'

किंतु चद्रमा के सबंध में भारतीय पक्ष का एक और भी मुखड़ा है : चांद के सबंध मे जो नवीनतम अन्वेषण-अनुसंधान हुए है तथा जो और भविष्य में हो सकते है, वे सभी हमारे शास्त्रों में सुरक्षित हैं। प्रश्न हमारे शास्त्रो के कथनो से आगे जाने का नहीं है, प्रश्न यह है कि जो चरम सत्य उनमे उद्घाटित किया जा चुका है, उसको समझने का आधार क्या है ? शायद वह आधार यह अतिशयोक्ति करने वालों के ही पास हो !

लेकिन चांद का एक अन्य चेहरा भी है जो पश्चिम ने देखा है। इस चेहरे का निश्चित निर्धारण तब आरंभ हो गया था जब सत्रहवीं शताब्दी के आरंभ में गैलिलियो ने अपना टेलिस्कोप आकाश की ओर उठाया था तथा बाद में अपनी पुस्तक में लिखा था—'मैं ईश्वर का आभारी हूं जिसने मुझे उन चमत्कारी वस्तुओं का प्रथम दर्शक बनाया जो कि अभी तक प्रकट नहीं हुई थीं। मैंने भली-भांति जान लिया है कि चांद पृथ्वी जैसा ही पिंड है।' इस चेहरे का पर्याप्त अनावरण अमानव और समानव उड़ानों से संभव हुआ।

चांद अथवा संपूर्ण सौर मंडल के पदार्थ की दृष्टि से अध्ययन करने का पश्चिम के पास कारण रहा है। यों पश्चिम ने भी पूर्व की भांति सृष्टि के दैविक रूप से आरंभ किया था तथा निश्चित ज्ञान के अभाव में चांद को तरह-तरह की कल्पनाओं से लाद दिया था। लगभग 2,000 वर्ष पूर्व यूनानी लेखक ल्यूसियन ने चांद का यह शब्द-चित्र प्रस्तुत किया था '

'अनेक दिनों से बवंडर उड़ रहा था। आंधी के करारे झोंके पानी को कोड़ों से पीट-पीटकर नभ-चुंबी तरंगों में उछाल रहे थे जिससे उनकी शिखाएं एक-दूसरे से टकराकर झाग को फाड़ रही थीं तथा फेन-खंडों को जबरदस्त फासलों पर फेंक रही थी मानो वे पक्षियों के पंखों के चिथड़े हों...हवा हल्की पड़ गई और भौंचक्के चालकों ने अपने समक्ष एक विशाल रजतद्वीप देखा जो कि नील नभ में तैर रहा था।

इस सर्वथा वृत्ताकार द्वीप पर अद्भुत प्राणी निवास करते थे। कुछ तो तीन सिरों वाले दैत्याकार पक्षियों पर सवार थे तथा वायु में ऊंचे उड़ रहे थे। दूसरे विशाल पिस्सुओं पर चढ़े हुए थे जो कि बादलों की ऊंचाई तक छलांगें लगा रहे थे. . .।'

पर यूरोप के मुनि-मनीषियों को ज्यों-ज्यों इस पदार्थमय जगत् के पीछे कुछ निश्चित एवं नियमित प्राकृतिक नियम नजर आने लगे, त्यों -त्यों वहां विज्ञान और धर्म में संघर्ष उजागर होता गया। बीसवीं सदी तक आते-आते तो वैज्ञानिकों ने प्रकृति का ढका ढोल खोल ही दिया और सिद्ध कर दिया कि मनुष्य अपने परिवेश को संयत करने में समर्थ है।

पश्चिम में विज्ञान यह मानकर चला है कि सृष्टि भले ही भगवान की इच्छा का परिणाम हो पर उसके कुछ नियामक नियम अवश्य हैं तथा नीहारिकाएं, सौर-मंडल, ग्रह-उपग्रह आदि उन्हीं नियमों के अंतर्गत क्रियारत हैं।

पश्चिम ने चांद को उपग्रह माना है। यद्यपि वहां एक ऐसा मत भी रहा है कि कभी चांद ग्रह ही था परंतु छोटा होने के कारण पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति द्वारा अपनी ओर खींच लिया गया।

हमारा चांद वृहस्पति के तीन चंद्रमाओं से छोटा है और चौथे के बराबर है। शनि और नेपच्यून का भी एक-एक चांद हमारे चांद से बड़ा है। हमारे चांद का

व्यास 2,160 मील है जो कि पृथ्वी के व्यास का लगभग ¼ है पृथ्वी से इसकी दूरी 2,38,857 मील है पर अन्य ग्रहों की भांति इसका परिक्रमा-पथ भी अंडवृत्ताकार होने के कारण पृथ्वी से इसकी अधिक-से-अधिक दूरी 2,53,000 मील तथा कम-से-कम 2,20,000 मील है। चांद 27 दिन, 7 घण्टे, 41 मिनट में एक चक्र पूरा करता है। ऐसा भी स्वीकार किया जाता है कि पृथ्वी जिन तत्त्वों से बनी हुई है, चांद उससे अधिक हल्के तत्त्वों से बना हुआ है। हमें सदा चांद का एक ही पक्ष दिखाई देता है, (महाभारत—शांति पर्व में लिखा है 'यथा हिमवतः पार्श्वपृष्ठं चन्द्रमसो यथा न दृष्टपूर्व मनुजैः—अर्थात् मनुष्य ने चांद का पिछला पक्ष कभी नहीं देखा) इसका यह कारण है कि पृथ्वी की प्रबल आकर्षण-शक्ति के कारण चांद पृथ्वी का परिभ्रमण और अपनी धुरी पर चक्र एक ही समयावधि में लगाता है। इसलिए चांद का घूमना ऐसा ही समझना चाहिए जैसे किसी बालक का चक्कर काटते हाथी-घोड़ो वाले हिण्डोले पर सवार होकर घूमना। प्रतीत तो ऐसा ही होता है कि हमें चांद का 50%भाग ही नजर आता है और एक जमाने तक ऐसा समझा भी गया कि चांद का एक ही गोलार्द्ध है लेकिन सच्चाई यह है कि हमें कुल मिलाकर चांद का 60% भाग दिखाई पड़ जाता है—केवल 40% ही मानव-दृष्टि से ओझल रहता है।

'चांद की भूमि की विभिन्न आकृतियों का नामकरण 1651 में इटली के खगोल शास्त्री गिओवानी रिसिओली द्वारा किया गया। सबसे विस्तृत स्थानों को 'महासागर', अपेक्षाकृत छोटों को 'सागर', उनकी शाखाओं को 'खाड़ी' तथा छोटे-छोटे असंबद्ध स्थानों को 'झीलें' कहा गया। सागरों के चारों ओर की हल्की पृष्ठभूमि को 'महाद्वीप' के नाम से पुकारा गया तथा मध्यम वर्ण के क्षेत्रों को 'कच्छ-भूमि'।'

स्पष्ट ही है कि जहां रिसिओली ने यह जांच लिया कि चांद वास्तव में एक अन्य पृथ्वी ही है, वहां उसने अधिकांश में वर्णों के आधार पर उसका विभाजन भी उसी प्रकार कर दिया, जैसे हमारी पृथ्वी का है।

इतावली खगोलज्ञ ने चांद पर स्थित बड़े-बड़े विवरों का भी नामकरण किया तथा उनके नाम एरिस्टार्कस, कॉपर्निकस, केप्लर, टाइको, प्लेटो, न्यूटन, बेली आदि निश्चित किए जो हमारी भूमि के वैज्ञानिकों के नामों पर थे।

ये नाम अभी भी ज्यों के त्यों चले आते हैं (बल्कि चांद के पिछले पक्ष के भागों के नाम भी रूसी वैज्ञानिकों के नामों पर आधारित किए गए हैं) किंतु इनसे संबद्ध पर्याप्त यथार्थ का अब उद्घाटन हो गया है। अब यह ज्ञात हो गया है कि चांद पर पानी नहीं तथा वहां स्थित महासागर, सागर, खाड़ियां, झीलें और कच्छ बराए नाम हैं।

चंद्र-भूमि पर पर्वतों तथा पर्वत-शृंखलाओं की कमी नहीं है। चौड़े-चौड़े चंद्र-मैदान ऊंचे-ऊंचे नग्न पर्वतों से घिरे हुए हैं। मैदानों के तटों पर पर्वत-शिखर ऊंचे हैं जो कि आगे जाकर और अधिक ऊंचे पहाड़ों से मिल गए हैं। इनमें से एक पर्वत तो 9,000 मीटर ऊंचा है। सात शिखर 6,000 मीटर से अधिक ऊंचे हैं और 28 शिखर

5,000 मीटर से अधिक ऊंचे।

चंद्र-तल पर बड़े-बड़े विवर, पर्वतमालाएं तथा 'सागर'

चद्रमा की सतह जो कि प्रकाश और अधकार की आंख-मिचोनी है, अपने चेहरे पर अनेक विलक्षण लक्षण लिये बैठी है। विभिन्न आकारों के कई सौ प्रकार (सभवत. 500 से भी अधिक) चद्र-तल पर उपलब्ध है। पर्वतो तथा पर्वतमालाओ के अतिरिक्त बडे-बडे विवर (craters)है। इनमें सबसे वड़े विवर का व्यास 250 किलोमीटर है। चद्रमा के दृश्य भाग पर ऐसे विवरों की सख्या कम-से-कम 1/3 लाख है जो एक किलोमीटर से अधिक व्यास वाले है। चांद की भूमि इन विवरों अथवा गर्तो के कारण ही हमारी भूमि से सर्वथा भिन्न प्रतीत होती है। चाद का क्लेवियस विवर लगभग 230 किलोमीटर व्यास का है। उसकी गहराई लगभग 15 हजार फीट है। इन विवरो मे गड्ढे और टीले है—चोटिया हैं। ये विवर चारो ओर दीवारों से घिरे हुए हैं। विवर के चारों ओर दीवारें साधारणतया लावा तथा चट्टानें जम जाने से बन जाया करती है, किंतु ये दीवारें भूमि के धसने से बनी प्रतीत होती हैं।

चांद पर पर्वत शृखलाओ से घिरे हुए विशाल मैदान भी है हालाकि अपनी पृथ्वी के मैदानो से उनकी तुलना शत-प्रतिशत करनी कठिन होगी। ये मैदान ही वे **'मेरिया'** अथवा सागर हैं जो नंगी आंखो से भी नज़र आते हैं तथा जिन्हें लेकर पिछली शताब्दियों मे कल्पना के विचित्र घोड़े दौड़ाए गए। पृथ्वी-अभिमुख पार्श्व से लगभग 30 ऐसे मैदान है। ये अपेक्षाकृत अधिक समतल है तथा इनमें विवरों की संख्या अपेक्षाकृत कम है।

चद्र-तल पर कुछ दरारनुमा घाटियां है जो प्राचीन काल में बहने वाली नदियों के पेंद जैसी लगती है। ये घाटियां अधिक गहरी नहीं है पर लबी काफी है। एरियडायस विवर से आरंभ होने वाली इसी नाम की घाटी लगभग 150 मील लंबी है। इन घाटियों की चौड़ाई 1 मील से लेकर 5 मील तक समझी गई है।

एक-दो वैज्ञानिकों का ऐसा विचार रहा है कि संभवतः करोड़ो वर्ष पूर्व चंद्रमा की स्थिति भिन्न थी। चंद्र-भूमि वातावरण से आबद्ध थी तथा वहां सचमुच नदिया बहती थीं जो कि समुद्रों में गिरती थीं। कालांतर में जब चांद वातावरण-विहीन हो गया तो नदियो की घाटिया बन गईं और समुद्रों के मैदान। पर आज ऐसा नहीं समझा जाता बल्कि मैदानों और घाटियों का निर्माण उस लावा नामक पदार्थ के बहने से हुआ माना जाता है जो कि ज्वालामुखी-विवरो से बहता रहा।

चंद्रमा के दक्षिणी गोलार्द्ध में 'बादल सागर' के निकट 'टाइको' नामक एक विशाल विवर है। उसमें से 100 से भीं अधिक प्रकाश की किरणें फूटती हुई नज़र आती हैं। उनको देखकर ऐसा भ्रम होता है जैसे कि सचमुच ही किसी चित्रकार ने रग और ब्रश लेकर उन किरण-धारियो को पोता हो। टाइको के चारो ओर की दीवार पर अंधकार का एक घेरा है। उस अंधेरे घेरे पर ये किरणनुमा पट्टियां दृष्टिगत नहीं

होती बल्कि गर्त को घेरने वाली दीवार से लगभग 40 मील की दूरी से आरभ होती हैं तथा सीधी रेखाओ में आगे बढती चली गई हैं उनमें से एक रश्मि तो 1 000 मील की लबाई तक फैली हुई है य रश्मि-रेखाए चद्र-तल की ऊचाई-निचाई की उपेक्षा करती हुई आगे बढ़ी हैं।

इस प्रकार की रश्मि-रेखाएं कॉपर्निकस, केप्लर आदि अनेक विवरों से निकलती देखी गई हैं जिसके कारण इन विवरो को 'रश्मि विवर' ही कहने लगे हैं।

प्रश्न उठता है कि ये रश्मिया क्या है ? इस प्रश्न पर वैज्ञानिकों के मध्य एक अर्से से वाद-विवाद चलता आ रहा है। 'कुछ लोगों का विचार है कि विस्फोटो से जो ज्वालामुखीय राख निकली, वही ये किरणे हैं। उन्हीं विस्फोटो से गर्तों का निर्माण हुआ। दूसरे लोगों की राय है कि ये निर्माण-प्रक्रिया में छूटी हुई बिवाइया है जो कि अधोभाग से नि.सृत होने वाले प्रकाश-वर्णीय लावा से भर गई। अन्य लोग जो इस सिद्धांत के समर्थक हैं कि विवरो का निर्माण उल्कापातों की बम वर्षा का परिणाम है, स्पष्ट शब्दो मे यह मानते हैं कि रश्मियों ने धूल की तलछट से आकार ग्रहण किया है जो कि उल्कापातो के फलस्वरूप शून्य में उठी तथा शक्तिशाली संघटित लहर की दिशा मे क्रमशः स्थापित हो गई।'

संभव है, पृथ्वी पर प्रतिफलित होने वाला सूर्य का आलोक चद्रमा के अश विशेष पर पुनः प्रतिफलित होता हो।

जिस चाद की उपमा का प्रयोग सुदरियों के मुखड़ों के वर्णन के लिए होता आया है, उसके विषय मे यह सोचकर भी मन घबराता है कि ऊपर काले स्याह आकाश का छत्र टगा हुआ है जिसके नीचे विभिन्न आकारो वाले पत्थरो, गर्तों, टीलो, खाइयों, छिद्रों तथा पर्वतों वाला सुनसान रेगिस्तान है जहां न हवा है, न पानी—हरियाली है न ध्वनि। है मात्र श्मशान की-सी शांति जो अपने गर्भ में न जाने कितने अशात आंदोलन छिपाए बैठी है।

एक और प्रश्न उभरता है ? चांद की यह दुर्गति क्यों हुई ? वह कौन-सी चेचक थी जो चंद्र-सुदरी के चेहरे पर अपने बदनुमा दाग छोड़ गई ?

चंद्रमा संबंधी विभिन्न वैज्ञानिक सिद्धांत तथा मत

पश्चिम के वैज्ञानिक चांद की दुर्दशा दो मे से किसी एक कारण से हुई बताते हैं अथवा हो सकता है, दोनो क्रियाओं ने एक साथ ही कार्य किया हो : (क) आज चद्रमा अंदरूनी तौर पर ठण्डा पड गया लगता है पर एक जमाना था, जब यह गर्म था तथा अपनी उष्णता को अनेक मुखी होकर उल्टा करता था। फल यह निकला कि चंद्र-तल पर लाखों विवर व गर्त बन गए—अंधे कुओ जैसे गर्त, तथा जो लावा बहा उसने एक ओर तो गर्तों को चारदीवारी दी और दूसरी ओर ठोस चट्टानो के अपेक्षाकृत समतल मैदान जिन्हे आसानी की दृष्टि से 'सागर' कहा जाता है। घाटियो के निर्माण का कारण भी उन गह्वरों का ढह जाना समझा जाता है जिनमे से लावा बहता था।

इस सिद्धात के पक्ष म दो बाते जाता ह—(1) शांत सागर म लैवाल्ट चट्टान (वह चट्टान जो लावा से बने) पाई गई है। और (2) बतलाया जाता है कि अरिस्टार्कस विवर चंद्र-तल का सर्वाधिक आलोकमय स्थान है तथा ऐसा विश्वास किया जाता है कि उक्त विवर से अब भी सजीव ज्वालाए जीभ लपलपा रही है।

(ख) चद्रमा की विरूपता का एक बहुत बड़ा कारण बहा अनंत काल तक हुए (तथा शायद थोड़े-बहुत अब भी होते) उल्कापातों का सतत प्रहार है। ये उल्काखड सूर्य की परिक्रमा करते रहते है। और यथासमय ग्रहो-उपग्रहों से टकराते रहते ह। हम अक्सर टूटते हुए तारे देखते है—ये उल्काए ही होती है जो हमारी भूमि के वातावरण से रगड खाकर जल जाती है—कोई विशेष बड़ी उल्का ही पृथ्वी तक पहुचने म सफल होती है जैसी कि सन् 1908 में सोवियत सघ के साइबेरिया नामक क्षेत्र में गिरी थी। लेकिन चांद के चारों ओर सुरक्षात्मक कवच नही है। अतः जो भी उल्का चाद पर गिरती है, सीधे उसके धरातल से जा टकराती है और चांद के चेहरे पर अमानुषिक चुबन का चिह्न छोड़ देती है।

अत यह अनुमान आसानी से ही लगाया जा सकता है कि जब चंद्र-तल पर विशाल उल्काओं की वर्षा हुआ करती होगी तो वहां कैसी स्थिति रहती होगी। देखा गया है कि वर्षा की साधारण बूदो से ही ढीली मिट्टी अथवा रेत में छोटे-छोटे रन्ध्र बन जाते है। फिर जहा जलते हुए उल्का खड पूरे वेग से आकर टकरा रहे हों, वहा कैसी हलचल मचेगी ! न केवल मिट्टी-पत्थर जलकर राख हो जाएंगे बल्कि जो चट्टानें जल नही सकेंगी, वे तिड़केंगी—फटेंगी तथा दूर-दूर छिटक जाएगी। साथ ही उल्काओ की सतत मार चद्र तल में अनेक गर्त भी निर्मित कर देगी जिनकी गहराई का कोई हद-हिसाब नही रहेगा।

उल्कापातों का यह परिणाम भी सर्वथा स्वाभाविक है कि यदि विवर का पेंदा इस कदर गहरा हो जाए कि वहा तक जा पहुचे, जहा तरल पदार्थ प्रवाहित हो, तो उक्त पदार्थ फव्वारे की तरह फूटकर बाहर निकल आएगा और आस-पास की धूल-धक्कड़ को साथ लेकर फैल जाएगा। यदि इस प्रकार की प्रक्रियाए बार-बार होती रहे तो चंद्रमा के मैदानों का वह रूप बनना असंभव नहीं है, जैसा कि आज मौजूद है।

परतु चंद्र देव के अभिशाप-ग्रस्त जीवन मे सूर्य का भी हाथ है। वातावरण के अभाव से जहां उल्कापातो की गुंजाइश बढ़ती है, वहां सूर्य की उष्णता को भी अधिक-से-अधिक मात्रा मे नीचे उतरने का अवसर मिलता है तथा वहां का ताप असह्य हो जाता है। सुबह के समय ताप 160° फॉरनहाइट होता है पर चढ़ते-चढ़ते 214° फॉरनहाइट तक पहुंच जाता है। रात्रि मे यही ताप गिरकर—243° हो जाता है। यह ताप-क्रम-परिवर्तन चन्द्रमा के लिए बहुत ही घातक सिद्ध हुआ है। ऐसे भीषण परिवर्तनों से न केवल चट्टानें फट जाती हैं, बल्कि स्थान-स्थान पर भूमि भी दरक जाती है और उसमें दरारे पड़ जाती हैं। अतः यह कोई आश्चर्य की बात नहीं होगी

ा" यह कहा जाए कि चंद्र-तल की नदी सदृश घाटियों के निर्माण में ताप क्रम परिवर्तन का निश्चित हाथ है।

रूसी वैज्ञानिकों का मत है कि संभवतः इन सभी कारणों ने मिलकर चांद की यह शक्ल बनाई है। उनके विचार में चंद्र के वर्तमान रूप में भूचालों का भी निरंतर हाथ हो सकता है। उल्कापात-सिद्धांत का तो रूसियों द्वारा प्रयोग भी किया गया है। सोवियत वैज्ञानिक सावारन्यफ ने खड़िया का पाउडर वैसी ही खड़िया के पाउडर की तह पर गिराया। परिणाम था अत्यंत लघु विवर—ठीक वैसे ही विवर जो चंद्र-तल पर पाए जाते हैं।

किंतु विवरों की स्थिति चांद के पिछले पक्ष पर बहुत ही कम है। सागरों की संख्या भी अत्यंत अल्प है। हां, पर्वतों का आधिक्य है। ऐसा बतलाया जाता है कि चांद के अदृश्य पक्ष के लगभग 90% भाग पर पर्वत ही पर्वत हैं।

अब यह स्पष्ट करना सचमुच ही एक समस्या है कि एक ही उपग्रह के दोनों पक्षों में इतना घोर अंतर क्यों है?

चंद्र-धूल पर भी पर्याप्त विचार हुआ है जिस पर आर्मस्ट्रांग और एल्ड्रिन के अनगिनत चरण-चिह्न बिखरे पड़े हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि चांद की भूमि अत्यंत अनियमित है। जो पदार्थ बारीक धूल के रूप में पूरे चंद्र-तल पर फैला हुआ है उसमें उष्णता का प्रवाह अत्यंत सामान्य मात्रा में होता है जिससे इस तथ्य का पुनर्निर्धारण हो जाता है कि उक्त पदार्थ या तो छोटे-छोटे छिद्रों से पूर्ण है अथवा अत्यंत ढीला है। अपोलो-11 के यात्रियों ने इन दोनों ही तथ्यों को स्वीकार किया है। हालांकि कुछ लोगों की यह राय हो सकती है कि किसी जमाने में चांद पर नदी थी अतः चंद्र-धूल का निर्माण उसी ढंग से हुआ है जैसे कि हमारे रेगिस्तानों का निर्माण हुआ है। कहना न होगा कि हमारे रेगिस्तानों का निर्माण क्षरण की प्रक्रिया से हुआ है।

कुछ लोगों का मत यह भी है कि इस पदार्थ का आधार कॉस्मिक तत्त्व है क्योंकि अध्ययन द्वारा यह ज्ञात कर लिया गया है कि एक अरब वर्षों के दौरान कॉस्मिक पदार्थ की एक सेंटीमीटर तह पूरे चंद्र-तल पर फैल सकती है।

चांद की आयु को लेकर भी पश्चिम में पर्याप्त विचार हुआ है। किंतु यह बात इस मुख्य प्रश्न से जुड़ी हुई है कि चांद की उत्पत्ति कैसे हुई? उत्पत्ति के विषय में तीन सिद्धांत निश्चित किए गए हैं:—

(1) चंद्रमा पृथ्वी का पुत्र है : यह कभी हमारी पृथ्वी का ही भाग था (ऐसा समझा जाता रहा है कि जहां आज प्रशांत महासागर है, वहीं से यह पिंड निकलकर भूमि के गुरुत्व में स्थित हो गया)। आंग्ल खगोल-शास्त्री जार्ज डार्विन का ऐसा मत है कि चांद पृथ्वी से वियुक्त होकर 15,000 किलोमीटर की दूरी पर चला गया तथा पृथ्वी के चक्कर काटने लगा।

(2) दूसरा सिद्धांत यह है कि चांद और भूमि का निर्माण एक ही समय हुआ है। इस सिद्धांत के संस्थापकों में सोवियत वैज्ञानिक ऑटोश्मित हैं जिसका मत है

कि 'सूर्य को घेरने वाले उल्का-धूल-मेघ से चांद और पृथ्वी का निर्माण एक साथ हुआ है। यह बादल ठोस हुआ तथा इसके कण आपस में टकराते रहे, सम्मिलित होते रहे, फिर वियुक्त और सयुक्त होते रहे तथा अत मे जबरदस्त घनत्व हो गया जिसमे मेघ का संपूर्ण पदार्थ जज्ब हो गया।'

(3) यह भी सिद्धात है कि चाद एक छोटा-सा स्वतंत्र ग्रह था तथा उसका नाम 'लूना' था। लूना पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के कब्जे मे आने से पूर्व सौरमंडल के चारो ओर भटका करता था।

इस विषय में प्रो. हैरल्ड यूरी का कथन है कि 'चंद्र संबंधी सभी स्पष्टीकरण सभावनाहीन है।'

किसी सीमा तक चाद की आयु उपर्युक्त प्रश्न से संबद्ध है पर अब वैज्ञानिक ऐसा मानने लगे है कि पृथ्वी और चंद्रमा की आयु बराबर ही है जिसे उन्होंने 45 करोड वर्ष बतलाया है। क्योंकि पृथ्वी पर क्षरण अधिक होता है, इसलिए चद्र-चट्टानो को देखकर इस विचार की और अधिक पुष्टि हो जाने की वैज्ञानिकों को आशा है।

चद्रमा पर जीवन है अथवा नही ?—इस प्रश्न को लेकर पश्चिम में पर्याप्त विचार हुआ है। वैज्ञानिको का कथन है कि चद्रमा पर न वायु है, न पानी और वहा का तापक्रम भी जीवन का शत्रु है। फिर सूर्य से विकिरण की वर्षा भी बराबर हुआ करती है। ऐसी अवस्था में चांद पर जीवन की संभावना कैसे हो सकती है ?

इसके अतिरिक्त अपोलो–11 के जो यात्री लौटकर आए है, उनके सभी प्रकार के परीक्षणो से यह सिद्ध हो जाता है कि चंद्रमा पर जीवन सभव नहीं है।

पर इस प्रश्न के कुछ और पहलू भी है . यह ठीक है कि चद्रमा पर किसी प्रकार का वातावरण नहीं है (अथवा नगण्य है) किंतु समुद्रों के गड्ढों और हमारी पृथ्वी के गैस आवरण की ऊपरी पर्तों मे भी तो वातावरण-हीनता है। क्या वहां जीवन का अभाव है ?

जहा तक तापक्रम की बात है, 'चांद पर ही ऐसे क्षेत्र भी हैं जहां का तापक्रम दिन मे 30^0 सेंटीग्रेट और रात में 57^0 सेंटीग्रेट से नीचे नहीं जाता।' फिर पानी की सभावना से भी सौ प्रतिशत इनकार तो नहीं किया जा सकता।

रही विकिरण की वर्षा की बात, सो यह सिद्ध हो चुका है कि विकिरण मे जीवाणुओ का जन्म हो जाता है। और फिर अपोलो-11 के यात्रियों ने चांद के कितने भाग से सपर्क स्थापित किया है जिससे कि उनके स्वास्थ्य-परीक्षण के परिणामो के आधार पर अंतिम रूप से यह स्वीकार कर लिया जाए कि चांद पर जीवन की कोई सभावना नहीं है ?

कहावत है कि साधारणतया मनुष्य के तीन रूप होते हैं : पहला वह, जिसे केवल वह स्वयं ही जानता है; दूसरा वह जिसे थोड़े-बहुत अंतर से अन्य सभी जानते हैं; और तीसरा वह, जिसे वह स्वयं भी नहीं जानता—जो समय के अनुसार उसके समक्ष प्रकट होता है और उसे आश्चर्यचकित कर देता है।

चंद्र-यात्रियों द्वारा लाए गए चंद्र-तल के नमूने

चंद्रमा का भी यही हाल है उसका एक रूप पूरब ने निश्चित किया है और दूसरा पश्चिम ने प्रदर्शित किया है पर इन दोनों रूपों को जोड़कर भी चांद का पूरा चित्र नहीं बनता। सच्चाई यह है कि चांद का एक और चेहरा भी है, जिसके विषय में शायद चांद को खुद भी मालूम नहीं है। वह चेहरा उसकी मिट्टी—उसकी चट्टानों में छुपा हुआ है, जिसका उद्घाटन होना आरंभ हो गया है। अपोलो-11 के चंद्र-यात्री चंद्र-तल से जो नमूने लाए थे, उन पर परीक्षण किए गए हैं तथा उनके कुछ परिणाम निकले हैं हालांकि चांद काफी बड़ा है तथा शांत-सागर के एक बिंदु से उठाकर लाए गए नमूने चांद का तीसरा चेहरा पूरी तरह उद्घाटित नहीं कर सकते पर उसकी झलक अवश्य प्रदान कर सकते हैं।

जैसा कि भली-भांति ज्ञात है, चंद्रमा पर मनुष्य का गमन मुख्य रूप से मिट्टी-पत्थर के नमूने लाने के लिए ही हुआ था क्योंकि डॉ. यूरी ने यह घोषणा की थी कि 'मुझे चन्द्र-तल की एक चुटकी मिट्टी ला दो, मैं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के निर्माण का रहस्योद्घाटन कर दूंगा'।

अपोलो-11 के चन्द्र-यात्री 22 किलो मिट्टी-पत्थर लाए थे। इन मिट्टी-पत्थरों को स्वाभाविक रूप से ही वह महत्त्व दिया गया, जो कभी हीरे-जवाहरातों को भी नहीं दिया गया।

यद्यपि आर्मस्ट्रांग और एल्ड्रिन ले-देकर मात्र दो-ढाई घण्टे ही चांद पर रहे किन्तु यह अनमोल सामान इकट्ठा करने में उन्होंने काफी समय लगाया तथा चार बार चांद के नमूने एकत्र किए। सबसे पहले तो आर्मस्ट्रांग ने कुछ नमूने प्लास्टिक के लिफाफे में डालकर जेब के हवाले किए। उस समय वह चंद्र-तल पर उतरा ही था। वैज्ञानिकों को यह विश्वास नहीं था कि चंद्र-धरातल पर पहुंचकर भी मनुष्य निश्चित रूप से वहां घूम-फिर भी सकेगा। अतः यदि आर्मस्ट्रांग को पृथ्वी पर पांव रखते ही किसी अज्ञात कारण से अपने यान में वापस दौड़ना पड़ता तो भी चांद तक पहुंचने-पहुंचाने की तबालत का मूल्य उसने हस्तगत कर लिया था।

दूसरी बार आर्मस्ट्रांग ने औजार की सहायता से काफी मिकदार में ये नमूने उठाए और उस बक्स में बंद किए, जिसे इसी उद्देश्य से बनाया गया था। इसके बाद तीसरी बार जो नमूने उसने उठाए, वे सोच-समझकर तथा चुनकर उठाए—इस चुनाव में विविधता को प्रथम स्थान दिया गया। इसके अतिरिक्त प्रथम चंद्र-यात्रियों ने कई इंच गहराई तक खुदाई करके कुछ विशेष नमूने निकाले। यह चौथा प्रयत्न था।

इसके बाद यह सारा सामान धातु विशेष के बने हुए दो वातावरणरहित बक्सों में भरकर सील कर दिया गया। इलिंग्टन के हवाई अड्डे से जब इन्हें 'चन्द्र-सामग्री-सत्कार-प्रयोगशाला' ह्यूस्टन में ले जाया गया तो अलग-अलग हवाई जहाजों पर ले जाया गया ताकि यदि एक जहाज गिरकर टूट भी जाए तो भी सारे ही नमूने नष्ट

न हो जाए।

ह्यूस्टन की चंद्र-सामग्री-सत्कार-प्रयोगशाला के निर्माण मुख्य रूप से इन नमूनों को ही सुरक्षित रखने तथा परीक्षण आदि के लिए किया गया—चंद्र यात्रियों को उसमें रखना गौण पक्ष था।

मुख्य रूप से उक्त प्रयोगशाला के निर्माण के तीन ध्येय थे और वे तीनों ही इस बहुमूल्य 'माल' से जुड़े हुए थे।

(1) संभावना की कमी होते हुए भी यह आशंका तो थी ही कि जिस समय मनुष्य चंद्र-धरा पर उतरेगा तो यदि वहां कोई जीवाणु-विषाणु आदि होंगे तो उनका कुछ-न-कुछ अंश उसके तथा मुख्य रूप से उन नमूनों के साथ आ जाएगा, जो वहां से भरकर लाए जाएंगे। अतः यह प्रबंध किया गया कि उस प्रकार का कोई भी जीवाणु-विषाणु हमारी पृथ्वी को तहस-नहस न कर सके।

(2) चंद्रमा वातावरणहीन स्थान है। (वहां हमारी पृथ्वी के वातावरण का लगभग एक लाखवां भाग है) इसलिए वातावरण के कारण होने वाला क्षरण वहां नहीं होता—किंतु हमारी पृथ्वी पर बराबर होता है। अतः यह भी प्रबंध किया गया कि जहां तक संभव हो, उन नमूनों को पृथ्वी पर लाकर भी पृथ्वी के संपर्क से यथा संभव बचाया जाए ताकि यहां की क्षरण प्रक्रिया के कारण उनकी प्राकृतिक विशेषताएं नष्ट न हो जाएं।

(3) तीसरा प्रबंध इस स्थिति के लिए किया गया कि चंद्र-भूमि और अपनी भूमि का सम्मिलन कराया जाए तथा प्रतिक्रियाओं का पता लगाया जाए। उक्त प्रयोगशाला में ये सभी प्रबंध पूरी तरह किए गए थे।

जो माल चंद्र-यात्री जान जोखिम में डालकर लाए थे, उसके महत्त्व के विषय में कॉलिन्स ने कहा था—

'हम लोग इस राष्ट्र का धन चांद पर ले गए थे - इसके राजनीतिज्ञों की दृष्टि-दाढ़, इसके वैज्ञानिकों की बुद्धि, इसके इंजीनियरों की समर्पित सेवा, इसके कार्यकर्ताओं का ध्यान भरा हस्त-कौशल तथा इसकी जनता का अथक-युक्त समर्थन। बदले में हम चट्टानें लाए हैं—और मेरे विचार में यह उचित व्यापार है।'

प्रयोगशाला में पहुंचते ही चट्टानों पर कार्य आरंभ हो गया तथा सबसे पहले तिहरे नियंत्रण के अंदर बक्सों का बाह्य शोधन किया गया किन्तु उनको खोला नहीं गया—केवल उनके ऊपर चढ़ा प्लास्टिक का आवरण ही उतारा गया। खोला गया उन्हें एक ऐसे कक्ष में जहां कृत्रिम तरीके से ऐसा 'वातावरण' निर्मित किया गया था जैसा कि चांद पर है। और यह खोलना भी कैसा हुआ, कि कक्ष के बाहर खड़े व्यक्ति ने बॉक्स की मुहर तोड़कर उसमें एक नली डाल दी ताकि बक्से में जो भी गैस इकट्ठी हो गई हो, वह एक यंत्र विशेष में पहुंच जाए।

इस प्रारम्भिक परीक्षण के दो लक्ष्य थे : प्रथम तो उस गैस का अध्ययन करना था जो चंद्र-चट्टानों से निकलती है और दूसरे यह भी जांचना था कि कहीं बक्स

मे कोई ऐसी दरारे-दरार आदि तो नही आ गई जिससे न केवल सारी गैस निकल कर भाग गई हो, अपितु हमारी पृथ्वी की वायु ने अंदर प्रवेश कर लिया हो।

पहला ही परीक्षण सर्वथा सफल रहा तथा दोनों बक्से पूरी तरह बंद पाए गए।

इसके बाद बक्स को खोला गया तथा बारी-बारी से एक-एक नमूने को उठा कर ट्रे पर सजाया गया और उन नमूनो के चित्र लिये गए।

फिर दूसरे वातावरण-रहित कक्ष मे यांत्रिक हाथो से उनके कुछ और छोटे-छोटे टुकड़े किए गए तथा फिर एक-एक टुकडे को अलग-अलग वातावरण-रहित बक्सो मे बद करके सुरक्षित किया गया।

कहा जाता है कि भूमि की जन्म कुण्डली उसकी चट्टान होती है अत: चांद के भूत और वर्तमान (संभव है भविष्य को भी) को पढ़ने के लिए इन चट्टानो पर अनेक प्रकार के परीक्षण किए जाने थे जिससे चद्रमा के निर्माण की कुजी हाथ आए क्योंकि चंद्रमा की कुंजी में हमारे सारे सौर-मडल की कुजी है।

इन चट्टानों पर प्रारम्भिक परीक्षण चद्र-सत्कार-प्रयोगशाला मे ही किए गए जैसे कि विकिरण की जांच। यह जाच 'विकिरण-प्रयोगशाला' मे की गई। इसमे सामान्य विकिरण और ब्रह्मांड--किरणों द्वारा उत्पन्न विकिरण--दोनों की ही जाच की गई। जसा कि विदित ही है, विकिरण के अध्ययन से उक्त चट्टान की आयु का सही पता लगाया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त कुछ और ऐसे परीक्षण थे जिनमें विलंब करने से चंद्र-चट्टानों की प्रकृति बदल सकती थी तथा उन पर यहा के परिवेश का प्रभाव पड सकता था। चंद्रमा पर कभी चुंबकीयधृत की स्थिति थी अथवा नहीं, इस जानकारी के लिए चुंबक-संबंधी परीक्षण किए गए।

प्राणी-शास्त्र संबंधी परीक्षण करने में भी शीघ्रता की गई क्योंकि यह जानकारी इन्हीं परीक्षणों से मिलनी सभव थी कि चांद पर जीवन के लक्षण हैं अथवा नहीं। इसके लिए अनेक प्रकार के प्राणियो व पौधों को चंद्र-धूल तथा चंद्र-चट्टान के संपर्क मे लाया गया। दोनों ही अवस्थाओं के परिणाम उत्साहवर्धक रहे।

नमूनों पर परीक्षणों के परिणाम

जिन जीवधारियों को चंद्र-सामग्री के संपर्क में लाया गया, उनमे किसी भी प्रकार की अस्वाभाविक प्रतिक्रिया के दर्शन नहीं हुए। यह परीक्षण कई सप्ताहों तक चला तथा अंत में सभी वैज्ञानिकों ने एक मत से यह स्वीकार किया कि चांद की चट्टान, धूल आदि के माध्यम से किसी प्रकार के जीवाणु या विषाणु के यहां पहुंचने का प्रश्न ही नहीं उठता।

चाद की धूल पर जो प्रयोग किए गए, वे तो और भी अधिक उत्साहवर्धक सिद्ध हुए। इस धूल से मिश्रित मिट्टी में कई प्रकार के पौधे उगाए गए। टैक्सास के एक वैज्ञानिक चार्ल्स वाल्किन्शा ने कपास की तह पर चंद्र-धूलि छिड़ककर उस

पर प्रामक मान का प्रयोग किया और कि आशा में अधिक सफल रहा

चांद की धूल में उगने वाले पौधे धानक के अन्य पौधों में अधिक हरे रंग के थे तथा अधिक ऊंचाई तक गए थे और धरती की धूल नगाम की सतह पर छिड़क कर उगाए गए। डॉ. वाल्स ने अपने विश्लेषण के आधार पर कहा

'मुझे पूरा भरोसा है कि यदि हमें कभी चांद पर पौधे उगाने का अवसर मिला तो यह निश्चित है कि वहां उगने वाले पौधे धरती पर उगने वाले पौधों से अधिक ऊंचे तथा अधिक मजबूत होंगे।

'यह देखने में आया है कि चांद की धूल में उगाए गए पौधों में इस तरह के कोई कीटाणु नहीं पाए जाते, जिनसे पौधों को कोई रोग लगे।'

चंद्र-चट्टानों के टुकड़े अमरीका सहित नौ देशों के 142 वैज्ञानिकों को परीक्षण के लिए बांटे गए थे, जिनमें 106 वैज्ञानिक अमरीका के थे और शेष 36 अन्य आठ देशों के। इनमें 4 भारतीय वैज्ञानिक—डॉ. वी. आर. मूर्ति, डॉ. डी. वी. खारकर, डॉ कु. गोपालन और डॉ. देवेंद्र लाल—भी शामिल थे जो अमरीका मे ही काम कर रहे थे। इन 142 वैज्ञानिको का चुनाव नासा ने ही किया था।

चंद्र-सामग्री-स्वागत-प्रयोगशाला में प्रारम्भिक प्रयोगों के बाद ये नमूने इन वैज्ञानिकों को व्यापक परीक्षणों के लिए दिए गए थे ताकि चंद्र संबंधी समस्याओं का समाधान हाथ लगे।

इन चट्टानों पर कई तरीकों से परीक्षण किए गए, 'प्रारम्भिक परीक्षणों मे चंद्र चट्टानों को उस सीमा तक तपाया जहां वे पिघल जाती हैं, उस सीमा तक शीतल किया, जहां वे भुर जाती है; उन पर चोटें मारी गई; उन्हें फैलाया तथा सिकोड़ा-निचोड़ा गया ताकि उनकी पुष्टता और लचीलापन प्रकट हो, उन्हें रासायनिक घोलों में डुबाया गया, उनके विकिरण-विमोचन और चुंबकीय गुण ढूंढे गए, उनकी विद्युत व उष्णता प्रवाह-धर्मिता मापी गई; उनमें से विकिरण पास कराया गया तथा निकलकर भागती हुई गैसों को इकट्ठा किया गया।'

इन सभी तथा अनेक अन्य प्रकार के परीक्षणों मे पहली मुख्य बात तो यह हाथ आई कि चांद की चट्टानें भूमि की चट्टानों से सर्वथा भिन्न हैं, मुख्य अंतर तो रासायनिक संरचना में है : चंद्रमा चट्टानों में उन धातुओं जैसे टाइटेनियम, क्रोमियम और जरकोनियम की अधिक मात्रा विद्यमान है, जो हमारी भूमि की चट्टानों में बहुत कम मात्रा में है। पृथ्वी की चट्टानों में क्रोमियम की जितनी मात्रा उपलब्ध है, उससे दस गुना अधिक मात्रा चंद्र चट्टानों में पाई गई है। उनमें टाइटेनियम द्रव्य 12 प्रतिशत है जबकि हमारी चट्टानों में अधिक से अधिक 4.5 प्रतिशत ही पाया जाता है। अलबत्ता स्वर्ण, प्लैटिनम तथा चांदी का सर्वथा अभाव पाया गया। इसके अतिरिक्त सीसा-कांसा आदि की भी कमी पाई गई जिनकी हमारी चट्टानों मे बहुतायत है।

हमारी पृथ्वी पर टाइटेनियम एक ऐसा दुर्लभ खनिज है जो हल्का होते हुए भी इतना मजबूत है कि हवाई जहाजों और अंतरिक्ष-यानो के निर्माण में इसका व्यापक

रूप से प्रयोग किया जाता है। चाद पर टाइटेनियम की उपलब्धि के विषय मे डॉ रॉबिन ब्रेट का कथन है :–

'चद्रमा के किसी भी शुष्क सागर में टाइटेनियम धातु की विशाल खान मिल सकती है।'

एक अन्य वैज्ञानिक डॉ गास्ट ने कहा है, 'इससे यह धारणा मिथ्या सिद्ध हो जाती है कि चंद्रमा वस्तुतः प्रशांत महासागर से टूटकर अलग हुआ पृथ्वी का ही एक अश है।'

उन्होंने आगे कहा, 'ऐसा प्रतीत होता है कि पृथ्वी की तरह चंद्रमा का निर्माण लगभग एक ही समय (4 अरब 50 करोड़ वर्ष पूर्व) पर, परतु स्वतंत्र रूप से उन्ही पदार्थों से हुआ जो सूर्य द्वारा अपने चौतरफा क्षेत्र में फेका गया था।'

डॉ. गास्ट ने चांद पर जल की स्थिति के विषय में भी टिप्पणी दी है कि पृथ्वी पर कोई भी ऐसी चट्टान नहीं है जिसमें जल का इतना अधिक अभाव हो जितना कि चन्द्र-चट्टानों मे है। इसका अर्थ यह है कि चंद्रमा के दीर्घ इतिहास में किसी भी समय वहां जीवन को पनपने का कोई अवसर सुलभ नहीं हुआ।

अत. यदि फिलहाल इस खोज पर सहमति न भी हो कि चांद और धरती एक साथ एक ही प्रकार के पदार्थ से बने तो भी यह तो स्वीकार किया ही जा सकता है कि चाद पृथ्वी-पुत्र नहीं है।

चद्र-विवरों व सागरो (मैदानों) के निर्माण के विषय में भी चट्टानों ने जानकारी दी : अपोलो-11 द्वारा लाई गई चट्टानों मे से कुछ तो निश्चित रूप से ऐसी थीं जो कभी पिघली हुई अवस्था में रही थीं। ऐसा चाहे ज्वाला-मुखीय प्रक्रिया से हुआ हो, चाहे उल्कापातो की अजस्र वर्षा से। अलबत्ता दोनों में से किस प्रक्रिया का कितना हाथ रहा—यह नहीं जाना जा सका।

साथ ही इन शिला-खंडों पर ऐसे छिद्र पाए गए जिन पर काच के कणों की वर्षा हुआ करती है।

चन्द्र-धूल और शिला-खण्डो के कुछ अंश ऐसे भी पाए गए जो सौर-वायु से प्रभावित हुए थे तथा उस प्रभाव के कारण उनमें कुछ गैसें उत्पन्न हो गई थीं पर कार्बन की उपस्थिति का कोई लक्षण चंद्रमा पर नही मिला।

हां, यह धारणा निराधार हो गई कि ऑक्सीजन के अभाव में चंद्र-तत्त्व अपने मूल रूप में ही मिल जाएंगे। इसीलिए यह कहना असंगत न होगा कि इन परीक्षणों ने जिन समस्याओं का समाधान किया है, लगभग उतनी ही नई समस्याएं खड़ी भी की हैं। भरोसा केवल इस तथ्य से होता है कि यह तो शुरूआत ही है। अभी तो चाद के भिन्न-भिन्न भागों से अनेक नमूने लाए जाएंगे तथा प्रयोगों के लिए प्रस्तुत किए जाएगे। उस समय वर्तमान परिणाम तो एक उपयोगी कड़ी का ही कार्य करेंगे।

तो भी फिलहाल चंद्रमा की आयु, उसकी बनावट का हेतु, उस पर जल और जीवन की संभावना—इन महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर तो प्रकाश पड़ा ही है। किस प्रकार

के धातु व खनिज कहां मिल सकते हैं इसकी भी जानकारी प्राप्त हुई है।

प्रश्न उठ सकता है कि शैल खंडों से चांद की आयु का निर्धारण कैसे किया गया? इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि यह काल निर्धारण पोटाशियम आर्गन विधि से किया गया। इसमें 'वैज्ञानिकों ने इस सामग्री का विश्लेषण किया। रेडियो-धर्मी पोटेशियम' जो चट्टान में विद्यमान रहता है, क्षीण होकर आर्गन नामक गतिहीन गैस में बदल जाता है। यह क्षय एक प्राकृतिक प्रक्रिया है जो कि चट्टान के निर्माण के साथ ही आरंभ हो जाती है और उसके इतिहास का अंग बनी चलती रहती है।'

क्योंकि रेडियो-धर्मी पोटेशियम की मूल मात्रा तथा उसके क्षय की गति जानी जा सकती है अतः इस हिसाब से किसी भी शिला-खंड का काल-निर्धारण किया जा सकता है।

चांद से लाई गई सामग्री से, जो चांद के तीसरे चेहरे का खाका बनता है, वह कुछ इस प्रकार है : चांद पृथ्वी से टूट कर नहीं बना है। उसका निर्माण 4½ अरब वर्षों से भी पुराना है। सम्भवतः इसीलिए चन्द्र-धूलि व शैल-खण्ड मौलिक रूप में हमारी पृथ्वी की सामग्री से भिन्न है। यह ठीक है कि शांत सागर की चट्टानें लावा जैसे पदार्थ से निर्मित हुई हैं, तो भी उनमें और हमारी चट्टानों में भेद है। हमारी पृथ्वी की सामग्री के विपरीत चंद्र भूमि की सामग्री अपेक्षाकृत हल्की है। वहां की चट्टानों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उनमें टाइटेनियम और लोह धातुओं का आधिक्य है और उदक ऑक्सीजन आदि की कमी। अलबत्ता तीन नए खनिज पदार्थों की पर्याप्त उपस्थिति के प्रमाण मिले हैं : (1) पाईरॉक्स मैन्गाइट (2) क्रोमियम टाइटेनियम और (3) फेरोस्यूडोब्रूकाइट (Ferropseudobrookite)। यह निष्कर्ष भी निकाला गया है कि चंद्र-भूमि पर किसी प्रकार के जीवन की उपस्थिति की संभावना नहीं है।

17. बढ़ते कदम

अंतरिक्ष-विजय का जो सिलसिला स्पुत्निक-1 के द्वारा आरंभ किया गया था—जारी है।

14 नवंबर, 1969 को हमारी पृथ्वी के तीन मानवों—चार्ल्स कॉनराड, रिचर्ड गॉर्डन और एलेन बीन—ने अपोलो-12 में सवार होकर चद्रमा की ओर प्रस्थान किया। प्रश्न हो सकता है कि जब मनुष्य चद्र-विजय कर चुका तो अब उसे बार-बार उसी उपग्रह पर जाने की क्या आवश्यकता है? उसे तो अपने प्रयत्नों को किसी ग्रह-विजय की दिशा में व्यय करना चाहिए। अपना ध्यान मंगल की ओर लगाना चाहिए। चाद के बाद मगल हमारा निकटतम पड़ोसी है तथा वहां प्राणी अथवा प्राणो के कायम रहने योग्य वातावरण मिलने की सभावना है।

पर जैसा कि हम लोग जानते है, चंद्रमा का स्पर्श मात्र चद्रमा की विजय नही है—यह प्रकृति-विजय की दिशा मे मनुष्य का पहला और छोटा-सा कदम है। चांद ग्रह-सोपान का पहला डंडा है अतः कुछ समय तक तो हमें इस डंडे का उपयोग करते रहना ही पडेगा। इसके लिए चांद को अंतरिक्ष का पहला आधार-स्थल बनाना जरूरी है जहा मगल, शुक्र, वृहस्पति, शनि आदि की यात्रा करते समय पाव टिकाया जा सके। इसी दृष्टि से चाद को एक अंतरिक्ष-उपनिवेश का रूप दिया जाना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अब इसके कर्षण की जरूरत थी—अन्वेषण तो हो चुका था।

वातावरण-रहित होने के कारण चांद एक अछूता स्थान है अतः अपने सौर-मंडल के अध्ययन के लिए चांद का अध्ययन अत्यंत उपयोगी होगा। उक्त अध्ययन चद्र-भूमि पर मानव व मशीन के द्वारा भी होगा और हमारी पृथ्वी पर चांद से लाई गई चट्टान मिट्टी आदि के माध्यम से भी।

लेकिन नहीं—अपोलो-12 की उड़ान से पूर्व कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण प्रयत्न भी हुए हैं सोवियत संघ द्वारा। उन प्रयत्नों पर विचार करना निश्चय ही अतरिक्ष-अभियान को समझने मे सहायक होगा।

सबसे पहले ज़ोन्द-7 की ही बात करे। ज़ोन्द-7 अगस्त 1969 के दूसरे सप्ताह के आरंभ में सोवियत भूमि से छोड़ा गया था। 8 अगस्त को जिस समय जोन्द-7

पृथ्वी से लगभग 50,000 मील की दूरी पर था तो उसने पृथ्वी के टेलीविजन चित्र भेजे। इन चित्रों में सोवियत गणतंत्रों के अतिरिक्त वहां की पर्वत श्रेणियां, झीलों तथा सागरों के भी चित्र प्राप्त हुए। इसके अलावा जोन्द 7 पर लगे टेलीविजन कैमरे की आंख ने ईरान, इराक, अरबिया   आदि को भी देखा तथा उनकी चित्रीय सूचनाएं सोवियत भूमि पर स्थित नियंत्रण केंद्र को भेजी। चित्रों में मिस्र और सूडान भी सम्मिलित थे जो नील नदी की घाटी में स्थित हैं।

ज़ोन्द-7 से दूसरी चित्र शृंखला 11 अगस्त को प्राप्त हुई। उस समय वह मानव-रहित यान चांद के करीब था तथा चंद्र-भूमि से लगभग 7,000 मील के फासले पर था। वहां से उसने चंद्र-तल के चित्र भेजे जिनमें 'तूफान सागर' के अतिरिक्त वहां की पर्वत-श्रेणियों तथा विवर-गर्तों के चित्र शामिल थे। चित्र रंगीन होने के कारण चंद्र-तल के रंग-भेद उक्त चित्रों से स्पष्ट झलकते थे।

ज़ोन्द-7 से तीसरी चित्र-शृंखला तब प्राप्त हुई, जब वह चांद के अदृश्य भाग की ओर था तथा चंद्र-तल से लगभग 1,300 मील दूर था। इन चित्रों में चांद और पृथ्वी दोनों के ही चित्र शामिल थे।

बाह्य-अंतरिक्ष के और अधिक अन्वेषण के निमित्त भेजा गया ज़ोन्द-7 14 अगस्त, 1969 को पृथ्वी पर लौट आया।

ज़ोन्द-7 सोवियत संघ की ज़ोन्द शृंखला का ही एक महत्त्वपूर्ण चरण था जो कि चंद्र-परिवेश का अधिकतम परिचय प्राप्त करने की चेष्टा कर रहा था। पर चंद्रमा पर दो अमरीकी अंतरिक्ष यात्रियों के उतर जाने के बाद ज़ोन्द-7 की उड़ान कोई विशेष महत्त्व की नहीं रह गई थी।

अलबत्ता सोयुज़-शृंखला की नवीनतम उड़ान निश्चय ही महत्त्वपूर्ण प्रतीत हुई क्योंकि सोयुज़-6, 7 व 8 की सम्मिलित उड़ान अंतरिक्ष-स्टेशन बनाने की दिशा में एक काम का कदम था।

सोयुज़ 6, 7 व 8 को क्रमशः अक्टूबर 11, 12 और 13 को छोड़ा गया। उन तीनों समानव अंतरिक्ष-यानों का लक्ष्य पृथ्वी का परिक्रमा-पथ था। सोयुज़-6 के यात्री थे : गियोर्गी शोनिन और वालेरी कुबासोफ़। सोयुज़-7 के यात्री थे अनातोली फिलिप्चेन्को, व्लादिस्लॉफ वॉल्कोफ़ और विक्टर गोर्बात्कोव और सोयुज-8 के यात्री शतालोफ़ और येलीसेफ़ थे।

तीनों सोयुज़ यान क्रमशः पांच-पांच दिनों के अनंतर पृथ्वी पर लौट आए। जैसा कि ज्ञात ही है, कुल मिलाकर तीनों यानों के अंतरिक्ष-यात्रियों की संख्या 7 थी। सोवियत संघ ने अधिकांश अंतरिक्षीय उपलब्धियों में पहल करके दिखाई है—7 अंतरिक्ष यात्रियों को एक साथ अंतरिक्ष में भेजना एक अन्य पहल थी।

सोवियत समाचार एजेन्सी तास के उस सामूहिक उड़ान का उद्देश्य अनेक वैज्ञानिक व प्राविधिक प्रयोगों को पूर्ण करना बतलाया था। इन प्रयोगों में भूमि के भौगोलिक स्थानों के मान-चित्र बनाने से लेकर शीत-टांके (वेल्डिंग) की क्रिया तक

शामिल थी इसके अतिरिक्त विभिन्न नक्षत्रों की प्रकाश प्रखरता के आधार पर उनकी सही-सही दूरी की जानकारी प्राप्त करनी थी।

शीत-टांका-गिरी

शीत-टाका-गिरी आजकल के औद्योगिक युग की अत्यंत आवश्यक माग है। टाका लगाने की इस प्रणाली में धातुओ को पिघलाना नहीं पडता बल्कि एक ही प्रकार की अथवा विभिन्न प्रकारों की धातुओं को उनके परमाणुओ के संवद्धीकरण द्वारा जोड दिया जाता है। इसकी सर्वाधिक आवश्यक शर्त यह है कि जिन दो धातुओ मे ठंडा टांका लगाना है, उनके मध्य किसी भी प्रकार का अंतराल न रह जाए।

अब अंतराल के प्रश्न को लेकर दो समस्याए खड़ी हो जाती हैं - पहली है पृथ्वी की प्रत्येक धातु पर अत्यत सूक्ष्म चिकनी पर्त और दूसरी है वातावरण के कारण उत्पन्न ऑक्साइड की पतली पर्त। इनमे प्रथम समस्या के तो अनेक रासायनिक समाधान है परतु ऑक्साइड का कोई समाधान वातावरण में सभव नही है। अतः यह कार्य तो सर्वश्रेष्ठ ढग से वातावरणरहित स्थिति में ही किया जा सकता है और इसके लिए आदर्श स्थान अंतरिक्ष ही है। अतः रूसियो ने ठंडा टांका लगाने का जो सफल प्रयोग अंतरिक्ष में किया, उससे अंतरिक्ष-स्टेशन बनाने की दिशा में पर्याप्त प्रगति हुई।

सोयुज यानों ने नक्षत्रों की दूरी और प्रकाश की प्रखरता—इन दोनों संबद्ध समस्याओ का भी सफलतापूर्वक अध्ययन किया। असल में बात यह है कि पृथ्वी पर बैठकर नक्षत्रों का सही अध्ययन नहीं किया जा सकता क्योंकि वातावरणीय लिफाफे के कारण नक्षत्रो का प्रकाश सौ प्रतिशत शुद्ध रूप में हम तक नही पहुच पाता। अतः नक्षत्रो का अध्ययन भी अतरिक्ष मे से ही सही तरीके से किया जा सकता है।

प्रकाश की प्रखरता और नक्षत्र की दूरी इस सूत्र के द्वारा पाई जाती है कि किसी स्थान विशेष पर किसी प्रकाश-स्रोत की प्रखरता कितनी है। अब यदि वह प्रकाश-प्राप्ति-स्थल मूल से दुगुनी दूरी पर ले जाया जाए तो प्रकाश की प्रखरता आधी न रहकर चौथाई रह जाएगी। इस प्रकार प्रकाशीय प्रखरता के आधार पर नक्षत्र की दूरी और दूरी के आधार पर प्रखरता का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

यह प्रयोग भी सोयुज़ यानों की सहायता से सफलतापूर्वक किया गया। इस प्रकार सोयुज़ उड़ान सोवियत अंतरिक्ष-विज्ञान के लिए एक और कीर्तिमान था।

अपोलो-12 की उड़ान के उद्देश्य

पर कीर्तिमान किसी व्यक्ति, जाति अथवा राष्ट्र विशेष के लिए सीमित-सुरक्षित नहीं होते—उनको हमेशा अध्यवसायी, धुनी और प्रतिमावान प्राप्त किया करते हैं। 'अपोलो-11 की यदि यह विशेषता थी कि चंद्र-यत्रियों ने क्या किया तो अपोलो-11

की उत्कृष्टता इसमे सिद्ध हुइ कि उन्होने उक्त कार्य कैसे किया अपोलो 11 को आकर्षण की भावना ने गई थी जबकि अपोलो-12 के पीछे कर्षण की इच्छा थी

अपोलो-12 की उडान के साधारणतया निम्नलिखित उद्देश्य निश्चित किए गए थे।

(1) अध्ययन के निमित्त और अधिक चद्र-शैल-खंड एकत्रित करके लाना,

(2) चद्र-तल पर मानवीय कार्य-क्षमता की जांच करना;

(3) दीर्घकालीन परीक्षणों के लिए चद्र-तल पर वैज्ञानिक यंत्र स्थापित करना; और

(4) भविष्य मे उतरने के लिए नियत स्थानों के चित्र लेना (जिसके लिए अंतरिक्ष यात्रियों ने चंद्र-कक्षा में अपेक्षाकृत एक दिन अधिक लगाया)।

अपोलो-12 का लक्ष्य 'अंधड़-सागर' नामक मैदान था। इस यान के यात्री चार्ल्स कॉनराड गार्डन कूपर और एलेन बीन थे। इनमें कॉनराड और बीन को चंद्र-धरातल पर उतरना था तथा कूपर को मुख्य यान को चांद के चक्कर कटाते रहना था। इस उड़ान की अवधि 10 दिन, 4 घटे और 35 मिनट तय की गई थी।

अपोलो-12 की उड़ान भी कई कारणो से अपोलो-11 की उडान से सर्वथा भिन्न हो गई थी : अपोलो-12 ने 14 नवंबर, 1969 को भारतीय समय के अनुसार रात को 9.52 पर प्रयाण करना था। 13 नवंबर को ही एक द्रव-उद्‌जन-टैंक रिसने लगा जिसके कारण एक बार तो ऐसा लगा जैसे उडान स्थगित हो जाएगी लेकिन इजीनियरो ने उक्त टैक को ही बदल दिया। अपोलो-12 की उड़ान के समय वर्षा हो रही थी तथा केप कैनेडी पर अंधड़ चल रहे थे जो कि शायद इसके 'अन्धड सागर' में उतरने के पूर्व प्रतीक थे; उड़ान के समय क्षेपण-स्थल पर अमरीका के उप राष्ट्रपति एग्न्यू के साथ उक्त महादेश के राष्ट्रपति निक्सन भी उपस्थित थे, नियत समय पर आपोलो-12 के ऊपर उठने के 45 सेकेण्ड बाद संभवतः यान पर बिजली गिरी जिसके फलस्वरूप आदेश कक्ष में खतरे की तमाम बत्तियां एक साथ जल उठीं एव क्षणिक तौर पर यान की संचार-व्यवस्था भंग हो गई।

जिस समय अपोलो-12 पृथ्वी से 4,270 मील की दूरी पर था तो चंद्र-यान को, जो मुख्य यान से पीछे शनि-प्रक्षेपक के ऊपरी भाग मे संभालकर रखा हुआ था, मुख्य यान से जोड़ दिया गया तथा शनि-5 के तीसरे चरण को कार्य-मुक्त कर दिया गया जिसने काफी दूर तक अपोलो-12 का पीछा किया। चंद्र-यान के जुड़ने का दृश्य टेलीविज़न पर भी प्रसारित हुआ।

ह्यूस्टन-स्थित नियंत्रण-केंद्र ने टेलीविज़न चित्रों में दिखाई पड़ने वाले सफेद धब्बों के विषय मे पूछताछ की। इस पर कॉनराड ने उत्तर दिया, 'यहां पर बर्फीले बादलों जैसी कोई चीज़ है।'

ख्याल किया जाता है कि वर्षा का जो पानी यान की खिड़कियों पर एकत्र हो गया था, वही अंतरिक्षीय शीत के कारण घनीभूत हो गया था।

चद्र-यान के सब्द्धीकरण के आतारक्त ने पृथ्वी के भी चित्र भेजे, जिस पर बादल छाए हुए थे।

अपोलो-12 की यह चंद्र-उड़ान सर्वथा निर्विघ्न चल रही थी। यान पृथ्वी से लगभग तीन लाख किलोमीटर की दूरी पर था तथा 3,000 किलोमीटर से कुछ अधिक रफ्तार से आगे बढ रहा था। नियत्रण-केंद्र के सकेत पर आदेश-कक्ष में लगी घटी ज्यो ही बजी, कॉनराड ने 'शुभ प्रात.' कहकर सद्भावना व्यक्त की।

कॉनराड ने कहा, 'हम तीनो तैयार हो रहे है। बस, चंद मिनटों मे आपकी सेवा मे उपस्थित हो जाएगे।'

थोड़ी देर बाद गॉर्डन ने बतलाया, 'हम तीनो दात साफ कर चुके हैं, नाश्ता कर चुके है और बाल संवार चुके है। आज दाढ़ी बनाने का भी विचार है।'

नियत्रण-केंद्र : 'ऐसा प्रतीत होता है कि लोग कही जाने की तैयारी कर रहे है। आखिर यह सजधज कहां के लिए हो रही है।'

कॉनराड : 'हम कही जा रहे हैं पर यह ज्ञात नहीं कि कहां।'

'लेकिन हमें ज्ञात है।' नियंत्रण केंद्र ने उत्तर दिया।

जिस समय अपोलो-12 चंद्र-गुरुत्वाकर्षण की पकड मे आता जा रहा था तो यात्रियो ने एक दीर्घकालीन टेलीविजन चित्र-शृंखला भेजी। यह चित्र-शृंखला चद्र परिक्रमा-पथ में प्रवेश से पूर्व की जाच-पड़ताल के दौरान भेजी गई। इन चित्रो में निकट आता चाद तथा दूर जाती पृथ्वी—दोनो का ही प्रर्दशन किया गया। इसके अतिरिक्त 'यॉकी क्लिपर' (मुख्य यान) तथा 'इंट्रेपिड' (चद्र यान) के यत्र-सयंत्रो को भी हमारी पृथ्वी के निवासियों को दिखलाया गया।

इस टेलीविजन चित्र शृंखला का समापन गॉर्डन ने इन शब्दो के द्वारा किया—'हम तीनो स्वस्थ चित्त हैं। हमने व्यायाम किया है, डटकर सोए हैं, भोजन श्रेष्ठ रहा है तथा पीने के लिए पर्याप्त ठंडा पानी हमें मिला है। यहां की दृश्यावली ने हमें बड़ा सुख दिया है। केवल एक ही वस्तु का अभाव हमें खल रहा है—हमारी भूमि के अच्छे लोग।'

उन्होंने अलग-अलग खिड़कियों से उज्ज्वल-श्वेत अर्द्ध भूमि तथा उत्तरोत्तर बढ़ते हुए चंद्रमा के दर्शन कराए। तब बीन ने कहा, 'यह बात कही जा चुकी है पर यह दृश्य यथार्थ में ही कौतुकपूर्ण है।'

चाद की कक्षा में घूमते हुए एक और टेलीविज़न-प्रदर्शन किया गया। उस समय यान से चंद्र-भूमि की दूरी 110 किलोमीटर से लेकर 118 किलोमीटर तक थी। इट्रेपिड को यांकी क्लिपर से असंबद्ध करने से पूर्व चंद्र-कक्ष के सभी कल-पुर्जों की जांच-पडताल की गई जो कि हमारी भूमि से प्रयाण करने के बाद चौथी जांच पड़ताल थी।

इंट्रेपिड के सभी कल-पुर्जे बिल्कुल ठीक थे तथा मुख्य यान से अलग होकर चद्र-यान अपने लक्ष्य की ओर उतरने लगा। उतरते समय चंद्र-यात्री यान की ऊचाई, गति और कोण के विषय में जानकारी देते चल रहे थे।

स समय इंट्रेपिड चंद्र-तल से कुछ सौ फीट ही ऊपर था तो चंद्र यात्रियों गंतव्य पहचान लिया तथा उनमें से एक ने कहा वह रहा

तत. 12 बजकर 24 मिनट तथा 17 सेकंड पर इंट्रेपिड अंधड़ सागर में पूर्व स्थल-बिंदु पर सुरक्षित रूप से उतर गया। तब अंधड़ सागर-आधार-शिविर ाड ने सूचना दी –

म बिल्कुल ठीक है।'

सा कि अब भली-भांति ज्ञात है, अंधड़ सागर कोई सागर नहीं है। हां, जिस ट्रेपिड वहां उतरा तो धूल उड़ने से यह भ्रम अवश्य हुआ जैसे वे शुष्क सागर हों, जहां आंधी अंधड़ चलते रहते हों क्योंकि चन्द्र यात्रियों के वहां उतरने कि कुछ क्षणों तक तो धूल के कारण कुछ दिखाई ही नहीं दिया।

गभग चार घंटे बाद कॉनराड चंद्र-तल पर चरण टिकाने वाला तीसरा व्यक्ति । चांद की भूमि पर पांव रखते हुए उसने कहा, 'नील के लिए (पहला) कदम छोटा रहा हो पर मेरे लिए बड़ा है।'

यह आर्मस्ट्रांग के प्रथम वाक्य की पैरोडी थी। कुछ समय बाद एलेन बीन ने मित्र से जा मिला। वास्तव में बीन चन्द्र-तल पर उतरने के लिए अत्यन्त रहा था। इंट्रेपिड से नीचे उतरते ही उसने कहा था, 'बाहर निकलने के मामले तीक्षा नहीं कर सकता।'

प्रथम संचरण में कॉनराड और बीन को चंद्र-शैल-खंडों के नमूने एकत्र करने एक भू-भौतिक प्रयोगशाला चंद्र-भूमि पर स्थापित करनी थी।

चंद्र-यात्रियों का जिस दृश्य ने चंद्र-तल पर स्वागत किया वह था चंद्र उषाकाल त्र। पश्चिम की ओर से उभरते हुए सूर्य के कारण इंट्रेपिड का बाह्य रेखाकार डा साया बनकर छा रहा था। चारों ओर धूप जगमगा रही थी और सर के ी घोर स्याही जिसके विषय में कॉनराड ने कहा, 'चंद्रमा के चारों ओर का जितना गहरा घनघोर काला है, वैसी कालिमा आज तक नहीं देखी...काले कोयले जैसा काला।'

संचरण-काल में सबसे बड़ी निराशाजनक दुर्घटना जो हुई, वह थी टेलीविजन का खराब हो जाना जो प्रयत्नों के बाद भी बेकार रहा।

पर इसके बाद का संपूर्ण कार्य-क्रम उचित एवं उत्साहवर्धक ढंग से चला जिसमें का झंडा फहराना, शैल-खंड एकत्र करना तथा चंद्र-भूमि पर एक भू-भौतिक शाला स्थापित करना शामिल था।

वास्तव में चांद को पूरे सौरमंडल के सृष्टि-रहस्य की कुंजी समझा जा रहा लिए चांद के साथ अनेक प्रश्न जुड़े हुए हैं : चांद की उत्पत्ति कैसे हुई ? क्या चांद की भूमि में और हमारी भूमि में कुछ मौलिक अंतर है ? यदि कौन-से तथा किस प्रकार के ? पिछले करोड़ों वर्षों में चंद्रमा का विकास किस हुआ है ? आज चांद मृत है या जीवित ? वह अपने आरम्भिक क्षणों में ?

या आतम ? चाद पर जीवन क्या नहीं है ? क्या वहा कभी जीवन था अथवा भविष्य में हो सकता है

चद्र-तल पर भू-भौतिक प्रयोगशाला

ऐसे ही अनेक प्रश्न चंद्रमा के साथ सबद्ध हैं। क्योंकि जहां मानव की यह इच्छा रही है कि वह चाद तक पहुचे, उसे छुए, वहीं उसकी यह इच्छा भी कम बलवती नहीं रही कि वह चांद को समझे, उसे ठीक से जाने-पहचाने। और इसी जान-पहचान की खातिर एक भू-भौतिक प्रयोगशाला चांद पर ले जाई गई थी।

यह प्रयोगशाला एक यंत्र-समूह था जिसमें पांच प्रकार के प्रयोगो के यत्र थे (1) कप मापी यंत्र—यह यत्र चांद के कपनो तथा चंद्र-भूमि से टकराने वाले उल्का-कणो की प्रक्रिया को मापने वाला यत्र था। यह यत्र अपोलो-11 के यात्रियो द्वारा स्थापित यत्र की अपेक्षा कहीं अधिक विकसित, उन्नत और टिकाऊ था। (2) चुम्बकमापी यत्र—चद्र-तल पर गुरुत्व का आकर्षण समान नहीं है। यह यंत्र वहा के क्षीण गुरुत्वाकर्षण-शक्ति वाले क्षेत्रों और उनके भीतर भागों के चुबकीय पदार्थ को मापने के लिए था। (3) वातावरण सूचक यत्र—इसके द्वारा चंद्र-धरातल के ऊपर उपलब्ध होने वाले अणु-परमाणुओं की जानकारी प्राप्त करके यह मालूम किया जा सकता था कि क्या चांद पर थोडा-बहुत वातावरण है। (4) सौर वायु मापक यंत्र—इस यत्र के द्वारा उन हवाओ और आंधियो की नाप-तौल की जानी थी जो सूर्य के उठने वाली ज्वालाओं के परिणामस्वरूप चलती है तथा सौर-कणो को चंद्र-तल तक पहुंचाती है। (5) अयन जांचक यत्र—यह यत्र इसलिए था कि चद्र-तल के ऊपर के विद्युत-कणो को माप सके।

यह पूरी-की-पूरी प्रयोगशाला 'अपोलो ल्यूनर सरफेस एक्सपेरीमेंट्स पैकेज' के नाम से अभिहित की गई थी। यह पूरी प्रयोगशाला आणविक उत्पादक आइसोटोप प्रणाली से चालू की गई जो कि पृथ्वी से बाहर किया जाने वाला प्रथम कार्य था। इस आणविक प्रणाली से गतिशील यत्र-पुज रेडियो द्वारा सभी सूचनाएं पृथ्वी पर भेजने में सक्षम था।

दोनो चद्र-यात्रियों ने यह प्रयोगशाला सफलतापूर्वक चद्र-तल पर स्थापित की।

इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने काम के चंद्र-शैल-खंड भी एकत्र किए तथा एकत्रीकरण से पूर्व और बाद में उक्त स्थानों के चित्र लिये जहा-जहा से वे नमूने उठाए गए थे। कॉनराड और बीन ने गर्तों के किनारो से भी नमूनों का चयन किया क्योंकि यह विश्वास किया जा सकता है कि विवरों के तटों पर पड़ी चद्र-शिलाएं चाद के अत्यन्त अदरूनी पदार्थ से बनी हुई हैं तथा इन चटटानो के टुकड़े चांद के हृदय की बातें बतला सकते हैं।

कुल मिलाकर इस बार 90 पाउड वज़न के शैल-खंड इकट्ठे किए गए पर एकत्रीकरण मे कठिनाई कुछ नहीं हुई। सच तो यह है कि नील आर्मस्ट्रांग और एड्विन

एल्ड्रिन ने जिस सावधानी और संकोच से चंद्र भूमि पर पांव बढ़ाए थे उनका वर्णन पढ़कर भारतीय नवविवाहिता की सलज्ज चाल का स्मरण हो उठता है परंतु कॉनराड और बीन के विषय में यह बात नहीं कही जा सकती ये दोनों निर्भयतापूर्वक चले और निश्चितता से चांद पर कार्य किया।

वास्तव में गुरुत्वाकर्षण की कमी के कारण चंद्र-भूमि पर कार्य करना अपेक्षाकृत सरल है। कॉनराड ने बाद में बतलाया, 'हम थके नहीं थे। हम और काम कर सकने के योग्य थे।'

इन लोगों को एक बार में केवल चार घंटों तक कार्य करने की अनुमति दी गई थी लेकिन इनका ख्याल था कि चंद्र-यात्री इससे दुगुनी अवधि तक भी सतत रूप से कार्यरत रह सकते है।

अपोलो-12 के यात्रियों ने पत्थर चुगने के तरीके मे भी सुधार खोज निकाला। पहले ऐसा समझा जाता था कि यदि मनुष्य चांद की धरती पर गिर जाए तो उसका उठना कठिन होगा किंतु क्षीण गुरुत्व के कारण वास्तविकता इसके विपरीत है। यदि वहां की भूमि पर गिरा हुआ आदमी थोड़ा-सा झटका अपने शरीर को दे तो स्वयं को उठा हुआ पा सकता है। यही तरीका पत्थर उठाने में बरता गया। चंद्र-यात्रियों को जो भी नमूना भला लगा, वे उस पर पड़ गए और तब नमूने सहित झटके के साथ उठ खड़े हुए।

20 नवंबर, 1969 का दिन चंद्र-यात्रियों के लिए और भी अधिक उत्सुकता से भरा हुआ था। इस तिथि को दोनों यात्रियों ने लगभग 200 मीटर की दूरी पर पड़े सर्वेयर-3 की यात्रा करनी थी तथा उसके कुछ अंश परीक्षण के लिए पृथ्वी पर वापस लाने थे।

कॉनराड ने चंद्र-यान से बाहर पांव रखते ही कहा, 'देखिए, मैं फिर चांद के धरातल पर पहुंच गया हूं।'

उस सयम 9 बजकर 31 मिनट हुए थे; 9 मिनट बाद ही एलेन बीन भी कॉनराड से जा मिला। कॉनराड ने बतलाया 'चंद्र-यान के चारों ओर की सामग्री सूर्य के आलोक में ऐसी दिखाई पड़ रही है जैसे भली-भांति हलवाहा खेत। यहां पर रंग गहरा भूरा है जबकि अन्य स्थानों पर वही हल्का भूरा नजर आता है।'

चंद्र-यात्री पूर्व की ओर बढ़ते हुए उस विवर की ओर जा रहे थे, जहां सर्वेयर-3 मौन साधना में लीन पड़ा था। इस संचरण के दौरान कॉनराड और बीन—दोनों ही रुचिकर व उपयोगी नमूने एकत्र करते रहे तथा अंततः कई गर्तों के आसपास से गुजरते हुए 10 बजकर 48 मिनट पर अपने लक्ष्य स्थल पर पहुंच गए।

दोनों यात्रियों ने सर्वेयर की परिक्रमा और अध्ययन से पूर्व थोड़ा आराम किया। सर्वेयर के आस-पास की भूमि ऊंची-नीची थी।

कुछ वैज्ञानिकों को यह आशंका थी कि चंद्र-तल पर बने हुए विवर और गर्त चंद्र-यात्रियों के लिए खतरनाक सिद्ध हो सकते हैं। बहुत मुमकिन है, जो व्यक्ति

विवर मे उतर वह लौटकर ऊपर न आ सके किंतु अपोलो 12 के यात्रियो के साथ ऐसी कोइ अप्रिय दुर्घटना नही घटी। विवर मे उतरकर न केवल इन्होने मानव-रहित यान का अध्ययन किया, बल्कि उसके कुछ भाग परीक्षण के निमित्त निकाल भी लिये।

यान के पास पहुचते ही चद्र-यात्रियो ने यह जानने की इच्छा प्रकट की कि जिस समय 1967 मे उक्त यान भूमि से छोडा गया था तो उसका रंग कैसा था ?

नियंत्रण-केंद्र ने उत्तर दिया, 'सफेद।'

'मगर अब यह ताम्रवर्णी हो गया है।' कॉनराड ने कहा, 'सूर्य ने इसको पका दिया है।'

सर्वेयर यान ने चांद की भूमि पर उतरते हुए जिन गड्ढो का निर्माण कर दिया था, वे यथावत् कायम थे।

चद्र-यात्रियों ने सर्वेयर-3 मे लगे हुए टेलीविजन कैमरे को, चंद पेचों को, तार के टुकड़े को तथा काच के एक टुकडे को निकाल लिया। ये चीजे वापस पृथ्वी पर लानी थीं। साथ ही उन्होंने धूल की चादर ओढ़े सर्वेयर-3 के कुछ चित्र भी लिये। पर 31 महीनों के प्रवास काल मे उक्त मानव-रहित यान का बाल भी बांका नहीं हुआ था। और तो और, उसका कांच तक क्षतिग्रस्त नहीं हुआ था।

जो वस्तु चंद्र-परिवेश में इतने दिनो तक पड़ी रही, उस पर पड़े प्रभावो का अध्ययन अगली उडानो के लिए बडा लाभदायक सिद्ध हो सकता था। देखने की असली बात यही थी कि जो धातुएं तथा पदार्थ सर्वेयर-3 पर लगे हुए थे, उनकी शक्ति-सामर्थ्य का किस सीमा तक ह्रास हुआ था।

इसके अतिरिक्त सर्वेयर-3 में लगे कैमरे के तार पर कुछ अति सूक्ष्म जीव आरोपित करके भेजे गए थे। उनकी अवस्था के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलने की सभावना भी थी कि 'विदेशी' जीवन चाद पर कितने समय तक चल सकता है। इन निष्कर्षो में दिलचस्पी के कारण हैं : चाद पर वातावरण नहीं है (नवीनतम जानकारी के अनुसार चाद पर पृथ्वी के वातावरण का दस लाखवां भाग मौजूद है) जिसके कारण उल्कापातों, ब्रह्माड-किरणो तथा सौर-कणों की वर्षा के लिए वहां किसी प्रकार की रुकावट नहीं है। तापमान शून्य से 250 अक्ष ऊपर और 250 अक्ष नीचे तक घूमता है। गुरुत्व तो दुर्बल है ही। फिर सर्वेयर-3 को इन परिस्थितियो मे रहने का पर्याप्त अवसर मिला था। उसने उस हालात मे 14 दिन लबे दिन तथा 14 दिन लबी रातें लगभग 30 बार व्यतीत की थीं। अतः सर्वेयर-3 की न बोलने वाली वाणी से मिलने वाली रिपोर्ट आगामी अन्वेषण-अभियानो के लिए बड़ी मूल्यवान थी।

सर्वेयर-3 की सही सलामत प्राप्ति तो किसी अज्ञात कोष को पा जाने के समान थी। पर इसकी खोज-खबर का हाल आंखों को नहीं मिला—केवल कानों को मिला क्योंकि चंद्र-यात्रियो के प्रयत्नों के बावजूद दूरदर्शक कैमरा ठीक नहीं किया जा सका।

कॉनराड और बीन ने चद्र-तल पर एक और प्रकार के भी परीक्षण किए उन्होने पत्थर लुढ़काए ताकि कंपन मापी यंत्र की गति-विधि ह्यूस्टन स्थित नियंत्रण-केंद्र को

पता चल जाए। किंतु कंपन-मापी यंत्र का सबसे महत्त्वपूर्ण परीक्षण उस समय हुआ जबकि चांद पर कृत्रिम भूचाल की सृष्टि की गई।

असल में जिस समय इंट्रेपिड मुख्य यान यांकी क्लिपर में सबद्ध हो गया तो दोनों चंद्र-यात्री मुख्य यान में लौट आए तथा अपने तीसरे मित्र गॉर्डन से आ मिले। साथ ही 90 पाउंड वजन के शैल-खंड भी वे अपने कक्ष में उठा लाए। इसके बाद उन्होंने चंद्र-कक्ष के आरोह उपविभाग को (अवरोह उपविभाग तो चंद्र-तल पर छूट ही गया था) ऐसे ढंग से पटका कि वह उस स्थान से कोई 45 मील के फासले पर जा टकराया, जहां वह पहले उतरा था।

यह परीक्षण पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार किया गया परंतु इसका परिणाम सर्वथा अप्रत्याशित हुआ। चंद्र-तल में से टकराहट के फलस्वरूप ऐसी ध्वनि आनी आरंभ हो गई जैसे कि कोई घण्टी बज रही हो। यह टनटनाहट लगभग एक घंटे तक चलती रही और कंपनमापी यंत्र के द्वारा हमारी पृथ्वी पर पहुंचती रही।

इस परीक्षण के विषय में एक वैज्ञानिक का मत था 'अपनी पृथ्वी पर ऐसा कुछ हममें से किसी ने नहीं देखा। इस स्वरूप से तो हम लोग बिल्कुल ही अपरिचित है। मेरे विचार से इसके माध्यम से चांद के संबंध में कोई अधिक बड़ी जानकारी हाथ लगेगी।'

अपोलो-12 की वापसी उड़ान पूर्ववत् विशेष घटना रहित थी। और तो और, विमान-वाहक हॉर्नेट पर उनकी वापसी तथा क्वारण्टीन भी पूर्ववत् ही थी। पर फिर भी अपोलो-11 और अपोलो-12 में बहुत अंतर था। अपोलो-11 की उड़ान ऐतिहासिक महत्त्व की थी तथा जनसाधारण के लिए रुचिकर थी, जबकि अपोलो-12 की उड़ान वैज्ञानिक अन्वेषण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण थी तथा उसका महत्त्व वैज्ञानिकों के लिए ही अधिक था। कॉनराड ने जो उतरते समय कहा था, 'नील का कदम छोटा था, मेरा तो बड़ा है,' उसका केवल यही अर्थ नहीं था कि कॉनराड को चांद पर उतरने के लिए अपेक्षाकृत बड़ा कदम रखना पड़ा था अथवा वह चांद पर चरण टिकाने को अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व दे रहा था, बल्कि इसका फलितार्थ यह भी था कि वैज्ञानिक उपलब्धि की दृष्टि से उनका कदम बड़ा है। इस कदम के विषय में डॉ. स्नाइडर नामक एक वैज्ञानिक ने कहा था :--

'यह वाकई बहुत बड़ी छलांग है—कदाचित् चंद्रमा को समझने की दिशा में हमारे द्वारा लगाई गई सबसे बड़ी छलांग।'

अपोलो-11 और अपोलो-12 की उड़ानों में साधारणतया निम्नलिखित भिन्नताएं थीं :--

अपोलो-11 की कुल उड़ान-अवधि थी 8 दिन, 3 घंटे, जबकि अपोलो-12 की थी 10 दिन तथा 4 घंटे से अधिक। अपोलो-11 शांत-सागर में उतरा था; उसके विपरीत अपोलो-12 का लक्ष्य तूफानों का सागर था। अपोलो-11 का चंद्र-कक्ष ईगल चंद्र-तल पर 21 घंटों से अधिक समय ठहरा था जबकि-अपोलो-12 का इण्ट्रेपिड

31 घण्टा से अधिक समयावधि तक ठहरा रहा अपोलो 11 के यात्री केवल एक बार चद्र-तल पर निकले थे जबकि अपोलो 12 के यात्रियों ने दो बार संचरण किया अपोलो-11 के यात्री अपने यान से 100 मीटर के अंदर ही घूम सके पर अपोलो-12 के यात्रियों ने 1,000 मीटर की दूरी वाली चहलकदमी का आनद उठाया। परीक्षण भी अपोलो-12 ने अपोलो-11 से दुगुने किए।

उपलब्धियां

मुख्य रूप से अपोलो-12 की चार उपलब्धियां स्वीकार की जाती हैं :

(1) पूर्व-निर्धारित लक्ष्य-बिंदु पर उतरना। इसी सफलता के फलस्वरूप शनि-5 प्रक्षेपक के जनक वर्नर व्हान ब्रॉन ने कहा था, 'यह उडान पर्याप्त रूप से यह सिद्ध करती है कि वैज्ञानिक जहां जाना चाहें, जा सकते है तथा जहा चाहें उतर सकते है।'

(2) 'भू-भौतिक प्रयोगशाला की स्थापना जिसमें पाच प्रकार के परीक्षण यन्त्र थे तथा जिनका सचालन आणविक ऊर्जा द्वारा होना था। इस सिद्धि पर डॉ. ब्रॉन ने अपनी प्रतिक्रिया इन शब्दो में प्रकट की थी, 'हमने सिद्ध कर दिया कि चांद पर मील भर चला जा सकता है तथा हर प्रकार के कार्य और वैज्ञानिक प्रयोग किए जा सकते हैं।'

(3) भूगर्भ-शास्त्र के अनुसार 90 पाउंड शैल-खंडों का सावधानी वाला चुनाव किया गया जिसमे किसी भी उपयोगी प्रतीत होने वाले पत्थर को नहीं छोडा गया। इसके विषय मे डॉ शूमेकर का मत था : अतरिक्ष-यात्री जो नमूने लाए है वे रासायनिक प्रकृति और खनिज रचना की दृष्टि से अपोलो-11 के अंतरिक्ष-यात्रियों द्वारा एकत्रित किए गए नमूनों से भिन्न हैं।'

(4) विवर में उतरना तथा सर्वेयर-3 के कुछ अंशों को वापस पृथ्वी पर लाना ताकि चद्र-परिवेश मे हमारी पृथ्वी के पदार्थों पर हुई प्रतिक्रिया का अध्ययन हो सके।

चंद्रमा अभी तक देवताओं का देश था। मनुष्य के प्रवेश की तो वहा कल्पना भी नही की जा सकती थी। अपोलो-11 ने इस मिथक को तोडा अवश्य था किंतु आम आदमी के मन में यह मिथक अभी भी बैठा हुआ था। बहुत से लोगों की तो धारणा थी (और है) कि चांद पर मनुष्य पहुंचा नहीं है। अमरीकी अंतरिक्ष-विज्ञान ने इसी पृथ्वी पर फोटो खींचकर कहीं ऊपर से टेलीविजन पर दिखला दिए है।

ऐसे लोगों की भी संसार में कमी नहीं है जो यह तो मानते थे कि मनुष्य चांद पर चला गया है तथा वहां से सकुशल लौट भी आया है पर वे इस सफलता को एक आकस्मिक घटना ही मानते थे। उनके विचार से यह एक संयोग मात्र ही था कि अपोलो-11 चद्रमा की सैर कर आया था।

किंतु अपोलो-12 ने मनुष्य के सभी संदेहो की रेतीलो दीवारो को धराशायी कर दिया तथा यह स्थापित कर दिया कि अब मनुष्य के हाथ में वह तदबीर है

जिसके द्वारा वह जब चाहे चांद पर जा सकता है तथा लौटकर आ सकता है

और चांद ही क्यों, जिस तरीके से वह चांद पर पहुचा है, वही तरीका अन्य ग्रहों पर पहुचने के लिए भी कारगर हो सकता है—अन्य सौर-मंडलों पर मंडराने के लिए भी उपयोगी सिद्ध हो सकता है, अन्य नीहारिकाओं में उतरने के काम भी आ सकता है। गरज कि मनुष्य चंद्र-विजय वाले मंत्र के ही व्यापक प्रयोग से समूचे अंतरिक्ष को छान सकता है। अंतरिक्ष मानव के लिए निषिद्ध नहीं है। वह तो एक ऐसा अनन्त विस्तार है जो उन्ही प्राकृतिक नियमों से अनुशासित है, जिनसे हमारी पृथ्वी, हमारा चांद और हमारा सौरमंडल। अंतरिक्ष-अभियान के भगीरथ डॉ वर्नर व्हॉन ब्रॉन ने अंतरिक्ष के विषय में यह आशा भरी उक्ति व्यक्त की है :

'अंतरिक्ष सुंदर एवं व्यवस्थित है। अंतरिक्ष में नियमितता है तथा उसके विषय में पहले से बात कही जा सकती है। अंतरिक्ष का एक-एक कण पदार्थ-विज्ञान के नियमों का पालन करता है। यदि हमें ये नियम ज्ञात हो तथा हम उनका पालन करें तो अंतरिक्ष हमारा स्वागत करेगा।'

18 दिक् काल (ीन) आयामो से आगे

(Beyond The Dimensions Of Time and Space)

अपोलो-11 (और 12) मानव-इतिहास का सबसे अधिक चौंका देने वाला करिश्मा था जिसने थोड़े-से समय के लिए तो देश-देशांतरों की, जाति-धर्मों की तथा विकसित-अविकसित की कृत्रिम दीवारों को धराशायी कर दिया तथा हमे ये सोचने पर विवश किया कि मूल रूप में मनुष्य एक है—मनुष्यों के मध्य के सभी भेद-भाव मानव-निर्मित हैं तथा आधारहीन हैं। लेकिन मनुष्य के चंद्रमा पर चरण टिकाते ही (और अपनी पृथ्वी पर लौटते ही) हमारे समस्त पूर्वाग्रह पुनः जीवित हो उठे तथा वे फर्क हमें फिर से नज़र आने लगे, जिनसे हम अभी तक आक्रांत थे।

केवल यही नही बल्कि ऐसा भी प्रतीत होता है कि मानव-मन मे जो उत्साह और उल्लास चंद्र-विजय के निमित्त उमड़ पड़ा था, वह ऐसे ढीला पड गया जैसे समुद्र का पानी ज्वार की स्थिति के उपरांत उतर जाया करता है, यद्यपि अपोलो-अभियान की शृंखला का यह सिलसिला अपोलो-20 तक पहुंचना है तथा चंद्रमा का अन्वेषण अभी होना है।

सामान्य मानव-मन की इस स्थिति का कारण यह प्रतीत होता है कि हमने चंद्र-विजय को फिलहाल मानव के अंतरिक्ष-अन्वेषण-अभियान का समापन समझा है जबकि यह मात्र आरंभ है। हम शायद यह समझ बैठे है कि जबकि अपने निकटतम पडोसी चाद तक पहुचाने में हमें लाखों साल लगे है तो देखें, आगे बढ़ने में अभी और कितना समय लगता है !

हमारी उत्साहहीनता का दूसरा कारण भी है : हमे ब्रह्माड के विस्तार का यत्किंचित् ज्ञान हो गया है। यह ज्ञान निश्चय ही क्रमशः हुआ है। आरभ मे विश्व (ब्रह्मांड) बहुत ही छोटा माना जाता था। ऋग्वेदकालीन आर्य ब्रह्माड को अपनी पृथ्वी से दस-बीस गुना बड़ा ही मानते थे। तभी तो एक स्थान पर कहा गया है :

यदिन्चिन्द्र पृथिवी दशभुजिरहानि विश्वा ततनन्त कृष्टयः।
अत्राह ते मघवन् विश्रुतं सहोद्यामनु शवसा षर्हण भुवत्।।

—1 । 105 ।11

अर्थात् हे इंद्र, यदि पृथ्वी दस गुनी बड़ी होगी और मनुष्य अमर रहेंगे, तभी

हे, मघवन् शक्ति व पराक्रम से संपन्न तुम्हारा प्रभाव द्युलोक जैसा विशाल होगा।

स्पष्ट ही है कि विश्व को पृथ्वी से बहुत अधिक बड़ा नहीं बतलाया गया है।

हमारे ज्योतिष शास्त्र के अनुसार भी पृथ्वी को विश्व के मध्य भाग में माना गया है। 'त्रैलोक्य संस्थान' (अध्याय 13) में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि विश्व के मध्य भाग में पृथ्वी है जिसके चारों ओर क्रमश: चंद्र, बुध, शुक्र, सूर्य, मंगल, वृहस्पति, शनि और तारक मंडल घूम रहे हैं।

इस स्थिति में परिवर्तन किया यूनानी वैज्ञानिक पाइथागोरस ने। उसने सूर्य को विश्व का केंद्र माना जिसके चारों ओर पृथ्वी आदि ग्रह घूम रहे हैं।

सृष्टि की जानकारी बढ़ने के साथ-साथ हमें अपनी आकाश-गंगा का पता चला तथा आकाश-गंगा को ही ब्रह्मांड का केंद्र माना जाने लगा किंतु अब ऐसी बात नहीं है। अब तो हमारी पृथ्वी की स्थिति ब्रह्मांड में ऐसी ही नगण्य स्वीकार कर ली गई है जैसे कि सहारा में रेगिस्तान का एक कण। किंतु अब तो हम उसकी विराटता पर विचार-विमर्श करते हैं। हमें यह ज्ञात है कि हमारी पृथ्वी हमारे सौर-मण्डल का एक सामान्य ग्रह है (हमारे सौर मंडल में सूर्य के अतिरिक्त 9 ग्रह, 31 उपग्रह तथा लगभग 2000 लघु ग्रह हैं) और हमारा सौर-मंडल हमारी नीहारिका आकाश-गंगा का एक अदना-सा सदस्य है। ज्ञात रहे, हमारी आकाश-गंगा में एक खरब से अधिक सूर्य हैं जिनमें से अनेक के अपने ग्रह व उपग्रह हैं। अब हमारी नीहारिका सम्पूर्ण नीहारिका-पुंज की एक सामान्य इकाई है। नीहारिका-पुंज में दस करोड़ नीहारिकाओं की संख्या का अनुमान है।

सम्भव है, उपर्युक्त विश्लेषण से हमें ब्रह्मांड के विषय में पूरी बात न समझ में आए। जैसा कि सर्वविदित ही है, आकाश की दूरियों को समझने के लिए हमें एक अन्य पैमाने का आश्रय लेना पड़ता है वह पैमाना है प्रकाश-वर्ष, 1 प्रकाश वर्ष = है 5,880,000,000,000 मील, (प्रकाश-मास, प्रकाश-दिवस, प्रकाश-घंटे, प्रकाश-मिनट और प्रकाश सेकेंड)। प्रकाश की गति के हिसाब से चंद्रमा हमसे $1\frac{1}{2}$ प्रकाश-सेकेंड से कुछ कम दूर है। सूर्य 8 प्रकाश-मिनट से कुछ अधिक दूर है। हमारे सौर-मंडल का अंतिम ग्रह प्लूटो सूर्य से लगभग 5½ प्रकाश-घंटे दूर है। हमारे सूर्य के बाद जो निकटतम सूर्य अल्फा सेन्तुरी है, वह हमारे सूर्य से 4 प्रकाश-वर्ष से अधिक की दूरी पर है। सप्त-ऋषि-मंडल के तारे (सूर्य) हमसे कम-से-कम 100 प्रकाश वर्षों के फासले पर हैं। मोटे-तौर पर कहा जाए, तो हमारे सौर-मंडल का व्यास 11 प्रकाश-वर्ष है और आकाश-गंगा का व्यास एक लाख प्रकाश-वर्ष है। हमारी नीहारिका अर्थात् आकाश-गंगा के सबसे अधिक निकट वाली नीहारिका एंड्रोमीडा (देवयानी) है। यह नीहारिका हमारी नीहारिका से लगभग 20 लाख प्रकाश-वर्ष दूर बतलाई जाती है। आधुनिक ज्योतिर्विद् संपूर्ण ब्रह्मांड का विस्तार कम-से-कम 10 अरब प्रकाश-वर्ष मानते हैं जो कि अंतिम निर्णय नहीं है।

इसका कारण यह है कि ब्रह्माड विस्तृत हो रहा है तथा नीहारिकाएं प्रतिक्षण एक दूसरी से दूर हटती जा रही हैं। इनके अतिरिक्त अरबों प्रकाश-वर्षों के फासले पर 'कजार' और 'पल्सर' प्रकाशों की पकड ब्रह्माड को और अधिक दूर खीच ले गई है।

हालांकि ब्रह्माड के विस्तार के विषय में हमारी जानकारी अतिम नही है तो भी जब आम आदमी (और खास भी) इन सर चकरा देने वाली दूरियों की ओर दृष्टि दौड़ाता है तो हताश हो जाता है। उसे लगता है कि आखिर यह छोटा-सा प्राणी--मनुष्य कहा तक पहुंचेगा ओर कब तक पहुंचेगा ?

इसी कारण से जुडा हुआ मानवीय निराशा का एक और भी कारण है और वह है दिक् (स्थान) और काल (समय) के आयामो से हमारा सबद्ध रहना। स्थान और समय की हमारी कल्पना जो कि सुविधा की दृष्टि से की गई थी, इस विषय में घोर असुविधा का कारण बन गई है। अब हम प्रत्येक प्रयत्न को दिक्-काल में बांधकर देखने के अभ्यासी हो गए है। परिणाम यह निकला है कि हम अपने आप को पंगु व असहाय समझने लगे है। उदाहरण के लिए, हमने साधारणतया मनुष्य की आयु 100 वर्ष मानी है अतः अपने वर्षो से प्रकाश-वर्षो की तुलना होते ही हमारा दिल टूट जाता है और हम सोचते हैं कि स्थान और समय के इस अनन्त विस्तार मे हम इस बूंद भर आयु को लेकर क्या कर लेगे ?

इसका एक अन्य कारण भी है : मानव-मन आशा और भय का मिला-जुला रूप है। आशा उसका दैविक-रूप है और भय पशु-रूप। मानव में से पशुता अभी गई नहीं है किंतु देवत्व उसमें आ गया है। यह भय जो कि उसकी पशुता का प्रतीक है, उसे स्वय पर भरोसा नहीं करने देता। वह पर्वत पर चढ़ता है तो नीचे की ओर देखता हुआ चढ़ता है। सागर में बढ़ता है तो पीछे की ओर देखता हुआ बढ़ता है। उसकी यह संशय भरी दृष्टि ख़तरनाक है और यह स्पष्ट करती है कि खतरे की घंटी मन में टनटना रही है।

आज तक मनुष्य ने जितनी प्रगति की है, अपने देवत्व के बल पर की है--आशा के भरोसे पर की है क्योंकि आशा आत्म-विश्वास की जननी है। और यही आशा अपोलो-11 की आरंभिक उपलब्धि को आगे बढ़ा रही है। जहां चद्रमा के और अधिक अन्वेषण के लिए 20 की सख्या तक अपोलो-यान और भेजे जाने वाले है, वहा पृथ्वी के निकट वाले दो ग्रहो--मंगल और शुक्र की दिशा में कार्य आरभ हो चुका है। इन दोनो ही ग्रहो के पास से अमानव यान गुजारे गए है तथा उनके द्वारा प्रारम्भिक सूचनाए व चित्र प्राप्त किए गए हैं। शुक्र पर तो सोवियत वैज्ञानिको के द्वारा वैज्ञानिक यत्रों का थैला भी उतारने की चेष्टा की जा चुकी है। नासा के प्रशासक टॉमस पेन के अनुसार, 'हम आज से आठ वर्ष पूर्व चांद से जितने दूर थे, आज उसकी अपेक्षा मगल के कहीं अधिक करीब हैं।' इस कथन से यह आशय तो निकाला ही जा सकता है कि अगले एक-दो दशकों के दौरान मंगल

की भूमि पर मानव चरण पड़ना निश्चित [illegible]

इसके अतिरिक्त पृथ्वी के चारों ओर घूमने वाला एक अंतरिक्ष स्टेशन बनाने की भी तैयारी हो रही है अमरीका और रूस—दोनों ही इस दिशा में सक्रिय हैं यह स्टेशन कई दृष्टियों से लाभदायक सिद्ध हो सकता है जैसा कि हमें ज्ञात है, हमारी पृथ्वी के चारों ओर वातावरण का एक खोल है जो कि हमारे लिए अत्यंत उपयोगी होते हुए भी हमें उससे बाहर की वस्तुएं अपने सही रूप में नहीं देखने देता। यदि पहिए के आकार का यह स्टेशन बन जाता है तो वातावरण के धुंधलके की पकड़ से बाहर एक ऐसी वेधशाला निर्मित की जा सकती है तथा उपयोग में लाई जा सकती है जिससे अन्य पिंडों का और अधिक सही व वास्तविक ज्ञान हमें प्राप्त हो सके।

फिर दूर ग्रहों पर जाने के लिए मनुष्य को अंतरिक्ष की भारहीन तथा वायुहीन स्थिति में अधिक-से-अधिक समय तक रहने का अभ्यास करना है जिसके अंतर्गत अनेक अंतरिक्ष-यात्रियों को दिनों की अपेक्षा महीनों (तथा बाद में वर्षों) के लिए अंतरिक्ष-में रखकर उनकी शारीरिक व मानसिक प्रतिक्रियाओं का अध्ययन किया जाएगा, जिससे कि उनमें अधिक काल के लिए लंबी यात्राएं करने योग्य सामर्थ्य को उजागर किया जा सके और आवश्यकतानुसार उसमें वृद्धि की जा सके। यों भारहीनता की समस्या का एक और भी हल निकाला जा सकता है और वह है अंतरिक्ष-यान में ही कृत्रिम गुरुत्वाकर्षण उत्पन्न करना। यदि इस प्रकार अंतरिक्ष-यात्रियों को भार-युक्त किया जा सके तो सम्भवतः भार-हीनता की समस्या से भली-भांति निबटा जा सकता है।

अभी तक अंतरिक्ष-संबंधी सभी प्राविधिक संरचनाएं पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण में ही की गईं किंतु निकटतम भविष्य में यह तथ्य हाथ आ सकता है कि कुछ संयत्रों का निर्माण भारहीनता की स्थिति में अधिक श्रेष्ठ होता है तथा अधिक टिकाऊ होता है। उस पर अंतरिक्षीय यात्रा का दबाव अपेक्षाकृत कम विपरीत प्रभाव डालता है।

इसी प्रकार की और भी अनेक नवीन जानकारियों की दिशा में अंतरिक्ष स्टेशन का निर्माण अत्यन्त उपयोगी हो सकता है।

दूसरी ओर सूर्य के विषय में अधिकाधिक जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न किया जा रहा है। अंतरिक्ष में एक सौर-वेधशाला के निर्माण की बात चल रही है क्योंकि हमारा सूर्य हमारे सौर-मंडल का कुलपति है। हमारे सौर-मंडल की स्थिति सूर्य के ही कारण है। अतः उसके विषय में अधिक-से-अधिक से ज्ञानार्जन अत्यंत आवश्यक व उपयोगी हो सकता है।

1973-80 के दौरान संपूर्ण सौर-मंडल की मानव-रहित यात्रा की भी तैयारी हो रही है क्योंकि इस बीच लगभग सभी ग्रह ऐसी स्थिति में होंगे कि एक ही यान (बहुत हुआ तो दो) सारे ग्रहों की परिक्रमा कर सकेगा तथा उनके विषय में

आवश्यक सूचनाए एवं चित्र आदि भेज सकेगा। वास्तव में अभी हमें अपने सौर-मंडल के ग्रहों-उपग्रहों की अधिक जानकारी है भी नहीं। जब तक हम उनकी जानकारी को पर्याप्त न मान लें तब तक मनुष्य का उनकी ओर प्रस्थान करना संभव नहीं है।

अन्तरिक्षीय व अंतर-नक्षत्रीय यात्राओं को लेकर अनेक प्रश्न पैदा होते हैं : पहला प्रश्न हो सकता है—हमें चांद पर पहुंचने में लाखों साल लगे, मंगल, शुक्र, बृहस्पति, शनि आदि पर पहुंचने में कितने वर्ष लगेंगे तथा अपने सौर मंडल से बाहर जाने में तथा अंततः अपनी नीहारिका से बाहर निकलने मे कितने वर्ष लगेंगे ?

यह निश्चय ही है कि भले ही कल तक इस प्रश्न का उत्तर मनुष्य के पास नहीं था, पर आज है। इसका उत्तर है प्राविधिक विकास की रफ्तार। इस तथ्य के विषय में दो मत नहीं हो सकते कि तकनीकी क्षेत्र में जितनी ज़बरदस्त क्रांति पिछले दशक (दस वर्षों) में हुई है, उतनी पिछले दस लाख वर्षों में नहीं हुई थी। तथा जिन वैज्ञानिकों के प्रयत्नों का फल अपोलो-अभियान है, उनमें से अधिकांश न केवल अभी जीवित हैं, बल्कि दुगुनी लगन से आगे के कार्यों मे व्यस्त हैं। यह क्रांति एक सीमा तक मनुष्य को अपने सौर-मंडल की सैर कराने के लिए पर्याप्त है क्योंकि 'फासले' के अतिरिक्त शेष सभी समस्याएं लगभग वही है। जिनसे चन्द्र-विजय के दौरान सफलतापूर्वक मुकाबला किया गया। हां, उनकी मात्रा में अवश्य अन्तर होगा—सैद्धांतिक रूप से अधिक अंतर नहीं होगा।

फासले का जवाब रफ्तार है। अभी तक हमारे अंतरिक्ष-यान की गति अधिक-से- अधिक 25,000 मील प्रति घंटा रही है और वह भी लगातार इतनी नहीं रहती। अब पृथ्वी से मंगल की दूरी कम-से-कम साढ़े तीन करोड़ मील से अधिक है (चांद की दूरी ढाई लाख मील से कम थी)। अब यदि हमारा यान 25,000 मील प्रति घंटे की रफ्तार से चले तथा मान लो, अंत तक इसी रफ्तार से चलता जाए तो उसे मंगल तक पहुंचने में लगभग दो महीने तो लग ही जाएंगे। अब यदि हमारे पास प्रकाश की गति से चलने वाला यान हो तो मंगल पर चंद मिनटों में पहुंचा जा सकता है।

किंतु हमारे पास तो जो रफ्तार है, आखिर वही है अर्थात् 25,000 मील प्रति घंटा और वह भी लगातार कायम नहीं रहती—सतत घटती चली जाती है। इस प्रकार तो मंगल तक पहुंचने में ही वर्षों लग जाएंगे। तब क्या चांद पर पांव टिकाकर चुप हो जाएं ? उस अवस्था में तो यह सारा प्रयत्न निरर्थक हो जाएगा।

पर बात ऐसी नहीं है। पहली बात तो यह है कि यद्यपि प्रकाश से अधिक गति का ज्ञान मनुष्य को नहीं है (सिवाय मन की गति के) फिर भी प्रकाश की गति से भी अधिक गति ढूंढ निकालना असंभव नहीं है। तथा प्रकाश की गति तो अंततोगत्वा प्राप्त की ही जा सकती है। प्रकाश की गति की प्राप्ति की बात अभी सिद्धांत तक ही सीमित है। उसका तरीका है 'फोटोन-प्रणाली'।

पीटर र्‌यान के शब्दो म फोटोन प्रकाश के कण होते है अन- व प्रकाश की गति से चलते है। फोटोन-मोटर का सिद्धात है समान सख्या में अणु-कण और उनके प्रति-कण (anti-particles) का उत्पादन। जब एक कण और उसका प्रति-कण मिलते है तो वे एक-दूसरे को नष्ट कर देते है तथा (इस प्रक्रिया में) फोटोन के रूप में अत्यत उज्ज्वल ऊर्जा उत्पन्न करते हैं। अंतर-नक्षत्रीय अंतरिक्ष के अन्वेषण के लिए इन्ही के प्रयोग का विचार है।'

जबकि फोटोन-प्रणाली अभी सिद्धात के गर्भ में ही है, आणविक ऊर्जा से चलाए जाने वाले अंतरिक्ष-यानों की संभावना व्यवहार के बिल्कुल निकट है। बल्कि तथ्य तो यह है कि इस प्रकार के अंतरिक्ष-यान पर कार्य हो रहा है। इसमे कठिनाई केवल एक ही दरपेश है। वह कठिनाई है आणविक उर्जा के कारण अत्यधिक उष्णता की उत्पत्ति तथा उसके परिणामस्वरूप यात्री-कक्ष का विस्फोट। पर अब इसका भी मार्ग निकाल लिया गया प्रतीत होता है। सोचा यह गया है कि यात्री-कक्ष को उस कक्ष से पर्याप्त दूर रखा जाए जिसमे आणविक उर्जा कार्यरत होगी। इससे यान की लबाई और भार में वृद्धि हो सकती है किंतु भार की समस्या को उसी ऊर्जा से हल कर लिया जाएगा। बल्कि आणविक ऊर्जा का उपयोग प्रयोगो में तो आरंभ हो भी गया है। डॉ. वर्नर व्हॉन ब्रॉन के अनुसार 'आणविक-प्रक्षेपक-इजन के, जिसकी सामान्य ईंधन वाले इंजन से दुगुनी गति उपलब्ध कर ली गई है, नेवादा रेगिस्तान मे राष्ट्रीय वैमानिकी व अंतरिक्ष प्रशासन (नासा) तथा आणविक ऊर्जा आयोग ने सम्मिलित परीक्षण किए है।...1970 के उत्तरार्द्ध में हम उसके प्रथम सस्करण को उडाने की आशा करते है। उक्त इजन 'नर्वा' (NERVA)कहलता है, जो 'न्यूक्लियर एञ्जिन फार रॉकेट विहीकल एप्लिकेशन' का लघु रूप है।

अंतरग्रहीय और अंतर-नक्षत्रीय यात्रओं से संबद्ध एक और प्रश्न है - हम इन यात्राओं के चक्कर में क्यों पड़ते हैं ? क्या इससे हमारा कोई हित-संपादन होगा ?

इस प्रश्न का उत्तर एक अन्य प्रश्न से भी दिया जा सकता है : हमने आखेट छोड़कर कृषि का धंधा क्यों ग्रहण किया तथा गुफाओं का परित्याग कर झोपड़ियां क्यों बनाई ? आखिर हम जिंदा तो उस अवस्था में भी थे ही। इसका अर्थ यह हुआ कि आयु बहुत लंबी है और उसके विकास की चरम सीमा बहुत दूर है। आज का मानव जहां गुजरे हुए कल के मानव की अगली कड़ी है, वहीं आने वाले मानव की पिछली कड़ी। सचाई यह है कि लाखों साल पुराना मानव अभी अपने शैशव में है तथा पृथ्वी के पालने मे पड़ा पांव का अंगूठा चूस रहा है। क्योंकि जब हम ब्रह्मांड की आयु प्रकाश-वर्षो म गिनते हैं तो हमें यह समझने में कोई कठिनाई नहीं होती कि मानवीय उम्र का हिसाब भी उसी पैमाने से लगाने पर सही उतरेगा, जिस पर ब्रह्मांड की आयु का हिसाब निकाला जाता है। अतः अंतर-नक्षत्रीय यात्राएं मानव के स्वाभाविक विकास-क्रम के स्वाभाविक सोपान हैं।

यदि इस पक्ष पर थोड़ी गहराई से विचार किया जाए तो अतरिक्ष उड़ान मानव

की मुक्ति-साधना का ही साधन प्रतीत होगी मानव ने अपने जीवन का लक्ष्य माना भी मुक्ति ही है। अभी तक हम यह स्वीकार किए बैठे थे कि मुक्ति के लिए शरीर त्यागना आवश्यक है--चन्द्र-विजय ने हमें यह सूत्र दिया है कि मुक्ति शरीर-सहित भी सभव है। हम त्रिशंकु के पौराणिक आख्यान की कल्पना पर आज भी आश्चर्य करते हैं तथा यह मानते है कि त्रिशंकु की कल्पना मानव के अन्य ग्रह तक न पहुंच पाने की विवशता की ही अभिव्यक्ति थी। पर अब त्रिशकु पैदा नही होगे--कल्पना में भी नही, क्योंकि अब मनुष्य उन लोको में जा सकता है (कम-से-कम उसे अन्य लोकों में ले जाने वाली अपनी सामर्थ्य का ज्ञान है) जिनको हमने केवल देवताओ के लिए ही सुरक्षित समझा था। वास्तव मे लोक सुरक्षित है अवश्य पर अन्य किसी देवता के लिए नहीं, मनुष्य देवता के लिए ही, क्योंकि देवत्व एक स्थिति है और वही स्थिति मानव की मजिल है। अतर केवल इतना है कि उस स्थिति के लिए तन-त्याग की लाचारी नहीं है, जैसा कि हम समझते आए है।

असलियत तो यह है कि यह सपूर्ण स्थूल-जगत प्रकृति है ओर मानव की सूक्ष्म चेतना पुरुप। सृष्टि की सार्थकता प्रकृति ओर पुरुष के एकीकरण मे है लेकिन प्रकृति का स्वभाव आत्मसमर्पण नही है--विजित होना है। अन्य शब्दों मे कहा जाए तो प्रकृति कभी भी पुरुप के संसर्ग को स्वीकार नही करेगी जब तक पुरुप अपने पौरुप से उसे जीत न ले। इस अभियान में मनुष्य समय-समय पर गलती करता आया है तथा उसको अपने भटकाव का मूल्य पुनः पिछड़कर चुकाना पड़ा है।

मानव के भटकाव का कारण उसके हृदय में बैठा पशु है जो उसके मस्तिष्क में बैठे देवता को आगे नहीं चलने देता। भय उसी पशु की व्यक्त सत्ता है। भय की हमे आवश्यकता अवश्य है लेकिन उसी सीमा तक, जहा हमारी सुरक्षा की पंक्ति समाप्त होती है--उस सीमा तक नहीं, जहा हमारी अकर्मण्यता का आरंभ होता है। अत भय का हमारे जीवन मे इतना ही स्थान है कि वह हमारी तेयारी और चुनौती में सामजस्य स्थापित करे। इतना पशुत्व देवत्व का सहायक है एवं उसका तत्कालीन आवश्यक अंग है।

चंद्रमा पर चरण टिकाकर मनुष्य ने देवत्व के क्षेत्र में कदम रखा है। पर देवता बनना सरल नही है--इसके अपने ही उत्तरदायित्व है। इस क्षेत्र में वही टिका रह सकता है जो उक्त उत्तरदायित्वों का निर्वाह कर सके अन्यथा उसे पशुता के धरातल पर उतर आना पड़ता है(मनुष्यता तो देवत्व और पशुत्व के मध्य एक संधि-प्रकाश-क्षेत्र है जैसा कि बुध की भूमि पर है)।

जैसा कि मानव इतिहास से स्पष्ट है, मनुष्य सतत रूप से विकास के मार्ग पर चला है तथा आज पृथ्वी के पालने को छोड़कर फर्श पर खड़ा हुआ है। अभी उसे चलना है, झपटना है, दौड़ना है क्योंकि उसकी मंजिल अभी बहुत दूर है--उसकी

मजिल मोक्ष है जो पदार्थ से भागकर नही, पदार्थ का पार पाकर पानी होगी। हमने अभी तक पदार्थ अथवा स्थूल से बचने की चेष्टा की है तथा स्थूल का पार पाए बिना ही आत्मा के लघु मार्ग से मोक्ष रूपी मजिल प्राप्त करनी चाही है। इस मार्ग की लघुता के लालच मे यह बिसरा बैठे कि सूक्ष्म की गति स्थूल के अभाव म सभव नही है क्योकि सूक्ष्म का वाहन स्थूल ही है। हमे जिन पड़ावो मे गुजरना है वे सब स्थूल हैं अतः मात्र सूक्ष्म के सहारे हम स्थूल सोपानो को कैसे पार करेगे ? यह नवीन सिद्धि-मंत्र हमे चंद्रमा ने दिया है।

किन्तु हमारे समक्ष तो अरबो-खरबो प्रकाश-वर्षो का अनन्त अंतराल है—इस अचेत कर डालने वाले विस्तार के समक्ष हमारी क्या स्थिति है तथा जिस चीटी की चाल से चलकर हम लाखो वर्षो के बाद अपने निकटतम पड़ोसी चाद को छूने मे समर्थ हुए हैं वह हमसे मात्र $1\frac{1}{2}$ प्रकाश-सेकड से कुछ कम की दूरी पर है। अतः अपने निकटतम पडोसी सूर्य 'अल्फा सेंतूरी' तक पहुचने म हमें कितना समय लगेगा जो हमसे चार प्रकाश-वर्ष की दूरी पर है तथा अपनी निकटतम नीहारिका 'एण्ड्रो मीडा' तक पहुचने मे कितना समय लगेगा जो हमारी नीहारिका से 20 लाख प्रकाश-वर्षो के फासले पर है ? क्या हम कभी भी मात्र इस दूरी तक भी पहुचने के साधन जुटा सकेंगे ?

इसका उत्तर स्वीकारात्मक है : हम निश्चय ही ऐसे साधन और सामर्थ्य जुटा सकेंगे जो हमे ब्रह्माड के छोर तक ले जाएगे। यह कार्य उतना कठिन नही है जितना कि आज लगता है। जब इंद्र ने सबसे पहले अस्थि (हड्डी) का हथियार बनाकर अस्थि-युग का सूत्रपात किया था तो क्या उस समय किसी ने यह कल्पना की थी कि एक दिन अणु-आयुधों का भी निर्माण होगा ? यह संभावना शायद उनकी कल्पना से भी परे की चीज थी किंतु आज यह एक सामान्य सत्य है।

हमारे समक्ष सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि हम दिक् और काल मे कैद रहते है। यदि हमें सृष्टि-विजय करनी है तथा ब्रह्माड के ओर-छोर को मापना है तो हमे दिक्-काल के आयामो से आगे निकलना पडेगा। हमे सुदूर भविष्य मे देखना पडेगा तथा उन क्रांतिकारी संभावनाओं व साधनों को जुटाना पड़ेगा जो आज हमारी कल्पना से भी परे प्रतीत होते है। इनमें सबसे अधिक आवश्यक स्वयं पर भरोसे की भावना है।

इस समूची प्रक्रिया में संभव है कि हम बहुत जल्दी बहुत आगे न जा सके। मोक्ष का मार्ग उतना छोटा नहीं है जितना हमने आध्यात्मिक दृष्टि से मान लिया था। बहुत मुमकिन है मंगल तक पहुंचते-पहुंचते बीसवीं शताब्दी समाप्त हो जाए तथा शनि के दर्शन हम इक्कीसवीं शताब्दी के अंत तक ही कर सके। यह भी असंभव नहीं है कि अपने सौर-मंडल के सभी ग्रहों पर जाने की जरूरत ही न पड़े तथा हम अपने सौर-मंडल से बाहर निकलने में कामयाब हो जाएं क्योंकि आज का असंभव ही कल का संभव होता है। हमारे पास 'मस्तिष्क' नामक एक ऐसा

सगणक यत्र है जिससे अधिक श्रेष्ठ रचना यह प्रकृति अभी तक कर नही सकी है

अपने सौर-मडल मे निकलना अब यो भी अनिवार्य हो गया है। यदि ज्ञानार्जन तथा जान-जोखिम वाले कार्य-संपादन के मानवीय स्वभाव को फिलहाल भुला भी दिया जाए, तो मानव-जाति की रक्षा के लिए ही सौर-मडल का परित्याग अत्यत आवश्यक है। जैसा कि वैज्ञानिक लोग बतलाते है सूर्य मे स्थित हाइड्रोजन के भडार नित्य-प्रति जल-जलकर चुकते जा रहे है। हाइड्रोजन हीलियम मे बदलती जा रही है तथा वह दिन दूर नही है (यों तो अभी लाखों-करोडों वर्ष दूर है।) जबकि हाइड्रोजन का भडार समाप्ति पर आ जाएगा। पौराणिक भाषा मे सूर्य बारह गुना अधिक चमकेगा तथा उसके ग्रहों-उपग्रहो पर प्रलय हो जाएगी। साथ ही सूर्य भी बुझ जाएगा।

उस स्थिति से बचने का प्रयत्न अभी से करना है। अतीत में हुए जल प्लावन के समय मानव जाति को मनु ने बचाया था। मनु अपने युग का भविष्य द्रष्टा वैज्ञानिक था, जिसने इस विषम स्थिति का अनुमान लगाकर पहले ही ऐसी नौका तैयार कर ली थी जो कि जल-प्लावन के समय उसे हिमालय पर ले गई। आज के मनु को भी ऐसी नौका (अंतरिक्ष-यान) बनानी है जो सूर्य के दम तोड़ने से पूर्व ही उसे किसी अन्य सौर-मंडल की शरण में ले जाए तथा प्रकृति-विजय की पुरुष की यह प्रक्रिया जारी रहे।

'अल्फा सेन्तुरी' नामक सूर्य के पास अभी कोई ऐसा ग्रह-उपग्रह नज़र नही आता जो शरणागत मानवता को स्थान दे सके। अलबत्ता हमारे सूर्य से लगभग 10 प्रकाश-वर्षों की दूरी पर 'लुब्धक' नामक सूर्य के पास एक ऐसा ग्रह है जो हमारी पृथ्वी के ही समान है तथा वहां इस जान बचाकर भागती हुई मानवता को शरण मिल सकती है।

हमने भारत का विभाजन देखा है तथा दो जातियों का मामूली-सा स्थानांतरण हमारे सामने हुआ है। उसकी विभीषिकाओं को दृष्टि में रखते हुए एक सभ्यता का स्थानातरण खतरो से खाली नहीं लगता तथा यह सदेह होता है कि क्या मानव नामक कोई प्राणी अन्य किसी सौर-मडल मे पहुच सकेगा ! इस शंका का समाध ान 'हां' में हो सकता है क्योंकि दिक्-काल की दीवारों से ऊपर उठकर वह सब कुछ किया जा सकता है, जो इनमें घिरे रहने पर संभव नही लगता। यदि इसका समाधान 'नही' मे भी हो, तो भी घबराहट की कोई बात नही है। प्रकृति की लीला बड़ी अद्भुत है। यहा कोई सिलसिला समाप्त नहीं होता। अतः यदि हमारी परिचित मानव सभ्यता इस अभियान में समाप्त भी हो जाए तो भी जीवन की मशाल जलती रहेगी और स्थूल तथा सूक्ष्म के एकीकरण का रथ आगे बढ़ता रहेगा।

अमरीकी ब्रह्मांड-विशेषज्ञ प्रो. फिलिप मॉरीसन का दावा है कि 'हमारी अपनी नीहारिका—आकाश गंगा में ही कम-से-कम 10 करोड ग्रह-उपग्रह ऐसे है जहां जीवन

जी सकता है। उन ग्रहों-उपग्रहों का तापक्रम ऐसी रेन्ज में है कि जहां एक ओर पानी खौलने से बहुत अधिक उष्णता नहीं है और पानी जमने से बहुत अधिक शीतलता नहीं है।' और ब्रह्मांड में 10 करोड़ नीहारिकाओं की स्थिति का पता लगाया जा चुका है। अतः कौन कह सकता है कि हमारी पृथ्वी, हमारे सौर-मंडल और हमारी नीहारिका से भी परे कितने स्थानों पर जीवन का बीज उग रहा हो तथा सभ्यताएं चल रही हों—फल-फूल रही हों। क्योंकि हम तो अभी तक केवल कार्बन पर आधारित 'जीवन' से ही परिचित हैं—किन्हीं अन्य तत्वों पर आधारित जीवन भी तो संभव है। यह भी असंभव नहीं है कि कोई अन्य जीवन सभ्यता हमारी मानव-सभ्यता के संपर्क में आ जाए और तब दो सभ्यताओं का प्रौद्योगिक ज्ञान सम्मिलित होकर प्रकृति-विजय के अभियान में आगे बढ़ जाए तथा यह सिलसिला अंत तक चलता रहे।

प्रकृति-विजय के इस नाटक में भारत भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। हमारे मनीषियों ने इस दिशा में अनेक उपयोगी सूत्र दिए हैं जिनमें से कुछ को पकड़ कर आगे बढ़ने में सहायता मिली है। आज के भारत में केवल एक ही दोष आ गया है कि हमने ज्ञान को एक बंद किताब मानकर संतोष कर लिया है। हम यह समझ बैठे हैं कि जो कुछ जाना जा सकता था, वह हमारे पूर्वजों द्वारा जाना जा चुका है, जो कुछ किया जा सकता था, वह हमारे बुजुर्गों द्वारा किया जा चुका है, हमने अपने शास्त्रों को ज्ञान की चरम सीमा मान लिया है तथा उन पर अपौरुषेयता का आरोप कर लिया है। यह आरोप हमें निष्क्रिय बनाने में बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ है— एक ओर तो हम हाथ पर हाथ रखकर बैठ गए हैं और दूसरी ओर हम इतने अधिक अहंवादी हो गए हैं कि 'अहम् ब्रह्मास्मि जगन्मिथ्या' का यथार्थ साक्षात्कार किए बिना ही घोर अहंकार में डूब गए हैं।

यदि हम एक बार यह स्वीकार कर लें कि हमारे पूर्व पुरुष ज्ञान की जो धरोहर हमें सौंप गए हैं वह अत्यंत उपयोगी होते हुए भी अंतिम नहीं है तथा वह उस समय तक के उपलब्ध ज्ञान से अनुशासित है, तो हमारा उद्धार हो जाए। अब हमारे पूर्वज तो ध्रुव को अटल कहते थे किंतु क्या ध्रुव सचमुच अचल-अटल है? यह मान्यता अंतरिक्ष-नियम के ही विरुद्ध है कि यहां कोई भी अचल-अटल हो। ध्रुव चलता है पर कम चलता है, धीरे चलता है। आज उसकी चाल पकड़ ली गई है, तब नहीं पकड़ी जा सकी थी। अतः यदि हम अपौरुषेयता के उन्माद में आज भी ध्रुव को अचल-अटल मानकर बैठे रहें तो आगे कैसे चलेंगे? वास्तव में ज्ञान सत्य नहीं होता—सत्य की दिशा में एक पग ही होता है। अतः सत्य के अन्वेषण के लिए ज्ञान-विज्ञान के पग सतत रूप से आगे बढ़ाते रहना पड़ता है।

एक विद्वान् का कथन है कि मनुष्य वह शक्ति है जिसे आगे बढ़ने से अन्य कोई शक्ति नहीं रोक सकती—भाग्य, भगवान, नियति, सितारे, परिस्थितियां—कोई भी नहीं। केवल एक ही शक्ति उसे रोक सकती है वह है स्वयं मनुष्य। अतः हमें

प्रकृति की विराटता से भयभीत नहीं होना है वामन और विराट का सम्मिलन ही तो इस सपूर्ण पसारे का लक्ष्य है। जिस समय वामन अवतार राजा बलि से दान मागने आए तो उन्होंने केवल तीन कदम टिकाने योग्य स्थान मागा था पर दान मिलते ही उस बावन-अंगुल के प्राणी ने एक कदम में पृथ्वी और दूसरे कदम में आकाश को नापकर तीसरे कदम के अंतर्गत राजा बलि को पाताल मे भेज दिया। यदि हम इस मिथक के प्रतीक को पकड़ ले तो दैविक दायित्वों का निभाना एक सामान्य क्रिया हो जाएगी।

□□□